इंग्लैण्ड का राजदर्शन

(लॉक से बेन्थम तक)

लेखक

हेराल्ड जे० लॉस्की



किताब महल (होलसेल डिविजन) प्रा० लिमिटेड

रजि० ऑफिस तथा प्रधान कार्यालय : इलाहाबाद

शाखाएँ : दिल्ली • कलकत्ता • बम्बई • हैदराबाद • जयपुर

अँग्रेजी संस्करण

सन् १९२० ई० में सर्वप्रथम प्रकाशित तथा १९२२, १९२५, १९२७, १९३०, १९३२ और १९३७ में पुनर्मुद्रित। फिर यह संस्करण १९४९, १९५० और १९५५ में पुनर्मुद्रित।

प्रथम हिन्दी संस्करण, १९६१

ज्योफ्रे कम्बरलीज, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन न्यूयार्क टोरेण्टो द्वारा प्रकाशित हेराल्ड जे० लॉस्की की सुप्रसिद्ध पुस्तक Political Thought in England (Locke to Bentham) का हिन्दी रूपान्तर।

प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद

मुद्रक—ईगल ऑफसेट प्रिन्टर्स १५ थार्नहिल रोड—इलाहाबाद

मूल पुस्तक की भूमिका

बिना लेजली स्टीफेन की पुस्तक History of the English Thought in the Eighteenth Century के प्रति कृतज्ञता प्रकट किये इस पुस्तक का प्रकाशन असम्भव-सा है। इस पुस्तक की प्रशंसा करना धृष्टता होगी किन्तु हम कहना चाहेंगे कि इसकी पूर्णरूपेण प्रशंसा के लिये इसके मूल का पाठ अनिवार्यतः आवश्यक है।

यद्यपि इस छोटी-सी कृति को किसी को समर्पण क्या किया जाय किन्तु इसके साथ मैं अपने मित्र वाल्टर लिपमैन का नाम सम्बद्ध करना चाहूँगा। इसकी विषय-वस्तु पर हम लोग प्रायः आपस में बातें करते थे। यद्यपि इसमें का अधिकांश मेरा अपना है किन्तु जहाँ कहीं उत्कृष्टता सम्भव हो सकी है उसका श्रेय मेरे मित्र को ही है। यह कृति उन्हीं की सेवा में मेरी श्रद्धांजलि है यद्यपि उनकी अमूल्य मित्रता की तुलना में यह समर्पण बड़ा तुच्छ-सा है।

हार्वर्ड यूनिवर्सिटी
१५ सितम्बर १६१६

हेराल्ड जे० लास्की

विषय-सूची

अध्याय १

भूमिका

अठारहवीं शताब्दी का प्रारम्भ १६८८ की क्रान्ति से ही माना जा सकता है, क्योंकि इसी क्रांति के समाप्त होते ही ईश्वरप्रदत्त अधिकार (Divine Right) की रूढ़िवादी विचारधारा भी अँग्रेजी राजनैतिक चिन्तन से सर्वथा समाप्त हो गई। इस ईश्वरप्रदत्त अधिकार (Divine Right) की अभावग्रस्त रिक्तता लगभग उस समय तक कायम रही जब तक कि ह्यूम और बर्क (Hume and Burke) जैसे चिन्तकों ने नये दार्शनिक चिन्तन की बाह्य रूप-रेखा नहीं प्रस्तुत की। इस युग के अध्ययन करने वाले को यह स्पष्टतया दीख पड़ेगा कि जो सूक्ष्म विचार इस काल में विकसित हुए वे इतने नीरस और रूखे थे कि उनके साथ यदि ईश्वरप्रदत्त अधिकार (Divine Right) को देखा जाय तो निश्चय ही उसने अधिक प्रभावशाली होने के नाते आने वाली शताब्दी में एक निश्चित स्थान ग्रहण किया होगा। यही नहीं इस युग की निरपेक्ष (absolute) चिन्तन पद्धति ने ही विचारकों को ऐसे दो विभिन्न दलों में विभाजित कर दिया होगा जिसमें से एक दल तो नये विचारों के समर्थक रूप में उपजा होगा और दूसरा ईश्वरप्रदत्त अधिकार (Divine Right) के पक्ष में विकसित हुआ होगा। इसी स्थिति में फिल्मर (Filmer) जैसे घोर प्रतिक्रियावादी और विरोधी को, नये विचारों ने हर प्रकार से खंडित करने की प्रेरणा दी होगी और एलगरनन सिडनी (Algernon Sydney) जैसे विचारक को अकथ शक्ति के साथ नयी विचारधारा के समर्थक रूप में विकसित किया होगा। लाक (Locke) द्वारा एक बार ईश्वरप्रदत्त अधिकार (Divine Right) का खण्डन प्रस्तुत हो चुकने के बाद निश्चय ही ऐसी

स्थिति हुई होगी जिससे नये विचारों ने उग्र रूप से ईश्वरप्रदत्त अधिकार के समर्थकों के विचारों को सर्वथा विनष्ट कर दिया होगा। वस्तुतः समाज अनुबन्धन (Social Contract) के सिद्धांत ने फ्रांस में जो क्रांतिकारी स्थिति पैदा कर दी थी वह इंगलैंड में नहीं पैदा हो सकी क्योंकि फ्रांस में रूसो (Rousseau) और उसके अनुयाइयों ने समाज अनुबन्धन के सिद्धांत के अतिरिक्त अन्य माध्यमों से भी अपनी याचित इच्छा की पूर्ति कर ली थी। इसका परिणाम यह हुआ कि इस घटना ने अठारहवीं शताब्दी को एक प्रकार की शहरियत (Urbaneness) प्रदान कर दी जो इसके पहले नहीं थी। इस विचार की मूल कसौटी उन धार्मिक उपदेशों से सिद्ध होती है जो अपनी प्रकृति में काफी बदल गये थे। यही नहीं यदि इस घटना के पूर्व के सारेज़ (Suarez) और बिलार्मे (Billarmine) के आदेशात्मक उपदेशों के साथ, बिशप बटलर (Butler) के उदात्त उपदेशों को देखा जाय तो निश्चय ही नये परिवेश में प्रस्तुत विचारों को पढ़कर एक निश्चित संतोष मिलता है। फ्रांस की क्रांति (French Revolution) के बाद भी रूढ़िवादी विचारों के सम्बन्ध में एक जिज्ञासा पुनः जाग्रत हुई जिसके नाते बाद की समस्त राजनैतिक विचारधारा उसी से सम्बन्धित राजनैतिक कल्पनाओं और परिकल्पनाओं की गहरी संवेदनाओं से ओत-प्रोत हो गई। यह शहरियत (Urbanity) वस्तुतः नयी वस्तु नहीं थी। रेस्टोरेशन (Restoration) ने इस शहरियत को पुनः स्थापित किया और यदि विवेचनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो हेलीफैक्स (Halifax) के विचार हॉब्स (Hobbes) या फिल्मर (Filmer) की अपेक्षा बोलिंगब्रोक (Bolingbroke) और ह्यूम (Hume) के निकट अधिक प्रतीत होंगे। यही कारण है कि अठारहवीं शताब्दी में उस ऐतिहासिक दृढ़ता (Historical Profoundity) का वेग नहीं मिलता जो सत्तरहवीं शताब्दी के प्रचारवादी पैम्फलटबाजों (Pamphleteers) में मिलता है। प्राइने (Prynne) के समान साहसवादी रचना के समर्थक का व्यक्तित्व डेफो (Defoe) जैसे पत्रकार में निश्चय ही भिन्न रूप में व्यक्त हुआ है। यही नहीं यदि डालरिम्पल (Dalrymple) और ब्लैकस्टोन (Blackstone) जैसे संभ्रान्त और

स्वाभिमानपूर्ण व्यक्ति इस युग ने दिये हैं तो निश्चय ही इनकी तुलना सेल्डन (Seldon) और सर हेनरी स्पेलमैन (Henry Spellman) जैसे व्यक्तियों से नहीं की जा सकती।

फिर भी यह शहरियत हमको धोखा नहीं दे सकती। वस्तुतः अठारहवीं शताब्दी के विचार-दर्शन ने अँग्रेजी राजनीति को इस सीमा तक प्रभावित किया है कि यह सत्य क्रमबद्ध रूप एवम् तुलनात्मक अध्ययन के अभाव में भी छिप नहीं सकता। यदि इस शताब्दी के पूर्व, वैधानिक रूप-रेखाओं (Constitutional outlines) का सृजन हुआ था तो इस शताब्दी ने प्रशासन सम्बन्धी उन विवरणों (Administrative details) को प्रस्तुत किया है जिनकी पूर्ति और प्राप्ति नितांत आवश्यक थी। यह प्रक्रिया (process) बहुत धीमी और क्रमिक रूप से प्रस्तुत हुई और यह जार्ज तृतीय (George III) की समस्त उत्सुकता का ही परिणाम था कि इस दिशा में एडमण्ड बर्क (Edmund Burke) ने अद्वितीय प्रतिभापूर्ण रूप में उसको कार्यान्वित करने का प्रयास किया। लाक (Locke) के विचार प्रायः अस्पष्ट और भ्रमोत्पादक हो सकते हैं किन्तु अनुमति के सिद्धान्त (Principle of Consent) की व्याख्या करके उसने उस सिद्धान्त को अँग्रेजी राज चिन्तन (English Politics) का एक स्थायी अंग बना दिया है। यह वह युग था जिसमें दलगत पद्धति (party system) का रूप सुगठित (crystalized) होकर प्रस्तुत हुआ है और तब शायद यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है। बेगहॉट (Bagehot) के शब्दों में यह उपलब्धि प्रतिनिधि शासन सत्ता (Representative Govt.) की वह मूल शक्ति थी जिसे इस युग ने प्राप्त किया था। शायद ही इस सम्बन्ध में कोई इतना महत्वपूर्ण विचार कभी और प्रस्तुत किया गया हो जैसा कि एडम स्मिथ (Adam Smith)के उन विचारों में मिलता है जिसके द्वारा अर्थशास्त्र को इतना महत्वपूर्ण वैज्ञानिक आधार मिल पाया है। शायद ही धर्म संघ और राज्य (Church and State) सम्बन्धी विचार इतने उत्तेजनापूर्ण ढंग में अन्य कहीं मिल सकें जितना कि होडले (Hoadley) ने पुरोहितवाद (Bishopric) के समर्थन में इस युग में प्रस्तुत किया है। यही नहीं इसी युग में दा लाल्मे (De Lalme) जो विवेचनात्मक

व्याख्याओं का जनक था वह भी वेगहोट (Bagehot) की विचार पद्धति (Political Method) के समक्ष निरर्थक सिद्ध हो गया था। ब्लैकस्टोन (Blackstone) जो वास्तव में प्रोफेसर डाइसी (Dicey) का वास्तविक पूर्वज (ancestor) माना जा सकता है इसी युग में जन्मा था। निश्चय ही केवल इस युग के शान्तमय वातावरण ने ही उस मार्ग को प्रशस्त किया होगा जिसमें गोडविन (Godwin) एवम् अन्य क्रान्तिकारियों के आश्चर्यजनक कार्यों को विकसित होने का अवसर मिल सका।

किंतु हमें इस विचारधारा के नैतिक (Ethical) एव राजनैतिक (Political) पक्षों के आपसी सम्बन्ध की अवहेलना नहीं करनी चाहिये। बावजूद इसके कि इस युग ने बर्कले (Berkeley) और ह्यूम जैसे चिन्तकों को जन्म दिया, फिर भी यह नितान्त सत्य है कि अठारहवी शताब्दी के अंग्रेज नीतिज्ञों (British Moralists) को इनके होते हुए भी काफी क्षति उठानी पड़ी है। प्रस्तुत सीमाओं के होते हुए भी इन नीतिज्ञों ने एक महान् लक्ष्य की ओर अग्रसर होने का निश्चय किया था। वे अपने लक्ष्य की महानता के प्रति जागरूक भी थे। तीव्रतम विवादों ने नैतिकता के मूलभूत तत्वों का पुनः परीक्षण एवं अन्वेषण करने की प्रेरणा प्रदान की थी। यह इस प्रेरणा का ही परिणाम था कि इन नैतिक अन्वेषकों ने इस जिज्ञासा को विचार (Thought) की अपेक्षा सामाजिक स्तर पर प्रस्तुत करने का सतत प्रयास किया था। वास्तव में अंग्रेजी बुद्धि (British Mind) आचरण (Conduct) सम्बन्धी समस्याओं के प्रति अधिक जागरूक रही है। सतरहवीं शताब्दी का अधिकांश चर्च और राज्य के विवेचन में ही समाप्त हुआ था। इस शताब्दी का मुख्य उद्देश्य इन दोनों (राज्य और धर्म) विषयों में कुछ दैविक मान्यताओं (Supernatural Sanctions) के अनुसार ऐसे निष्कर्ष निकालना था जो तर्कसंगत न होने के कारण उपयुक्त भी नहीं थे। लाक के मतानुसार उसकी पुस्तक 'ह्यूमन अनडरस्टैण्डिंग' (Human Understanding) को मुख्यतः नैतिक जिज्ञासा की प्राथमिक चेष्टा के रूप में ही स्वीकार किया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार ह्यूम (Hume) ने भी अपनी पुस्तक 'प्रिन्सिपिल्स आफ मारेलिटी' (Principles of Morality)

को ही महत्वपूर्ण कृति के रूप में स्वीकार किया है। मार्क पैटसन (Mark Pattison) के तीखे तर्क के अनुसार हो सकता है कि "उस काल में मानव सम्बन्धी अध्ययन का अर्थ मनुष्य के नैतिक आचरण (Conduct) का ठीक-ठीक अध्ययन माना जाता था उसका उद्देश्य मात्र मनुष्य के कार्य व्यापार की उपयुक्तता और अनुपयुक्तता को आध्यात्मिक आधारों और उसके अभावों तक ही सीमित रखना है।" निश्चय ही जहाँ तक अठारहवीं शताब्दी का सम्बन्ध है कोई भी इसे सतरहवीं शताब्दी के समान आध्यात्मिक आदर्शवाद का युग नहीं कह सकता। इसीलिये ला (Law) और बिशप विलसन (Bishop Wilson) और वेसलियन (Wesleyan) द्वारा संचालित पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों को, सर्वसाधारण प्रवृत्ति के रूप में घोषित करते समय हमें काफी सतर्कता से कार्य करना चाहिये। बात जो भी हो सत्य यह है कि इस युग के धार्मिक वाद-विवाद और उसकी चर्चा, यहाँ तक कि धर्मनिष्ठ नैतिकता खोखली और अपर्याप्त-सी लगती थीं। इसीलिये इस अभाव में अनेक समस्याएँ तीव्रतम रूप में उभरी थीं। यही नहीं, वस्तुतः यही कारण था शेफ्टसबरी (Shaftesbury) हचेसन (Hutcheson), ह्यूम (Hume) और ऐडम स्मिथ जैसे उच्चकोटि के विचारक राजनीति को किसी भी अंश में नीतिशास्त्र से कम नहीं मानते थे और जब वे मनुष्य-मनुष्य के व्यवहार के औचित्य पर विचार करते थे तो इन समस्याओं और संदर्भों को भी ध्यान में रखते थे। ये विचारक ऐसा इसीलिये करते थे क्योंकि वह स्पष्ट रूप से यह देखते थे कि समाज सम्बन्धी कोई भी सिद्धान्त बिना मनोवैज्ञानिक आधार के सम्भव नहीं था यदि प्रत्येक समाज सम्बन्धी सिद्धान्त को सामाजिक बन्धनों से उपयुक्त रखना है तो यह देखना आवश्यक है कि उनका प्रभाव आचारण सम्बन्धी सिद्धान्त पर क्या पड़ता है। यह निश्चित प्रवृत्ति और अन्तर्दृष्टि अंग्रेजी विचारधारा के अजस्र स्रोत में होब्स (Hobbes) से लेकर टी० एच० ग्रीन० (T. H. Green) तक के विचारों में समान रूप से मिलेगी। हाँ यह बात और है कि हाब्स के विचारों में उसका उद्भव हुआ था और टी० एच० ग्रीन (T. H. Green) के विचारों में उसका सम्पूर्ण रूप विकसित रूप में उदीयमान होकर प्रस्तुत हो सका था।

इस विचारधारा का मूल मूल्य यह था कि इसने राजनीति शास्त्र को मानव सम्बन्धों से पृथक मानने से इन्कार किया था। इसका परिणाम यह हुआ था कि एडम स्मिथ ने नैतिक भावनाओं के प्रति उसी जागरूक दृष्टि का परिचय दिया है जो उसने राष्ट्रीय सम्पत्ति (National Wealth) के विषय में प्रस्तुत किया है। अठारहवीं शताब्दी ने यह स्पष्टतया देख लिया था कि सामाजिक जीवन का प्रत्येक पक्ष राजनैतिक संतुलन के समकक्ष ही तुलनात्मक रूप में अभिव्यक्ति पा सकता है।

यह सब होते हुए भी यह युग पद्धतियों का युग (Age of Methods) ही कहा जायगा। यह सिद्धान्तों का युग (Age of Principles) नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि इस युग का शान्तिपूर्ण विकास अपनी समकालीन समस्याओं के साथ बड़े उपयुक्त ढंग से प्रस्तुत हो सका है। मन्त्रिमण्डल और इङ्गलैण्ड के बैंक (Cabinet and Bank of England) सम्बन्धी समस्याओं के प्रति इसी कारण कोई भी विचार बिना उग्र वाद-विवाद के सफलतापूर्ण परिणामों के साथ सोचे-समझे जा सकते थे। इन कारणों से कोई भी इस युग की उपलब्धियों को छोटा और महत्वहीन भी नहीं सिद्ध कर सकता। इसमें सन्देह नहीं कि यह युग भ्रान्तियों का था फिर भी हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि बहुत-से महान् विदेशी विचारक भी इस भ्रान्ति के युग पर आश्चर्यचकित नहीं हुये हैं। वाल्टेयर (Voltaire) और मानटेस्क्यू (Montesquieu) जैसे विचारक भी अठारहवीं शताब्दी के इंगलैण्ड के इतिहास को राजनैतिक सत्यों का सार मानते हैं। वे इसी दृष्टि से प्रेरणा लेने के लिये उसकी शरण लेते हैं। जहाँ अमरीकी उपनिवेशों ने अपने पूर्वजों से इसी रूप में प्रकाश प्रेरणा ग्रहण किया है वहीं बर्क (Burke) ने उसके औचित्य को और भी सारगर्भित शक्ति के रूप में समृद्ध बनाया है। इस युग का शान्तमय वातावरण पिछली शताब्दी के उत्तेजनापूर्ण वातावरण का परिणाम था। इङ्गलैण्ड को वास्तव में यह अधिकार था कि वह फ्रांस और जर्मनी की अपेक्षा अपनी राजनैतिक पद्धत्ति पर ही संतुष्ट हो सके। यह सत्य है कि क्रान्ति के सभी फल पूर्ण रूप से इङ्गलैण्ड को प्राप्त नहीं हो सके थे। यद्यपि अनुमति का सिद्धान्त

व्यवहार में जरूर आ गया था और १७६० ई० से इसके परिणामस्वरूप ह्विग पार्टी वंशज के रूप में विकसित भी हुई किन्तु एक्स्ट्रा-आर्डनेरी ब्लैक बुक (Extraordinary Black Book) अब भी इस बात की साक्षी है कि वे कौन से कारण थे कि जिनके नाते जार्ज तृतीय (George III) को मजबूर होकर टोरियों (Tories) को नयी शक्ति के रूप में स्वीकार करना पड़ा था। इस युग के तमाम विस्तार में व्यवस्था (order) की बात पर विशेष बल दिया गया है। निश्चय ही यह कोई ऐसी अस्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं थी जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि शासक वर्ग का व्यक्तिगत हित किसी भी रूप में व्यापक राज्य के हित में बाधक था। वाल्पोल (Walpole) की निश्चित नीति यह थी कि वह सदैव समृद्धता के पर्दे में राजनैतिक स्थिरता (political stagnation) को कायम रखना चाहता था। वह राजनैतिक वाद-विवादों को सिद्धान्तों से हटाकर व्यक्तियों पर आधारित करता था। इसके परिणामस्वरूप, वाल्पोल (Walpole) की धूर्तता के कारण एक अकर्मण्य पीढ़ी का जन्म लेना स्वाभाविक था।

किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि इस रूढ़िवादिता के परिणामों का कोई महत्व ही नहीं है। वस्तुत: एक पीढ़ी तक क्रान्ति के समस्त सिद्धान्त रिक्त हो चुके थे। ऐसी स्थिति में जब कि ऐंग्लिकेनवाद (Anglicanism)का नारा धीरे-धीरे अपना समस्त चमत्कार खो रहा था और देश में कृषि प्रधानता धीरे-धीरे क्षीण हो रही थी, तो सतरहवीं शताब्दी की वैधानिक विचारधारा का कोई भी प्रभाव शेष रह जाना संभव नहीं था। उपर्युक्त परिस्थिति में आवश्यक यह हो गया था धर्मवादी (Conformists) और विवेकवादियों (Retionalists) के समवेत प्रभाव में धर्म (Church) की सदाशयता कहाँ तक खरी हो सकती है इसका अध्ययन किया जाय। इसके अतिरिक्त दूसरी आवश्यक बात यह थी कि अंग्रेजी व्यवसाय (English Commerce) को चैथम की विजयों (Victories of Chatham) के बाद नयी संभावनाओं की ओर प्रेषित करना आवश्यक था। चीफ जास्टिस होल्ट (Chief Justice Holt) उसके संभावित कानूनी वर्गों की व्याख्या कर चुके थे

और ह्यूम (Hume) और एडम स्मिथ (Adam Smith) ने यह सिद्ध कर दिया था कि इङ्गलैण्ड का नया व्यवसाय बिना कृषि उद्योग को कोई क्षति पहुँचाये भी विकसित किया जा सकता है। वाल्पोल (Walpole) के तथाकथित शान्त-पूर्ण शासन काल में नयी विरोधी शक्तियों के सूत्र भी दृढ़ता के साथ मज़बूत हो रहे थे। यह स्थिति जीवन के किसी भी क्षेत्र में देखी जा सकती थी। जानसन (Johnson) की कठोर नैतिकता, रिचर्डसन और फील्डिंग (Richardson and Fielding) की नयी साहित्यिक प्रवृत्ति, गैरिक (Garrick) द्वारा कूलियर (Collier) के ध्वंस अवशेषों पर नये थियेटर का सृजन के माध्यम से ही ला (Law) और वेसले (Wesley) के पुनरोत्थान प्रतीक रूप में विकसित हुये, यह सब इस बात के प्रमाण हैं कि यह ठहराव अपनी प्रकृति में सुषुप्त अवस्था का परिचायक था न कि मृत्यु का। आवश्यक झंझोड़ देने वाली स्थितियाँ बहुत निकट थीं। इंगलैण्ड की जनता १६८८ के विद्रोह का कोई अर्थ न समझ पाती यदि जार्ज तृतीय (George III) ने उसके मूलभूत सिद्धान्तों का तिरस्कार न किया होता। जैसे ही उसने बड़े पिट (Elder Pitt) को त्यागपत्र देने के लिए मजबूर किया, ठीक उसी के साथ ही उन्हीं परिस्थितियों में एडमण्ड बर्क (Edmund Burk) के विचारों और इंग्लिश क्रान्तिवाद (English Radicals) को जन्म लेने का अवसर मिल गया। प्रेजेन्ट डिस्कन्टेन्टमेन्ट (Present Discontentment) और सोसायटी फॉर दि सपोर्ट आव बिल आव राइट्स (Bill of Rights) जैसे विचारों का उद्गम भी उन्हीं के साथ हो सका। इन्हीं के माध्यम से वह कल्पनात्मक शक्ति जाग्रत हो सकी जिसने कि यह दिखा दिया कि अन्ततोगत्वा इङ्गलैण्ड मानटेस्क्यू (Montesquieu) और रूसो (Rousseau) के मूल अर्थ के प्रति जागरूक है। जिस प्रकार से लैन्कास्ट्रयन वार्स (Lancasterian Wars) ने ट्यूडर निरंकुशता (Tudor Despotism) को जन्म दिया था ठीक उसी प्रकार अठारहवीं शताब्दी में के गृहयुद्धों ने इस अबोध स्थिति को जन्म दे दिया था। किन्तु जिस प्रकार ट्यूडर्स की शान्ति स्ट्यूअर्ट के अन्त से ही प्राप्त हो सकी थी और ठीक उसी प्रकार अठारहवीं शताब्दी की सुषुप्त

अवस्था ने ही प्रजातांत्रिक इंगलैण्ड (Democratic England) को जन्म दिया है।

वास्तव में उस समय के वातावरण की जड़ विगत काल की परिस्थितियों में निहित थी। लाक कभी भी इतने तीव्र ढङ्ग से लिख ही नहीं सकता था यदि उसके पूर्व हॉब्स (Hobbes) और फिल्मर (Filmer) ने इतने सशक्त ढंग से निरंकुश शासन सत्ता (Despotic Govt.) के आदर्शों को न प्रस्तुत किया होता। वस्तुतः लाक (Locke) ने ही आधुनिक संसदीय शासन पद्धति (Parliamentary System of Government) की प्रथम घोषणा की है। उसी के समय से ही सारे वाद-विवाद का केन्द्र विन्दु उन बुनियादी एवम् मूलभूत समस्याओं की अपेक्षा इस पर केन्द्रित हो गया कि वर्तमान स्थितियों में कैसे कार्य-संचालन किया जाय। इसी से प्रभावित होकर बर्क ने राजनैतिक व्यक्तियों के आचरण पटुता (Statesman's Art) पर एक बड़ी ही प्रभावपूर्ण पुस्तक लिख डाली थी। एडम स्मिथ (Adam Smith) ने इसी प्रकार इस बात की व्याख्या कर डाली थी कि किन रूपों में जन-समृद्धि (Prosperity of Peoples) के महत्वपूर्ण दायित्व को निबाहा जा सकता है। लाक (Locke) के बाद से ही वाद-विवाद का विषय राज सत्ता की अपेक्षा राजनैतिक पद्धति अर्थात् पालिटिक (Politic) हो गई थी रिफर्मेशन काल में जो विवाद बड़े जोरों से उठाया गया था वह उस समय शान्त हो सका जब लाक ने संसदीय शासन सत्ता की रूप-रेखा को अधिक बोधगम्य रूप में प्रस्तुत किया। ह्यूम (Hume), बोलिंगाक (Bollingbrok), बर्क (Burke) इन सब की व्याख्या और उनके विवेचन में मूल विचार जिस प्रकार प्रस्तुत किये गये हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये उन पूर्व परिचित आधारभूत सिद्धान्तों को स्वीकार करके चलते हैं। यद्यपि बर्क (Burke) अपने जीवन के अन्तिम काल में यह अनुभव कर सका था कि जन-साधारण परम्परागत राज्य की धारणा से क्षुब्ध और असंतुष्ट है किन्तु वह इन नयी प्रवृत्तियों को बड़ी घृणास्पद दृष्टि से देखता था और तत्कालीन नयी जाग्रति की वास्तविक जिज्ञासा को सहानुभूत्यात्मक दृष्टि देने में असमर्थ था।

नेपोलियन की लड़ाइयों ने भी प्रजातान्त्रिक विचारों को नीचे दबाने में योग दिया था। हाल (Hall) और ओवेन (Owen) और हाजस्किन (Hodgskin) ने ओगिलवी (Ogelvie), स्पेन्स (Spence) और पेन (Paine) के विचारों को ग्रहण तो किया था किन्तु वे उनके विचारों को अर्थ देने में असमर्थ थे। हाँ, उन्होंने आगे चलकर उन विचारों का एक निश्चित रूप (form) अवश्य प्रदान किया।

इस पूर्वाग्रह का कारण जानना कुछ कठिन नहीं है। अंग्रेजी राजनीति का विकास पिछली दो शताब्दियों में मुख्यतः ढाँचे (structure) के विकास से सम्बन्धित था। फिर भी उसका सापेक्ष सम्बन्ध यूरोप में घटित होनेवाले तथ्यों पर आधारित होते हुए भी इतना उदार था कि उसमें उसकी आन्तरिक विषयवस्तु की विशृंखलतायें छिप सकने में समर्थ थीं। सम्राट अभी तक अपने प्रभुत्व का विधायक था। १८६७ के रिफार्म बिल (Reform Bill) के पूर्व तक सामन्त वर्ग किंचित मात्र भी नहीं टूटा था। १८३२ में विदेशी विचारों के आधार पर जब तक हाउस आफ कामन्स (House of Commons) में नये उपदेशों के अन्तर्गत कुछ परिवर्तन नहीं प्रस्तुत किए गये तब तक अंग्रेजी राजनैतिक जीवन पर धर्म का बहुत महत्वपूर्ण हाथ था। जिन परिस्थितियों ने इन हस्तक्षेपों को तोड़ने में सहायता दी उनमें से उद्योग क्रान्ति (Industrial Revolution) ही सर्वप्रथम थी क्योंकि इसके साथ एक नये जनवर्ग ने राष्ट्र की आर्थिक शक्ति पर अधिकार कर लिया था। ऐसी परिस्थिति में राजनैतिक शक्तियों (Political forces) का पुनर्गठन होना अनिवार्य हो गया था। वास्तविक रूप में यदि देखा जाय तो राज्य सिद्धान्त (State Theory) पर विचार करने के लिये समय ने मजबूर भी किया था।

एक दृष्टिकोण से यदि देखा जाय तो क्रान्ति (Revolution) के बाद अठारहवीं शताब्दी के विचार एक प्रकार से समकालीन व्यवस्था की व्याख्या के दर्पण हैं और अपने ऐतिहासिक क्रम में इन विचारों के फलस्वरूप सम्राट (Crown) और संसद (Parliament) के

बीच जितने भी संघर्ष हुए हैं वह इन्हीं विचारों के परिणाम थे। किन्तु यह सब होते हुए हम अठारहवीं शताब्दी के मूल तत्वों को ठीक-ठीक उस समय तक नहीं समझ सकेंगे जब तक हम यह स्वीकार नहीं कर लेंगे कि इस युग की मूल प्रकृति मुख्यतः सामंतवादी (Aristocratic) थी । किसी भी रूप में चाहे जो आरोप इस युग के चिन्तक लगायें यह सत्य है कि इस युग के राजनीतिज्ञ स्वतंत्रता के लिए उतने उत्सुक नहीं थे जितने कि इस बात की घोषणा के लिये उत्सुक थे कि उनका अटूट विश्वास प्रजातंत्रात्मक शासन सत्ता में है। चाहे वे ह्विग (Whig) हों अथवा टोरी (Tory) ही सत्ता रूढ़ हों, प्रत्येक स्थिति में बड़े घराने के लोग ही शासक होते थे। उनके लिए धर्म (Church) उच्चतर रूप में किसी न किसी प्रकार अपना सशक्त अस्तित्व रखता और एक उच्च घराने के नोबुलमैन और जनसाधारण में आक्सफोर्ड (Oxford) में वही कृत्रिम अन्तर था जो कि आज की पीढ़ी में भी विद्यमान है। उनके लिए भी साहित्य और थियेटर एक दिखावे और फैशन की वस्तु थी। डाक्टर जॉनसन चाहे जितनी तीव्रता से अपने संरक्षक के प्रति कटु व्यंग्य करते थे सम्राट के सामने इसके बावजूद भी वह भी कितनी श्रद्धा और भक्ति रखते थे इससे हम सभी परिचित हैं। यों तो ईश्वरप्रदत्त अधिकार और उसकी स्वीकृति दोनों ही मृतप्राय हो चुके थे किन्तु उनकी पूर्ण मृत्यु बिना संघर्ष के सम्भव नहीं हो सकी। प्रेस की स्वाधीनता (Freedom of Press) और कानूनी समानता (Legal Equality) भले ही इस युग में प्राप्त हो गई हो किन्तु जब तक फाक्स द्वारा प्रस्तुत लाइबेल एक्ट (Libel Act) पारित नहीं हुआ था तब तक यह अधिकार भी सुरक्षित नहीं हो पाये थे। इस सम्बन्ध में जे० एल० और बारबरा (J. L. and Barabara) ने जो कुछ भी लिखा है उससे हमें वास्तविक वस्तु-स्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त होता है। लोकमत कभी-कभी सम्राट के न चाहने के बावजूद भी बड़े पिट (Elder Pitt) जैसे व्यक्ति को उसके ऊपर आरोपित कर सकता था। वह विल्कीस (Wilkeis) के लिए शोर गुल मचा कर हाउस आफ कामन्स (House of Commons) के सम्राट शासित वैधानिक अपहरण की निन्दा कर सकता था किन्तु यह विस्फोट भी व्यापक मनोभावों

(temper) को देखते हुए अपवाद ही से लगते थे। पार्लियामेंट की कार्यवाही उस काल तक भी गोपन होती थी और दो-एक वेस्टमिन्स्टर (Westminster) और ब्रिस्टल जैसे अपवादों को छोड़कर संसद की सदस्यता भी सम्पन्न वर्ग (Privileged Class) के प्रतिनिधियों का ही अधिकार था। क्रांति (Revolution) का वास्तविक अर्थ सूक्ष्म और व्यापक स्वतंत्रता के रूप में इतनी अभिव्यक्ति नहीं पा सका था जितनी कि उसने एक मूर्ख और हठी सम्राट के स्वेच्छाचार (Arbitrary Will) और अपनी पीढ़ी के प्रति अविश्वास और द्वेश के रूप में फलीभूत हुआ था। जिस इंगलैंड ने जेम्स द्वितीय को निष्कासन तक दे दिया था, वही इंगलैंड ह्यूम के शब्दों में भीतिपूर्ण ढंग से केवल अंश रूप में मतदाताओं का प्रतिनिधित्व करता था। अभी तक जनसमुदाय (Masses) को न तो कोई जान सका था और न किसी ने उसकी खोज ही की थी। यदि वह कहीं किसी रूप में आता भी था तो या तो वालपोल (Walpole) द्वारा पारित एक्साइज बिल (Excise Bill) जैसे योग्य कानून का विरोध करने आता था या गोल्ड स्मिथ (Goldsmith) और कूपर (Cowper) अथवा क्रैब (Crabb) की साहित्यिक कृतियों में अर्द्ध करुणाजनक भावना में चित्रित किया जाता था। सामंतवादी शक्तियों (Aristocratic Control) की क्रान्ति के बाद कितनी संगठित शक्ति थी, इसका आभास तो हमें उस समय मिलता है जब फ्रांस में रूसो (Rousseau) द्वारा स्वतंत्रता की माँग को वहाँ की जनता ने तिरस्कृत और खंडित करके फेंक दिया था। बर्क (Burke) ने जब इस माँग का खंडन करते हुए की अराजकता के विरुद्ध कस कर विरोध किया तो सारे इंगलैंड में उसके विचार एक लपट की भाँति फैल गये और केवल पिट (Pitt) जैसे कुछ अति साहसिक व्यक्ति ही उसका विरोध और खण्डन करने में समर्थ हो सके।

ऐसा युग कुछ भी नये अन्वेषण (Discovery) का दम नहीं भर सकता और यदि वास्तव में देखा जाय तो इस युग में कुछ भी अन्वेषणपूर्ण कार्य नहीं हो सका। जहाँ तक राजनैतिक विचारों का सम्बन्ध है यह युग निश्चय ही विशेष रूप से अभाव का युग रहा है। राज्य (State) की कभी भी अपरिवर्तनशील व्यवस्था नहीं रही है। इसके विपरीत राज्य अपने पर्यावरण

में व्याप्त विचारों की आग्रहशील प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता रहा है। शासन सत्ता और प्रशासित वर्ग (Subject) के बीच जो भेद इस युग में पैदा किये गये थे उनसे उस समय की संकीर्णता और उस वर्गविशेष की अनुदारता का परिचय मिलता है; जिनके प्रतिनिधि शासन सत्ता का प्रतिनिधित्व करते थे और जिनकी मूल प्रेरिक शक्ति शासन करने के मोह से प्रेरणा पाती रही है। प्रभुत्व शक्ति (Sovereignty) का स्रोत क्या है इस पर कभी कोई विवाद देखने में नहीं आता। बहुत से लोग यह मानकर चलते ही थे कि प्रभुत्व शक्ति केवल संसद और सम्राट में ही केन्द्रित है। यहाँ तक कि जार्ज तृतीय (George III) वह कौन-सी शक्ति है जो इन दोनों में संतुलन रखती है के प्रश्न पर इसीलिए सदैव देश के गत अर्द्ध शताब्दी की विकास-गाथा को भी भूल जाता था। इसीलिए जिस विचार को बर्क अपने बढ़े-चढ़े वैभवपूर्ण ढंग से कहता था उसका विरोध जूनियस (Junias) उतने सशक्त शब्दों में नहीं कर पाता था। राज्य सम्बन्धी गहरी समस्याएँ तो देश के सामने तब प्रस्तुत हुईं जब बेन्थम (Bentham) और उसके समान अन्य क्रांतिकारियों ने बार-बार इस बात पर बल दिया कि उन समस्याओं की अवहेलना नहीं की जा सकती; क्योंकि वे सभी समस्याएँ मूल रूप में अपनी सम्पूर्ण यथार्थवादिता के साथ अनिवार्य रूप में व्याप्त हैं। इसका यह आशय कदापि नहीं है कि अठारहवीं शताब्दी मात्र आत्महीन (Soulless) असफलता का ही परिचायक है। इसके विपरीत इसका यह अर्थ है कि यह युग हस्तान्तरण (Transition) का युग था जो इस काल में पूर्णता प्राप्त कर चुका था। नये प्रयासों को कार्यान्वित करने के लिए नये प्रयास किये जा रहे थे क्योंकि पुराने दर्शन द्वारा प्रस्तुत शंकाओं का समाधान नहीं हो पा रहा था।

इसीलिए इस युग में लाक (Locke) ही ऐसा व्यक्ति था जो आधुनिकतम राज्य सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने में दक्ष था। दूसरे लोगों ने मूल रूप में उसके ढाँचे को स्वीकार करने के बाद उसके ऐसे अन्य पक्षों को व्यापक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जो अभी तक पूर्ण रूप से निश्चित नहीं हो पाये थे। धर्म (Church) के अतिरिक्त मुख्य समस्याएँ उस समय उत्पन्न हुई जब एक विदेशी अँग्रेजी गद्दी पर शासक के रूप में प्रतिष्ठित किया गया और जिसने शासन

सम्बन्धी बातों को पूर्णतया ऐसे लोगों पर छोड़ दिया जो अब तक शासन का कार्य संचालन करते आ रहे थे। अँग्रेजी इतिहास का सबसे बड़ा शुभ अवसर वह था जब वालपोल (Walpole) जैसा राजनीतिज्ञ उस मूलभूत राज्य शासक के रूप में समय की अनिवार्यताओं द्वारा सामने आया। मंत्रिमण्डल की समस्त विशेषताओं और क्षमताओं को समझते हुए उसने ही सर्वप्रथम प्रधान मन्त्री के पद को सम्पूर्ण आधुनिक (Modern) अर्थों के साथ प्रतिष्ठित और स्थापित किया था। ऐसी दशा में दल प्रधान सत्ता (Party system) का विकसित होना अनिवार्य था। १७२७ में अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ जब उसने प्रथम प्रधान मंत्री के रूप में कार्य सचालन किया तभी से अँग्रेजी प्रतिनिधि शासन सत्ता की (Representative Govt.) नींव भी पड़ी और उसकी रेखाएँ भी उभर कर सामने प्रस्तुत होने लगीं। इस घटना के बाद से तीन ही मुख्य समस्याएँ थीं जो सम्पूर्ण युग का ध्यान अपने ओर आकृष्ट किये रही। सहिष्णुता (Tolerance) पिछली दो पीढ़ियों के संघर्ष के साथ प्रथम् विलियम तृतीय (William III) की दृढ़ नियंत्रणात्मक नीति के साथ स्थापित हो चुकी थी। केवल धर्म (Church) का ही ऐसा स्थान और महत्व शेष रह गया था जो क्रान्तिकारी राज्य (Revolutionary State) के संदर्भ में स्पष्ट नहीं हो पाया था। इसी के कारण राज्य की प्रकृति (Nature of State) भी पूर्ण रूप से सुव्यवस्थित नहीं हो पाई थी। होडली (Hoadley) के पास इस समस्या एक हल था। दूसरा हल ला (Law) ने प्रस्तुत किया था। उन्हीं के आधार पर उस समय के विवेक और हाई चर्च पार्टी (Church Party) के राजनैतिक आग्रहों ने होडली को सफलता भी प्रदान की थी। किन्तु उसके विरोधी विशेषकर ला (Law) ने बड़े जागरूक ढंग से धार्मिक स्वतन्त्रता के प्रचार बल पर उस प्रवृत्ति को आक्सफोर्ड (Oxford) में उसके बाद दो शताब्दियों को स्थापित रहने में सहायता प्रदान किया। अमरीका ने इस समस्या को राज्य सत्तात्मक (Imperial) और अनुमति (Counsel) के परिप्रेक्ष्य के साथ प्रस्तुत करने का साहस किया। सम्राट की भ्रान्तिजनक धारणाओं के कारण जो संदिग्धता इस काल में उपजी उसी का यह परिणाम था कि बर्क (Burke) को मजबूर होकर

१६८८ में निर्धारित सिद्धान्तों का वर्तमान संदर्भ में स्पष्टीकरण करना पड़ा। चैथम (Chatham) इस बीच एक नये साम्राज्य की स्थापना व्यावसायिक पद्धति (Industrial system) के अनुरूप सम्पन्न कर चुका था और यह निश्चय हो गया था कि अपने प्रयासों से वह प्रचलित आर्थिक ढाँचे में अवगत जिसमें कि ट्यूडर राष्ट्रीयता के चिह्न शेष हैं। सम्पूर्ण व्यावसायिक व्यवस्था (Industrial system) को नहीं चलने देगा। इस युग का उतना अधिक और सच्चा प्रतिनिधि ऐडम स्मिथ (Adam Smith) के सिवा शायद ही कोई अन्य व्यक्ति हुआ हो। एडम स्मिथ के अतिरिक्त किसी अन्य विचारक ने अपने युग की समस्याओं पर इतने साहसपूर्ण और निर्भीक ढंग से सोचने का साहस भी नहीं किया है। यह उत्तर, अन्य अच्छे उत्तरों के समान, समाधान की संभावनाओं की अपेक्षा उसकी जटिलताओं पर ही अधिक आधारित हैं, फिर भी इन सब विचारों को देखते हुए यह नहीं पता चलता है कि यह युग आने वाले नये युग का सूचक है वरन इसके विपरीत उसकी कृतियों में प्राचीन का खण्डन अधिक है उसकी सराहना कम। अमरीकन विद्रोह और दो बड़ी क्रान्तियों ने नये विचारकों की प्रगति ही उत्पन्न कर दी थी। यह स्थितियाँ जो फ्रांस की क्रान्ति के साथ उपजी थीं अब एक नई दृढ़ पौध के रूप में विकसित हो चुकी थी। बेन्थम ने रूसो (Rousseau) के मन्तव्यों को तो अपने विचारों में शामिल कर लिया था किन्तु उसने उसकी पद्धति को नहीं स्वीकार किया था। कुछ काल तक युद्धों और तूफानों ने लोगों की दृष्टि उन समस्याओं पर नहीं जाने दिया जिन्हें बेन्थम (Bentham) ने प्रस्तुत किया था किन्तु उन समस्याओं के साथ भविष्य का मार्ग निश्चित रूप से प्रशस्त और सुदृढ़ हो चुका था।

अध्याय २

क्रान्ति के सिद्धान्त

(१)

अंग्रेजी क्रान्ति (English Revolution) मुख्यतः जेम्स द्वितीय के निरंकुश प्रयासों एवम् प्रवृत्तियों के विरोध का परिचायक है जो उसने रोम और फ्रांस के शासन सत्ताओं के अनुकरण में चरितार्थ करने की चेष्टा की थी। मूलतः यह क्रान्ति आन्दोलन सामन्तवादियों (Aristocracy) का आन्दोलन था और मुख्यतः सामन्तवादी विरोध का प्रतिफलित रूप ही उससे व्यक्त हो सका था। इसने जो सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया वह यह था कि सदा के लिये इस क्रान्ति से यह निश्चित हो गया कि अब कभी भी अँग्रेजी गद्दी का सम्बन्ध रोम के साथ गठबन्धन के रूप में नहीं चल सकता। साथ यह भी स्पष्ट हो गया कि अँग्रेजी गद्दी केवल संसद (Parliament) की अनुमति से ही प्रतिष्ठित रह सकती है। विलियम आफ ओरंज (William of Orange) के शासन को कोई भी ईश्वर प्रदत्त अधिकार (Divine Right) पर आधारित शासन नहीं कहेगा। रूढ़िवादियों का यह फिर कभी साहस ही नहीं हुआ कि जेम्स द्वितीय को फिर से अँग्रेजी गद्दी पर शासित करने की बात भी उठावें। यही कारण है कि यद्यपि जेम्स द्वितीय को गद्दी से उतारने वाली घटना को बार-बार राज्य त्याग (Abdication) के रूप में चित्रित करने के बावजूद भी विलियम के काल की जनता वस्तुस्थिति से अपरचित नहीं रह सकी यह बात सब लोगों पर स्पष्ट हो चुकी थी कि एक अवैधानिक संसद (Unconstitutional Parliament) ने इंगलैण्ड की गद्दी को रिक्त रूप में घोषित किया

था और विलियम और मेरी (William and Mary) को लम्बी अवधि के बाद, वार्तालाप द्वारा स्थिति का बोध करा के बुलाया गया था। विलियम के लिये इस निमन्त्रण को अस्वीकार करना उसके अपने वश की बात नहीं रह गई थी। वह यह जानता था कि इंगलैण्ड का शासक बनने से ससार के सशक्त समुद्री शक्ति (Maritime Power) का अधिकार उसे सहज ही मिल जायगा जिससे वह इस शक्ति का प्रयोग लुई चौदहवें (Louis XIV) के विरुद्ध यापित करने में सफल भी होगा। साथ ही वह यह भी देख रहा था कि इंगलैण्ड का शासन हाथ में आ जाने से प्रोटेस्टेन्टइज्म (Protestantism) को इतनी शक्ति मिल जायगी कि उसके विरुद्ध जितने भी षड्यन्त्र किये जा रहे हैं वे सब के सब ठण्डे किये जा सकेंगे। इगलैण्ड ने भी इस नये परिवर्तन को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं अनुभव किया। इसके पूर्व इङ्गलैण्ड की जनता की व्यापक धारणाओं को जेम्स की मूर्खताओं के कारण काफी ठेस और चोट भी पहुँची थी। यदि इंग्लिश चर्च (English Church) इस नई व्यवस्था से अलग-अलग रहा तो भी कोई हानि नहीं पहुँची क्योंकि व्यवसायी वर्ग (Commercial Class) ने इस व्यवस्था को अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया और ऐसे बहुत से लोग जो सैद्धान्तिक-रूप में मतभेद रखते थे उन्हें भी अन्ततोगत्वा व्यवहार रूप में उसे स्वीकार करना पड़ा। सभी यह जानते थे कि सर्वथा नया युग अपनी संभावनाओं के साथ पदार्पण कर रहा है।

विलियम इंग्लैण्ड की गद्दी पर एक निश्चित धारणा लेकर आसीन हुआ था। जेम्स ने तो केवल उस व्यवस्था को खण्डित करना चाहा था जो गृह-युद्धों (Civil Wars) के बाद अँग्रेजी संविधान (English Constitution) के रूप में पारित होकर प्रस्तुत हुआ था। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो गया था कि उन मूल आधारों को स्थापित किया जाय जिनके आधार पर सम्राटों के जीवन और आचरण को आधारित किया जा सके। विलियम (William) का शासन काल मुख्यतः इसी धारणा को स्थिर करने के लिये ही आया था। इस युग का महत्व भी इसी दृष्टि से है क्योंकि इस युग में वैधानिक धारणा को व्यवस्थित कार्य रूप में परिणत करने की विधि (Mechanisms) पूर्णतया

सम्पन्न हो सकी थी। १६८६ के बिल आफ राइट्स (Bill of Rights) और १७०१ के एक्ट आफ सेटेल्मेंट (Act of Settlements) वे आधार-शिलायें हैं जिन पर आज की आधुनिक वैधानिक पद्धति (Modern Constitutional System) कार्य कर रही है।

इस काल में जो बात मूल रूप से उभर कर आई वह सैद्धान्तिक आधारों पर सम्राट् (Crown) और संसद् (Parliament) के अधिकार सम्बन्धी संघर्ष थे। वित्त (Finance) और सेना को सीधे संसद् के अन्तर्गत लाने से केवल उनके वार्षिक अधिवेशनों और प्रस्तुतीकरण के सिद्धान्तों का आना ही पर्याप्त था। आज्ञा पत्रक (Right of Petitions) के अधिकार को पुनः स्थापित किया गया और न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता और शासन दायित्व (Ministerial) को भी एक एक्ट के आधार पर सुरक्षित रूप में निर्धारित किया गया। वे राजघराने (Royal Family) के लोग जो इन पदों को विरासत (Inheritance) के रूप में अभी तक ग्रहण करते आ रहे थे उनको सदा-सर्वदा के लिये इन पदों से वंचित कर दिया गया। जिस प्रकार सरसरी (casual) ढंग से ये परिवर्तन किये गये उनको देखते हुए किसी का आश्चर्यान्वित होना असम्भव नहीं है। क्योंकि इनको देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि ये हल यों ही बड़ी सरलता के साथ प्राप्त हो गये। विलियम (William) जीवन के अन्त काल तक विदेशी ही बना रहा, इसलिये वह अँग्रेजी राजनीति के आन्तरिक तथ्यों को पूर्णरूप कभी भी नहीं जान सका। वह तो विदेशी नीति की अनिवार्यता थी जिसने उसे दलगत पद्धति (Party System) को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया क्योंकि उसे स्वीकार करने ही से वह बैंक आफ इंगलैण्ड (Bank of England) के जन्म के साथ अपनी भी रक्षा कर सकता था। उसके शासन काल के अन्त तक मंत्रिमंडल (Cabinet) पूर्ण रूप से प्रशासन के बुनियादी अधिकारों को स्थापित कर लिया था। वह संसद जो मूलतः एक प्रिवी कौंसिल (Privy Council) के रूप में जन्मी थी वह इस युग में सण्डरलैण्ड (Sunderland) की प्रतिभा-सम्पन्नता के बल पर यह भी घोषित करने में समर्थ हो सकी थी कि यह मंत्रि-

मंडल उस समय तक ईमानदारी से कार्य नहीं कर सकेगा जब तक कि इसका प्रत्येक मंत्री एक ही दल (Single party) का सदस्य नहीं होगा। विलियम (William) ने पहले तो इसे बड़े सशंकित रूप में स्वीकार किया, क्योंकि अपने जीवन के अन्त काल तक वह यह नहीं समझ सका कि उसके मन्त्री विभिन्न दलों से चुने जाने के बावजूद भी एक योग्य सलाहकार के रूप में संगठित क्यों नहीं हो सकते। सण्डरलैण्ड (Sunderland) उस बात को उससे अधिक कुशलता के साथ इसलिए जानता था क्योंकि वह उस युग का व्यक्ति था जब कि ह्विग (Whig) और टोरी (Tory) दल के सदस्यों ने एक-दूसरे को पराजित करने में सर की बाजी तक लगा दी थी। वह यह जानता था कि कोई भी सलाहकार समिति (Council Board) एक साथ स्वयम् उसको और हैलिफैक्स (Halifax) को एक मत पर संगठित नहीं कर सकेगी। इस बात को विलियम को अभी जानना था कि चाहे जितना मान और विश्वास जॉन चर्चिल को दिया जाय, वह कभी भी उसके प्रति अपना पूर्ण विश्वास नहीं प्रदान कर सकता था। उस युग की शासन व्यवस्था में एक विचित्र प्रकार की सर्गर्मी थी जो स्पष्टतया यह सिद्ध करती थी कि लाख होने पर भी कुछ लोग ऐसे थे जो ह्वाइट हाल में भी सेन्ट जर्मन (St. German) से आदेशित होने के लिये उस समय भी उत्सुक रहते थे।

प्रस्तुत वैधानिक स्थायित्व में फ्रेंच शासकों की सत्तावादी त्रुटियों का उतना हाथ नहीं था जितना कि विलियम की उदार नीति का था। धैर्य, भविष्य दृष्टि, और उदारता को विलियम ने अपने सम्राटत्व के साथ काफी अन्यमनस्क रूप से स्वीकार किया था। उसकी विदेशी नीति को भी यहाँ आधे-मन से सहयोग मिल पाया था। सेना की संख्या उसके विरोधों के बावजूद भी घटा दी गयी थी। और जब उसके साथ जो डच संरक्षक आये थे उनको भी जब बिना उसकी इच्छा के विपरीत वापस भेज दिया गया तो वह और अधिक खिन्न हो उठा। किन्तु ठीक उसी समय जब कि विलियम की शक्तियाँ कम हो रही थीं और उसकी खिन्नता बढ़ रही थी तो जेम्स द्वितीय की मृत्यु हो गई। लुई चौदहवें ने लिखित आश्वासन देने के बावजूद भी जेम्स द्वितीय को अन्तिम

काल में वह सहायता नहीं प्रदान की जो उसने ओल्ड प्रिटेण्डर (Old Pretender) को इंगलैण्ड के साधिकार सम्राट् रूप में स्वीकार करके किया था। इस कार्य ने विलियम को जितनी सहायता पहुँचाई उतनी और किसी ने नहीं पहुँचाई। इससे यह स्पष्ट रूप में ध्वनित हो गया कि इंगलैण्ड को अपने पुराने शासक को विदेशी सत्ता के हाथ से मुक्त कराना चाहिये। जनता का राष्ट्रीय स्वाभिमान पुनः जाग्रत हो गया और वे सब उस कार्य के लिये एक मत हो गये जिनका कि प्रतीक रूप विलियम में सन्निहित था। वह स्वयम् एक सम्राट् था इसीलिये लुई के निश्चय के विरुद्ध इंगलैंड की जनता ने विलियम को इस रूप में प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की जैसे वह उनकी उन समस्त भावनाओं का एक प्राणनिष्ठ प्रतीक हो जिनके लिये जनता ने उसे राजगद्दी पर बिठाया था। संसद ने इसी आधार पर विलियम को वह समस्त सुविधाएँ प्रदान कर दी थीं जो वह अपनी विदेशी नीति के अन्तर्गत चाहता था। उसकी मृत्यु से ही मार्लबरो (Marlborough) की विजयों की भूमिका भी बनी। इन विजयों ने १६८८ की समस्या को और भी दृढ़ बना दिया। एक अवसर ऐसा भी आया जब भावुकता और गुटबन्दी ने साथ मिलकर एक्ट आफ सेटिल्मेन्ट (Act of Settlement) को नष्ट करने का प्रयास किया। किन्तु विलियम की मृत्यु ने बालिंगब्रोक (Bolingbroke) की इस बाज़ी को सफल नहीं होने दिया और जार्ज प्रथम को सिंहासनारूढ़ करके इंगलैण्ड ने क्रान्ति के सिद्धान्तों को और भी दृढ़ बना दिया।

(२)

क्रान्ति का सिद्धान्त स्रष्टा लाक ही है। उसी के सचेष्ट प्रयासों ने ही १६८८ के उथल-पुथल को सार्थक रूप प्रदान किया था। लाक ने स्वतः यह कहा कि उसका प्रयास 'ग्रेट रेस्टोरर (Great Restorer) के रूप में विलियम (William) को प्रतिष्ठित करना था क्योंकि विलियम द्वारा ही जन अनुमति (Consent) और साम्राज्य को समन्वित रूप में प्रस्तुत हो सकती थी।' इसको लेकर जो वादाविवाद

बढ़ा उसके तर्कों का कोई भी उत्तर नहीं दे सकता था। इसका मुख्य कारण यह था कि उसके विचारों के साथ उस पीढ़ी और उस युग का साधारण बोध (Common Sense) समान रूप से परिपक्व स्थिति में वर्तमान था। लाक (Locke) की आलोचना उसके बाद आने वाले विचारकों ने कम नहीं की है। उसका प्रभाव उसके काल पर बहुत गहरा रहा है। मानटेस्क्यू (Montesquieu) की अन्तर्दृष्टि भी लाक के विचारों से बहुत प्रभावित रही है। यही नहीं उसके विचारों ने अमरीकन क्रान्ति (American Revolution) में एक निश्चित योग प्रदान किया था, और वह राजनैतिक क्षेत्र में ऐसा पौराणिक व्यक्तित्व (Classical) माना जाने लगा था कि उसके विचारों को बिना पढ़े ही लोग स्वीकार करने लग गये थे। यह एक बहुत बड़ी और दुख-पूर्ण बात थी। लाक में न तो विचारों की स्पष्टता थी और न उसके पास हाब्स जैसी तार्किक शक्ति थी। उसमें वह प्रतिभा भी नहीं थी जो एक पंक्ति में जीवन के अनुभूत-सत्य को उस रूप में प्रस्तुत कर सके जिस रूप में कि बर्क (Burke) ने अपने विचारों को प्रस्तुत किया है। बर्क अपनी स्पष्टता के कारण ही अंग्रेजा राजदर्शन के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण विचारक हैं। बर्क ने उन दोनों की अपेक्षा अधिक सरल ढंग से अपने विचारों को प्रस्तुत करते हुए और आधुनिक राज्य भाषा सम्बन्धी समस्याओं पर प्रकाश डाला था। हॉब्स (Hobbes) ने एक असंभव मनोवैज्ञानिक आधार पर कार्य किया था और इस बात की चेष्टा की थी वह वर्तमान नृशंसता (Disorder) के विरुद्ध एक ऐसी योजना दे सके जो कार्यान्वित किया जा सके। बर्क (Burke) ने अपनी कृति में एक सजग प्रशासक की पाठ्य पुस्तक जैसी व्याख्याएँ की थीं। साधारण राजनीति में रुचि रखने वाले को उससे कोई लाभ नहीं हो सकता था। लाक (Locke) ने राज्य सम्बन्धी समस्याओं के साथ स्वतंत्रता की जिज्ञासा को भी सम्बद्ध करना चाहा था। इसीलिये वह व्यक्ति की परिभाषा और मर्यादा को स्थापित करने की चेष्टा करता हुआ लगता है। अन्य समस्याओं के होते हुए भी उसका वह दायित्व अधिक महत्वपूर्ण है।

इसमें सन्देह नहीं कि जो कुछ भी लाक (Locke) में कमियाँ दिखलाई

पड़ती हैं वह बहुत कुछ उसके स्वनिर्वाचित माध्यम जिसको उसने अपने कार्य के लिये चुना था। उसने ऐसे समय में अपने विचार लिखे थे जब सामाजिक अनुबन्धन (Social Contract) का सिद्धान्त ही ईश्वरप्रदत्त अधिकार (Divine Right Theory) का एक मात्र अकाट्य उत्तर माना जाता था। उसने अनुमति के सिद्धान्त (Principles of Consent) को इस प्रकार बलपूर्वक प्रस्तुत किया था कि जब अनुबन्धनवाद (Contractualism) का सिद्धान्त खडित हुआ तो यह पता लगा कि इस सिद्धान्त के खडन से हॉब्स के विचारा की अपेक्षा लाक (Locke) के विचारों को क्षति पहुँचाई है। इसका मुख्य कारण यह था कि हॉब्स (Hobbes) ने अनुबन्धन के सिद्धान्त की उतनी परवाह नहीं की। उसने उसको उसी सीमा तक स्वीकार किया जहाँ तक वह मानव प्रकृति की स्वाभाविक विकृति को दर्शाने में सहायक हो सकता था। इसके विपरीत लाक (Locke) ने मानव की स्वभावगत पावनता और सदाशयता को प्रथम स्थान दिया और उस सदाशयता को अनुबन्धन (Contract) के सिद्धान्त को मानव सद्व्यवहार के लिये परम आवश्यक अग माना। रूसो (Rousseau) की तरह उसने राज्य की जीवन्त प्रकृति (organic nature) को पकड़ने की चेष्टा नहीं की। उसने राज्य को केवल ऐसी सम्पूर्ण मिति (Aggregate) के रूप में स्वीकार किया है जिसके माध्यम से बहुमत-शासन (Majority Rule) सरलता और आसानी के साथ अभिव्यक्त होता है। वह अनुबन्धन की समस्या को मात्र राजनैतिक समस्या के रूप में ही ग्रहण करता है। किन्तु रूसो (Rousseau) के विचारों को हीगेल (Hegel) ने अपने द्वन्द्वात्मक तर्क (Dialectics) के अन्तर्गत स्वीकार करके एक सीमा तक उसकी उपादेयता को स्वीकार किया था। लाक भी ठीक उसी प्रकार सामाजिक अनुबन्धन के दार्शनिक पक्ष से बहुत प्रभावित नहीं हुआ था। कुछ ही महान् विचारक ऐसे हुए हैं जिन्होंने थोड़ा-बहुत भी राजनीति के मनोवैज्ञानिक तथ्यों को ग्रहण करने की चेष्टा की है। लाक (Locke) ने मात्र इतना ही किया कि उसने अपने समय के संघातमक आवश्यकताओं (Insti-

tutional Necessity) को एक सूत्र में पिरो कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया। इसके साथ ही उसने उपलब्ध माध्यमों (Channels) को भी पहचानने की चेष्टा की। इसके अतिरिक्त अन्य तथ्यों को उसने अन्धकार में डाल दिया। वास्तव में संघों की समस्या भी बड़ी जटिल है। इसीलिये उसने जो भी निराकरण प्रस्तुत किया वह इतनी सरलता से राजनैतिक ताने-बाने का इतना स्वाभाविक अंग तो बन गया किन्तु मूल्य के जिस पक्ष पर उसने विशेष बल दिया वह नहीं टिक सका। उसके बाद के चिन्तकों ने जब मूल-भूत समस्याओं के साथ पुनः अध्ययन करना चाहा तो वे उसे ग्रहण करने में असमर्थ सिद्ध हुए।

जान लाक (John Locke) का जन्म २६ अगस्त १६३२ ई० में समरसेट (Somerset) के अन्तर्गत रिंग्टन (Wrington) नामक स्थान पर हुआ था। उसका पिता (County Justices) जजों का एक मामूली क्लर्क था। गृह युद्ध (Civil War) के दिनों में वह सवारों के एक जत्ते का कप्तान भी हो गया था। यद्यपि इस उथल-पुथल में उसके पिता को बड़ी हानि पहुँची थी फिर भी उसने लाक को इतनी ऊँची शिक्षा-दीक्षा दी कि जितना उन परिस्थितियों में सरलता से संभव नहीं हो सकता था। डाक्टर बसबे (Busby) की संरक्षता में वेस्टमिनस्टर (Westminster) उसका उतना बड़ा शिष्य नहीं हो सका जितना कि उसके साथ लाक, मात्र प्राचीन साहित्य (Classics) का अध्ययन करके हो गया था। उसने स्वय अपनी पुस्तक थाट आन एज्यूकेशन में इस प्रकार के प्रशिक्षण का विवेचनात्मक मूल्यांकन किया है। उसके अध्ययन से यह स्पष्ट पता चलता है कि यद्यपि वह स्वयं उसके काडिस्ट चर्च का एक जूनियर विद्यार्थी भी रहा था वह आक्सफोर्ड (Oxford) से विशेष प्रभावित नहीं हो सका। उस समय युनिवर्सिटी का प्रकाशक डाक्टर जान ओवेन नामक एक पियूरेटेन था। बावजूद इसके कि उस काल में युनिवर्सिटी को बौद्धिक चिन्तन मनन का एक सुगम और आकर्षक केन्द्र माना जाता था, फिर भी उसे वह मुक्ति का ज्ञान नहीं दे सकी। लाक स्वयं अपनी ख्याति के बावजूद भी युनिवर्सिटी को उन जटिल दार्शनिक ग्रन्थियों से मुक्ति दिलाने में किसी प्रकार सहायक नहीं सिद्ध हो सका। फिर भी यह तो सत्य ही है

कि आक्सफोर्ड (Oxford) में ही आकर वह डेकार्ट (Descaretes) का अध्ययन कर सका और उसके विचारों से सर्वप्रथम बहुत आन्तरिक प्रेरणा ग्रहण करने में समर्थ हो पाया। यहीं वह अरबी के प्रसिद्ध विद्वान् पोकाक (Pocock) से परिचय प्राप्त कर सका, और अपने समय के प्रसिद्ध गणितज्ञ वालिस (Wallis) से भी परिचय ग्रहण करने में समर्थ हो सका। १६५६ में उसने अपने कालिज के उच्चतर अध्ययन कार्य को स्वीकार किया था। बाद में १६८४ में उसने अपने इस अध्ययन की राजनैतिक दृष्टि नितान्त अनावश्यक माना था। अपने पिता की इच्छाओं की पूर्ति के लिये उसने चर्च (Church) में चिकित्सा का भी अध्ययन किया था। उसकी वैज्ञानिक अभिरुचि के नाते ही बॉयल (Boyle) उसका घनिष्ठतम मित्र हो गया था। जिस समय उसके गुरु डाक्टर टामिस रोगियों के रोगों का निरीक्षण विवेचन करते थे उस समय वह बॉयल (Boyle) की प्रयोगशाला में बैठा उस हिस्ट्री आफ एयर का अध्ययन करता था जिसका वह बाद में चलकर, अपने पिता की मृत्यु के बाद, सम्पादन करने लगा था।

इसी बीच विभिन्न परिस्थितियो और दुर्घटनाओं ने उसके जीवन को विभिन्न स्तरों में तितर-बितर कर दिया। एक विशेष राजदूत के मंत्री के रूप में जब उसे नौकरी मिली तो वहीं से उसका राजनैतिक जीवन भी शुरू हो सका। किन्तु वह इतना प्रबल सहज ज्ञान (Common sense) का समर्थक था कि न तो वह इस पद पर अधिक दिनों तक कार्य कर सकता था और न उसके लिये आवश्यक श्रम कर सकना भी उसके लिये संभव था। उसे शीघ्र ही उस पद से मुक्ति लेनी पड़ी। प्रशा (Prussia) की यात्रा के बाद वह आक्सफोर्ड (Oxford) लौट आया, और फिर वहाँ वह अपने चिकित्सा कार्य के सम्बन्ध में एन्थोनी एशले (Anthony Ashley)—जो बाद में लार्ड शेफ़्टसबरी (Lord Shaftesbury) के नाम से विख्यात हुए--और ड्राईडेन (Dryden) के विख्यात व्यंग्यकृति से सम्बन्धित एकिटोफेल—(Achitophel) से परिचय प्राप्त किया। यह दोनों व्यक्ति एक-दूसरे से बड़े प्रभावित थे। इस आकर्षण का ही यह परिणाम था कि लाक ने लार्ड एशले (Lord Ashley) का पारिवारिक डाक्टर होना भी स्वीकार कर लिया। किन्तु उसका एशले से इससे भी

अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध था। एशले के नाती को दर्शन पढ़ाने के साथ-साथ वह अपने संरक्षक एशले का विश्वासपात्र सलाहकार भी हो गया। १६६३ में वह केरोलिना के लिये लिखे गये संविधान के संयुक्त लेखक रूप में आया। उस संविधान में उसने धार्मिक सहिष्णुता के महत्व को अच्छी तरह बलपूर्वक रखने की चेष्टा की। १६७१ में जब एशले लार्ड चान्सलर (Lord Chancellor) के पद पर नियुक्त हुआ तो वह प्रेजेन्टेशन्स (Presentations) का मंत्री नियुक्त किया गया। इस पद पर वह १६७५ ई० तक कार्य करता रहा। इसके अतिरिक्त वह व्यापार समिति (Trade Council) एवं फारेन प्लान्टेशन समिति (Foreign Plantation) का भी मंत्री काफी दिनों तक रहा। इन कामों के साथ-साथ वह अपना चिकित्सा कार्य भी करता जाता था। निश्चय ही उसे इस कार्य में भी काफी ख्याति मिली होगी क्योंकि सिडेन्टम (Sydentam) ने अपनी मेथड आफ क्योरिंग फीवर (Method of Curing Fever) नामक पुस्तक में उसके कार्यों का उल्लेख बड़े आदरपूर्वक ढंग से किया है। वह १६६८ में रायल सोसायटी (Royal Society) का सदस्य भी चुन लिया गया था। यह सब होते हुए उसकी मौलिक प्रतिभा किसी दूसरी दिशा की ओर उन्मुख थी।

लाक ने स्वयं इस बात का उल्लेख करते हुए बताया है कि किस प्रकार उसके कक्ष (Chamber) में धीरे-धीरे करके ऐसे प्रश्नों पर वाद-विवाद और विचार विनिमय होने लगे थे जिनका सीधा सम्बन्ध तत्वज्ञान (Metaphysics) के सम्बन्धित विषयों से था। १६७१ में एक साधारण पुस्तक में लाक ने सर्वप्रथम अपने विचारों को एक सुगठित एवम् क्रमबद्ध रूप (systematic) में प्रस्तुत किया था। १६७५ में प्रशासन सम्बन्धी कार्यों से मुक्त होने के बाद उसने चार साल का समय फ्रांस में बिताया। यह काल उसने पूर्णतया चिकित्सा सम्बन्धी अध्ययन में ही व्यय किये। १६७६ में वह पुनः एक्सकल्यूजन बिल से सम्बन्धित वाद-विवाद में लार्ड शेफ्टसबरी (Lord Sheftesbury) को सहायता देने के निमित्त इङ्गलैण्ड वापस आया। लाक ने अपनी विचार-पद्धति को इसके बाद १६८३ तक के निःशासन काल तक कायम रक्खा। क्रांति (Revolution) के समय

तक उसने उसका निर्वाह किया। चार्ल्स द्वितीय (Charles II) के विद्वेषपूर्ण व्यवहार से जब १६८४ के बाद उसे राज्य संरक्षण मिलना बन्द हो गया तो उसके लिये निराधार और निराश्रित होकर जीवन व्यतीत करने के सिवा और कोई चारा ही नहीं था किन्तु उस समय लार्ड शेफ्ट्सबरी ने उसे एक निश्चित पेन्शन दे दी। इससे उसको एक आधार मिल गया। जैसा कि स्पष्ट ही है उसका यह जीवन-काल निश्चिन्त नहीं था। भीषण विद्रोह के बाद जेम्स द्वितीय (James II) ने उसको निर्वासन दण्ड दे दिया था और यद्यपि उसने बाद में क्षमा भी कर दिया था किन्तु उसके बावजूद भी वह इङ्गलैण्ड में उस समय तक वापस नहीं आया जब तक कि इंगलैंड ने विलियम आफ आरेंज (William of Orange) के अधीन पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर लिया। निर्वासन से वापस आने के एक वर्ष बाद से उसने लेखन क्षेत्र में संलग्नता के साथ पदार्पण किया। उसका "दि एसे आफ कनसरनिंग ह्यूमन अंडरस्टैंडिंग" शीर्षक का लेख (Essay Concerning Human Understanding) और टू ट्रीटाईज़ेज़ आफ गवर्नमेन्ट (Two Treatises on Government) १६९० ई० में प्रकाशित हुए। इसके पाँच वर्ष पूर्व उसका 'लेटर कनसर्निंग टालरेशन' अपने लैटिन रूप में प्रकाशित हुआ था। उसके चार वर्ष बाद उसका अँग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ। इस अन्तिम कृति का कोई तात्कालिक प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि उस समय तक उतने उदार विचारों को स्वीकार कर सकने की अनिवार्य शक्ति विकसित नहीं हो पाई थी। इस बात को लाक ने कैसे स्वीकार किया यह जब उसका वसीयतनामा पढ़ा गया तब पता चला। वस्तुतः उसकी कल्पनाओं पर आधारित विचारों के लिये उस समय तक भी वातावरण निर्मित नहीं हो सका था। इस प्रकार यह माना जाता है कि लाक जब अट्ठावन वर्ष का था तब उसकी प्रथम कृति प्रकाशित हुई थी। यद्यपि वह अपनी इस कृति पर १६७१ से कार्य कर रहा था और लेटर आन टालरेशन (Letter on Toleration) के आंशिक तत्वों का आभास उसकी कृतियों में प्रायः कई वर्षों से विशेष कर अट्ठाइसवें वर्ष से लेकर पैंतीसवें वर्ष तक के काल में स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ते हैं। टू ट्रीटाईज़ेज़ में से प्रथम

का लेखन* काल १६८० से १६८५ के बीच में लिखा गया था। दूसरा उसके निर्वासन काल में डच में लिखा गया था।

लाक (Locke) का शेष चौदह वर्ष का जीवन ईस्ट एंगेलिया (Angelia) में लगभग अर्द्ध अवकाश (semi-retirement) की स्थिति में ही व्यतीत हुआ था। यद्यपि वह कुछ समय के लिये कमिश्नर आफ अपील (Commissioner of Appeal) के कमिश्नर आफ ट्रेड (Commissioner of Trade) के रूप में कार्य करता रहा किन्तु लन्दन की सर्दी उसके स्वास्थ्य के अनुकूल न होने के नाते वह उसको सहन करने में असफल था। इस तरह उसका सार्वजनिक जीवन भी वहीं से समाप्त हो गया। फिर भी उसकी राय (Counsel) सदैव बड़ी मूल्यवान मानी जाती रही। कूटनीति (diplomatic) के मामले में विलियम को उस पर बहुत विश्वास नहीं था। सोमर्स (Somers) और चार्ल्स मोन्टेग्यू (Charles Montague) उसका बड़ा सम्मान करते थे। चार्ल्स आइजेक न्यूटेन (Issac Newton) से उसकी बड़ी घनिष्ठ मित्रता थी। यों तो आर्थिक विषयों पर उसने छोटे-छोटे विवादों को प्रकाशित किया था किन्तु १६९५ ई० में उसने प्रेस के प्रतिबन्ध (Censorship) को नष्ट करने में बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान दिया था। इसके दो वर्ष पूर्व उसने थाट आन एज्यूकेशन (Thought on Education) नामक कृति को प्रकाशित किया था। इस पुस्तक में पाठकों को एमिले (Emile) के विचारों के अंकुर स्पष्ट रूप से अंकित किये जा सकते हैं। वह समय-समय पर इसको परिवर्तित और संशोधित करने से भी नहीं चूका। उसका रीजेनेबेलनेस आफ क्रिश्चियनिटी, जिसका कि उत्तर टूलैण्ड (Toland) के उकसाने पर स्टिलींगफ्लीट (Stelling Fleet) ने दिया था और जो एक काल तक बहुत ही विवादपूर्ण विषय के रूप में बहुचर्चित रहा था लाक के विवादपूर्ण लेखन शक्ति का कलात्मक परिचय देता है। यह

*इस तिथि के प्रमाण सम्बन्धी निश्चयात्मकता के लिये एच० आर० फाक्स द्वारा लिखित लाइफ आफ लाक, खण्ड, २ पृष्ठ १६५—७६ तक

सत्र होते हुए वह अपने मुख्य कृति को अब तक समाप्त कर चुका था; वह केवल अपने मित्रों के स्नेह के कारण ही लिखता-पढ़ता था। लाक की मृत्यु २८ अक्टूबर १७०४ को अद्वितीय वैभवपूर्ण जीवन के बीच हुई। उसने लाक के समान अपना पूर्ण जीवन बड़े सम्पन्न वातावरण में बिताया। शायद ही कोई अन्य व्यक्ति मध्यकालीन विचारों को व्यापक वैज्ञानिकता का आधार प्रदान करने में सफल रहा हो। मृत्यु के बाद भी उसके अनेकों घनिष्ठ मित्र शेष रह गये थे और जैसा कि लेडी मैशम (Masham) ने लिखा है और यह सत्य भी है कि किसी भी मनुष्य को इससे अधिक की आशा भी नहीं करनी चाहिये।

(३)

लाक की टू ट्रीटाईज़ेज़ आफ गवर्नमेण्ट (Two Treatises of Government) एक-दूसरे से उद्देश्य और मूल्य दोनों रूप में भिन्न हैं। इनमें से प्रथम तो विस्तारपूर्वक एवम् शिथिल शैली में लिखा गया सर राबर्ट फिल्मर (Sir Robert Filmer) का प्रतिवाद है। पेट्रीयारका (Patriarcha) नामक निबन्ध में जो सर्वप्रथम १६८० में प्रकाशित हुआ था फिल्मर ने बिना अनुबन्धन के सिद्धान्त की व्याख्या दिये ही अपने निष्कर्ष निकाल लिये थे। हॉब्स के विषय में लिखते हुए वह लिखता है कि, "मैं उसके शासनसत्ता सम्बन्धी समस्त विचारों से सहमत हूँ। मेरा मत-भेद केवल उस सत्ता को उपलब्ध करने के माध्यम से है।" हाब्स (Hobbes) की भाँति फिल्मर भी बिना सन्देह के यह मानता है कि सत्ता का मूल रूप निरपेक्ष (Absolute) ही होना चाहिये। किन्तु वह जिस प्रकार से अपनी इस धारणा को सिद्ध करता है उसमें यह पक्ष कि चार्ल्स प्रथम आदम का प्रतिनिधि है बड़े स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है। जैसा कि स्वयम् लाक ने भी कहा है फिल्मर ने जिन तर्कों पर एक छत्रात्मक शासन सत्ता का निरूपण किया है वह अधिक शक्तिवान नहीं है। लाक ने भी उसे सशक्त ढंग से नहीं रखा है। हाँ लाक ने फिल्मर की बातों का एक-एक करके उत्तर दिया है। उसके विवेचन में प्रत्येक स्थल पर यह बोध होता है कि इतिहास की जड़ें संस्थाओं के इतिहास में ही निहित हैं।

ऐसा लगता है कि संस्थाओं के जन्म में इतिहास का ही योग है। यह सब देखते हुए हमें जो विशेष परेशानी होती है वह यह कि लाक ने फिल्मर जैसे निरीह और नगण्य व्यक्ति के तर्कों के खण्डन में इतनी सविस्तार व्याख्या क्यों प्रस्तुत की। फिल्मर से कहीं अधिक सशक्त पुस्तक हॉब्स की थी। उसकी व्याख्या और आलोचना न करके उसने इसके खण्डन पर इतना बल क्यों दिया है। वस्तुतः वह फिल्मर की कृति द्वारा हॉब्स के विचारों का खण्डन करना चाहता था। निश्चय ही लाक के इस मत के पीछे जो सत्य था उसमें हाब्स की दृढ़ता और स्पष्टता के साथ-साथ उसकी अद्वितीय प्रतिष्ठा का आंतक था। जिस व्यक्ति ने धर्म (Church) को राज्य के विभाग का एक अग माना हो और जिसने स्टुअर्ट (Stuarts) राजाओं और क्रामेवल को उसी बल के साथ प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया हो उसका विरोध व्यावहारिक समस्याओं के साथ इतनी सरलतापूर्वक नहीं किया जा सकता था। इस लिए लाक ने यह कहा था कि वह हॉब्स के विचारों की विवेचना अन्यत्र दूसरी पुस्तक में करेगा। यद्यपि यह सत्य है कि शायद फिल्मर को कोई भी न जान पाता यदि लाक ने उसको इतना प्रमुख बना कर उसकी आलोचना न की होती, फिर भी उसके ऐसा करने में एक सत्य था। फिल्मर के माध्यम से वह उस युग के बड़े-बड़े सामन्तों के पुरोहितों को जो घरों के भीतर जा-जाकर इन विचारों को दृढ़तापूर्वक प्रचारित कर रहे थे उनको खण्डित करना अनिवार्य था।

दूसरी पुस्तक (Treatise) समस्या के मूल का विवेचन प्रस्तुत करती है। उसकी मूल समस्या यह जानना है कि कोई भी राजनैतिक शक्ति—जिसकी कि मूल अभिव्यक्ति कानून बनाने और मृत्युदण्ड से लेकर हर प्रकार के दण्ड देने में साधारण रूप में निहित रहती है—क्यों अस्तित्व ग्रहण करती है? यह निश्चय ही जनहित के लिये ही होती है। इसलिए हमारी मूल जिज्ञासा राजनैतिक आज्ञाओं के पालन करने की आधारभूत अनिवार्यताओं को जानना है। इसी आधार पर लाक ने उन सभी स्थितियों का विवेचन किया है जिनको कि हॉब्स ने अपने विख्यात पुस्तक लेविएथन (Laviathan) में विवरणात्मक रूप में प्रस्तुत किया

है। हॉब्स की समस्त स्थापनाओं और सीमाओं को उसने तिरस्कृत एवम् काट-छाँट कर रख दिया है। हॉब्स के मतानुसार सामाजिक-अनुबन्धन (Social contract) के पूर्व प्राकृतिक स्थिति (Natural State) में एक चिर अशांत युद्धग्रस्त अवस्था (State of war) ही प्रमुख थी। ऐसी दशा में जब कि प्रत्येक मनुष्य अपने दूसरे निकटतम पड़ोसी का जानी दुशमन रहा हो किसी भी प्रकार का विवेक या शान्ति भावना की स्थापना असंभव होती है। ऐसी स्थिति में समस्त मनुष्यों का सम्वेत रूप से निरपेक्षसत्ता (Absolute Power) के सम्मुख समस्त प्राकृतिक अधिकारों (Natural Rights) का आत्म समर्पण करना एक ऐसी अनिवार्य स्थिति है जिसके बिना हिंसात्मक एवम् विनाशपूर्ण वातावरण से मुक्ति मिलना कठिन है। लाक, हॉब्स द्वारा कल्पित इस स्थिति की पूर्ण संभावनाओं को नहीं स्वीकार करता। वह जानता है कि प्राकृतिक स्थिति (Natural State) प्राकृतिक नियमों (Natural Laws) द्वारा प्रशासित होती है। प्राकृतिक स्थिति (Natural State) को नियम की विरोधी स्थिति (Antithesis) मानना—जैसा कि हॉब्स मानता है गलत है। इसके विपरीत प्राकृतिक स्थिति एक पूर्व पीठिका प्रस्तुत करने की स्थिति होती है। वह एक निश्चित नियम की शृंखला द्वारा प्रशासित होती है। उसके नियम प्रत्येक समय, प्रत्येक स्थिति में और प्रत्येक व्यक्ति के आचरण में सहायक होते हैं। उसका निर्णायक (Arbiter) विवेक है। इस प्रकार प्राकृतिक स्थिति (Natural State) में विवेक इस बात को प्रमाणित करता है कि मनुष्य में सम-भावना रही होगी। इसी सम-भावना (Equality) से मनुष्य में उस प्राकृतिक अधिकार (Natural Right) का बोध विकसित हुआ होगा जिसे कि 'इनडिपेन्डेन्ट्स (Independents) ने प्यूरिटेन रिवाल्यूशन (Puritan Revolution) के रूप में जीवन (Life), स्वाधीनता (Liberty) और सम्पत्ति (Property) से सम्बद्ध करके क्रान्ति की भावना प्रस्तुत किया था। यह बिल्कुल स्पष्ट है और स्वयं हॉब्स ने भी इसे स्वीकार किया है कि मनुष्य में आत्मरक्षा की भावना बड़ी प्रबल और गहरी होती है। लाक स्वाधीनता का अर्थ मात्र इस रूप में स्वीकार करता है कि "स्वाधीनता वह अधिकार है जिससे मनुष्य प्राकृतिक नियमों द्वारा प्राप्त अधिकारों की उन प्रवृत्तियों को

विकसित कर सके। ऐसी स्थिति में नियम (Laws) का अर्थ है स्वाधीनता की ऐसी उपलब्धि जो कि पथअनुशासन (Rule of the Road) के अनुरूप व्यक्ति को प्राप्त होते हैं और जिसकी साधारण स्वीकृति (Common Acceptance) उस नियम को स्वीकार करने वाले को विभिन्न दुर्घटनाओं से बचाने की क्षमता देती है। नियम मानव मात्र की आत्म तत्परता (Initiative) की भावना को प्रोत्साहित करता है। वह उसकी ऐसी व्याख्या प्रस्तुत करता है जो अपनी मूल स्थापना में ही दायित्व (Caprice) वैयक्तिक मतपरिवर्तन ऐसी स्थितियों को स्वीकार कर लेता है। सम्पत्ति की धारणा मनुष्य ने आदिम साम्यवाद (Primitive Communism) से ग्रहण किया है जो कालान्तर में वैयक्तिक सम्पत्ति के रूप में बदल गया है। यह परिवर्तन उस समय स्थापित हो पाया है जबसे मनुष्य ने अपने श्रम को अर्थ और लक्ष्य देना प्रारम्भ किया है। इस व्यवस्थापक (Ownership) की भावना से अनुप्राणित श्रम का सिद्धान्त (Theory of Labour) विकसित होकर हॉजस्किन (Hodgskin) और टाम्पसन (Thompson) जो कि आधुनिक समाजवाद के जनक माने जाते हैं उनके सिद्धान्तों में भी अवतरित हुआ है।

हॉब्स की प्राकृतिक स्थिति (Natural State) की भावना उसके समाज प्रधान दर्शन के विरुद्ध है। युद्ध और हिंसा की स्थिति तभी स्थापित होती है जब मनुष्य उन तर्क के सिद्धान्तों एवम् विवेक का परित्याग कर देता है जो कि उसके स्वभाव के अविभाज्य अंग होते हैं। किन्तु प्राकृतिक स्थिति (Natural State) सामाजिक स्थिति (Civil State) नहीं होती क्योंकि प्राकृतिक स्थिति में कोई ऐसी सामान्य सत्ता (Common Superior) नहीं होती जो प्राकृतिक नियमों (Natural Laws) को प्रशासित कर सके। ऐसी स्थिति में प्रत्येक मनुष्य अपने भरसक उस स्थिति को अपने मत-अनुकूल मानता है। चूँकि मानव बुद्धि एक नहीं होती, वह विभिन्न होती है, इसलिये न्यायसम्बन्धी धारणाओं में भी वह अस्वाभाविक भिन्नता प्रदर्शित होती है। इसका परिणाम यह होता है कि एक प्रकार की ऐसी अनिश्चित और अस्थिर स्थिति आ जाती है जिसके कारण मानव दुर्बलताएँ असहनीय-

सी लगने लगती हैं। यही वह स्थिति है जहाँ सामाजिक अनुबन्धन (Social Contract) का जन्म हो पाया। लाक की प्राकृतिक स्थिति (Natural State) की व्याख्या में प्राकृतिक मनुष्य का रूप हॉब्स द्वारा निर्धारित मानव प्रारूप की निराशाजनक स्थिति मे सर्वथा भिन्न है। लाक द्वारा निर्धारित सामाजिक अनुबन्धन (Social Contract) के नियम में आवश्यकता (Necessity) की अपेक्षा •विवेक (Reason) की गति शक्ति अधिक सजीव रूप से चित्रित हुई है। लाक द्वारा निर्धारित स्थिति "प्रत्येक का सबसे (Each with all)" अनुबन्धन (Contract) का परिचायक है। उसमें व्यक्ति अपने वैयक्तिक अधिकार (Personal Rights) को प्राकृतिक नियमो (Natural Laws) के समक्ष इस आशा से समर्पित करता है ताकि वह उन नियमो का पालन करके अपने प्राकृतिक अधिकारों एवम् जीवन (Life), स्वाधीनता (Liberty) और सम्पत्ति (Property) की सुरक्षा को स्थापित कर सके। इस प्रकार लाक द्वारा प्रतिपादित यह अनुबन्धन (Contract) की स्थिति उतनी साधारण स्थिति नहीं है जितनी कि हॉब्स की अनुबन्धन (Contract) स्थिति है। इसकी अपेक्षा यह स्थिति अधिक सीमित और निश्चित (Limited and Specific) है। लाक का सिद्धान्त हॉब्स की भाँति शक्ति त्याग की ऐसी स्थिति (Resignation of Power) नहीं है जिसमें व्यक्ति अपने अधिकारों को किसी दूसरे व्यक्ति या समूह को सदा के लिए दे देता है। इसके विपरीत यह एक ऐसा अनुबन्धन (Contract) है जिसे सम्पूर्ण समुदाय (Community) एक व्यापक महत्तर राजनैतिक शक्ति अर्थात् राज्य को इसलिये हस्तांतरित करता है ताकि वह प्राकृतिक नियमों को प्रशासित कर सके, और अवज्ञा करने वाले को दण्ड दे सके। लाक की राज्य-भावना (State) प्रभुत्व-सम्पन्न (Sovereignty) भावना नहीं है। उसकी सम्पूर्ण पुस्तक में प्रभुत्व (Sovereignty) शब्द का प्रयोग ही नहीं हुआ है। यह स्थिति भी बड़ी महत्वपूर्ण है। वह राज्य को केवल प्राकृतिक नियमों (Natural Laws) की रक्षा करने वाली शक्ति मानता है। उन सीमाओं के बाहर उसका कोई भी कार्य-क्षेत्र नहीं है।

लाक के मतानुसार ऐसे अनुबन्धन सिद्धान्त की पहली और अनिवार्य आवश्यकता बहुमत शासन सत्ता (Majority Rule) है। जब तक कि अल्पमत महत्तर संख्या वाले बहुमत की इच्छा शक्ति (Will) से संतुष्ट होकर बँधेगे नहीं, तब तक प्राकृतिक नियम (Natural Laws) भी पूर्ण रूप से उनकी रक्षा इस सीमा से अधिक करने में समर्थ न हो सकेंगे जितनी कि वे राजनैतिक समाज (Political Society) की उत्पत्ति के पूर्व थी। इसके बाद ही यह भी मान कर चलना अनिवार्य है कि व्यक्ति ने अपना वैयक्तिक अधिकार समुदाय (Community) को प्राकृतिक नियमों (Natural Laws) को निर्वाहित करने की क्षमता के साथ समर्पित किया है। लाक की यह धारणा सामाजिक अनुबन्धन की ऐतिहासिक आवश्यकता (Historical Necessity) को स्वीकार करती है या नहीं यह कहना कठिन है। इस अनुबन्धन से सम्बन्वित कोई भी पूर्व प्रमाण प्रस्तुत करना कठिन है। प्रजाति के विकास के साथ भी इसका सम्बन्ध नहीं स्थापित किया जा सकता। रोम (Rome), स्पार्टा (Sparta) और वेनिस (Venice) की राज्य स्थापनाओं के आधार पर ही अनुबन्धन सिद्धान्त को प्रमाणित किया जा सकता है। वस्तुतः लाक अनुबन्धन सिद्धान्त (Social Contract) की आदिम स्थिति की अपेक्षा उसकी सम्भावनाओं पर अधिक बल देता है। इसीलिए उसने अनुमति (Consent) के सिद्धान्त को प्राथमिकता प्रदान की है। वह अनुमति के आधारों को कायम रखने में अधिक सचेष्ट भी है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हमारे पूर्वज आने वाली पीढ़ी को अपने अनुबन्धन (Social Contract) में बाँधने का अधिकार रखते हैं? यदि कोई भी उचित शासन सत्ता (Legitimate Government) जनता की अनुमति (Consent) पर कायम है तो क्या जनता को अपनी अनुमति को वापस लेने का अधिकार है? इसके साथ ही यह कि ऐसे समुदाय में जन्मे नये शिशु की क्या स्थिति होगी? जहाँ तक लाक का सम्बन्ध है वह अपने तर्क और अनुमति (Consent) के सिद्धान्त में बड़ा ही तार्किक और विवेकवान है। आज्ञापालन का अनुबन्धन (Contract) स्वतन्त्र होना चाहिये नहीं तो हूकर (Hooker) के शब्दों में

इस अनुबन्धन (Contract) का कोई मतलब ही नहीं होगा। किन्तु लाक इस स्थिति को केवल राज्य के आदिम सदस्यों (Primitive Members) तक स्वीकार करता है क्योंकि जब तक कि बहुमतप्राप्त सदस्यों को आज्ञा मनवाने और शासन को लागू करने की शक्ति नहीं मिलेगी तब तक सुचारु शासन सत्ता भी सम्भव नहीं हो पायेगी। शिशुओं की स्थिति सर्वथा भिन्न है। वे किसी भी शासन या देश के अधीन नहीं जन्मते और उनकी अनुमति (Consent) या तो अभिव्यक्त स्वीकृति के अनुसार मानी जायगी या यह मानकर चलना होगा कि वे राज्य के अधीन हैं और उनका संरक्षण राज्य का अनिवार्य अंग है। किन्तु किसी को भी उस समय तक इस अनुबन्धन के सिद्धान्त से बाँधा नहीं जा सकता जब तक कि वह स्वयम् प्रौढ़ होकर अपने आचरण से सर्वमान्य जनता के समान अपने सदस्यों के साथ व्यवहार करना स्वीकार नहीं कर लेता। अनुमति (Consent) में इच्छाशक्ति (Act of Will) के अनुसार कार्य करने की बात भी सम्मिलित है। इसलिये किसी को भी अनुशासित करने के पूर्व इस तथ्य को जान लेना परम आवश्यक है।

इस प्रकार हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य (State) की स्थापना किस प्रकार हुई होगी किन्तु इसकी संगठनात्मक पद्धति (Method of Organization) की रूपरेखा अब भी प्रस्तुत नहीं की जा सकती। लाक के विचार इस संबंध में थोड़े भिन्न हैं। यद्यपि उसने राज्य और शासन में कोई भी ऐसी विभाजन रेखा प्रस्तुत नहीं की है फिर भी यह अन्तर स्पष्ट है। यह सत्य है कि कहीं-कहीं ऐसा लगता है कि शासन सत्ता (government) को अपने समकालीन विचारक पियूफेनड्राफ (Peufendrof) के अनुसार, बिना व्यवस्थित ढंग से स्वीकार किये ही उसने यह माना है कि शासन की उत्पत्ति एक दूसरे अनुबन्धन (Secondary Contract) द्वारा हुई है। यह अनुबंधन (Contract) सामाजिक चेतना (Civil Society) का प्रथम संघ (Original Institution) ही रहा होगा। यह भेद और भी अधिक स्पष्ट रूप में उसने आने वाले प्रसंगों में वर्णित किये हैं। लाक इन समस्त स्थितियों से पृथक समुदाय की उच्चतम शक्ति (Supreme Power) के एकाधिपत्य को बहुमत सत्ता के

रूप में इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहता था ताकि कोई भी शक्ति जो उससे कम क्षमता रखती हो उसे खण्डित न कर सके। यदि राजनैतिक समाज (Political Society) को जीवित रहना है तो फिर उसके साथ शासन सत्ता (Government) का भी रहना अनिवार्य है। यह मानते हुए उसने शासन सत्ता के रूप (form) और उसके तत्वों (substance) को लोकप्रिय (popular) सवों के आधार पर स्वीकार किया है।

अरस्तू (Aristotle) की भाँति लाक ने भी परम्परा के अनुसार शासन सत्ता (Government) को तीन प्रकारों (Types) में विभाजित किया है। जब कानून और नियमों को बनाने का अधिकार केवल एक व्यक्ति में केन्द्रित होता है तो वह एक सत्तात्मक शासन पद्धति (Monarchy) कहलाती है। जब वह शक्ति कुछ व्यक्तियों अथवा समस्त जनता में केन्द्रित होती है तो क्रमशः वह पद्धति सामंतवादी (Oligarchy) एवम् जनतन्त्रीय (Democratic) कहलाती है। इन समस्त प्रकारों की कसौटी कानून बनाने (Legislative power) की शक्ति पर ही आधारित होती है क्योंकि कानून बनाने वाली शक्ति पर ही न्याय (Judiciary) और शासन (Executive) दोनों ही आधारित होते हैं। हॉब्स के विचारों के विपरीत यह सत्य है कि शासन सत्ता कभी भी स्थायी नहीं हो सकती। समूचा समुदाय यह क्षमता रखता है कि वह चाहे तो शासन सत्ता को अपने मतानुसार अस्थायी बनावे या स्थायी। लाक का यह मत है कि एक-सत्तात्मक शासन (Monarchy) पारिवारिक आधार पर विकसित होने के नाते, आदिम प्रवृत्ति (Primitive Type) शासन पद्धति का परिचायक है। इसी आधार पर उसने हाब्स के 'यह पद्धति-सर्वश्रेष्ठ' मत का, खण्डन करते हुए उसकी कटु आलोचना की है। ऐसी शासन व्यवस्था निश्चय ही कालान्तर में अयोग्य व्यक्तियों के हाथ में चली जाती है। ये व्यक्ति समुदाय के बृहत्तर हित की बात न सोचकर अनुबन्धन के साथ गद्दारी करके अपने हित तक ही सीमित हो जाते हैं। इसी प्रकार सामंतवादी (Oligarchy) सत्ता भी कभी अच्छी नहीं हो सकती क्योंकि वह सदैव समुदाय के व्यापक हित की अवहेलना करके एक समूह

अथवा वर्ग के हित का पक्ष लेने लगती हैं। केवल प्रजातन्त्रवाद (Democracy) ही वह लभ्य शक्ति रखती है जो अच्छी शासन व्यवस्था की संभावनाओं के साथ संपन्न है क्योंकि प्रजातंत्रवाद की सत्ता उन प्रतिनिधियों के हाथ में होती है जिनको लोकप्रिय जनमत (Popular Election) अनुशासित और प्रशासित करता है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि लाक सम्राटवाद (Kingship) को समाप्त करना चाहता था। उसके पत्रों से यह स्पष्ट पता चलता है कि वह क्रामवेल की शासन व्यवस्था से कभ भी संतुष्ट नहीं था और न ही वह उस गणतन्त्रात्मक (Republicanism) स्थिति से संतुष्ट था जिसका सबल समर्थन मिल्टन (Milton) और हैरिंगटन (Harrington) ने किया था। वह सम्राटत्व (Kingship) को उस सीमा तक स्वीकार करता था जहाँ वह अपनी वंशानुक्रमिक परम्परा के अनुसार कानून बनाने की शक्ति को लोकप्रिय अनुमति (Popular Consent) के अनुसार चलाना चाहता था। जिस चीज से वह वास्तव में मुक्ति चाहता था वह ईश्वरप्रदत्त अधिकार (Divine Right) के रूप में स्थायी सम्राटत्व (Kingship) था।

इस प्रकार अब हमें वह आधार मिल गया है जिससे कि हम व्यक्ति निर्णय (Individual Judgment) की अनिश्चयात्मकता से प्रथक प्राकृतिक नियमों (Natural Law) की स्वतंत्र व्याख्या प्रस्तुत कर सकते हैं। इसके आधार पर समाज के व्यक्ति सदस्यों के बीच निष्पक्ष न्याय की भी संभावना उस सीमा तक सम्भव हो सकती है जिस सीमा तक कि वे अपने व्यक्तिगत अधिकारों को समुदाय को सहर्ष समर्पित करते हैं। ऐसे नियमों और विधायकों का निर्माण भी संभव हो सकता है जिनके माध्यम से, जीवन (Life), स्वाधीनता (Liberty) और सम्पत्ति (Property) की भी रक्षा की जा सकती है। मौलिक अनुबन्धन (Original Contract) की शर्तों में से यह शर्तें मुख्य रूप से राज्य संचालन में सहायक होती हैं। किन्तु लाक राज्य के दो और कर्त्तव्य मानता है। उसके मतानुसार कानून को मात्र घोषित कर देना ही पर्याप्त नहीं है। उसको लागू करना नितान्त आवश्यक है। इसलिए प्रशासकों का मुख्य कार्य यह है कि वह पारित कानून को उसके अनुशासन के आधार पर

सबसे मनवाने की क्षमता रखें। इसी सम्बन्ध में वह एक तीसरी व्याख्या भी प्रस्तुत करता है और वह यह है कि राज्य को दूसरे राज्य के साथ, वैयक्तिक और सामूहिक रूप में समानता प्रदान करना चाहिये। इस भाव और सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिये लाक ने संघात्मक (Federative) शब्द का प्रयोग किया है। अन्तिम भेद का कोई विशेष मूल्य नहीं है क्योंकि उसने इसकी धारणा के विषय में कोई स्पष्ट मत नहीं प्रकट किया है। वास्तव में अधिक मौलिक और मूल्यवान आग्रह जो भावी इतिहास का महत्वपूर्ण अंग बन कर प्रस्तुत हुआ है वह उसकी विधायक (Legislative) एवम् प्रशासक (Executive) के कर्त्तव्य क्षेत्रों के भेद सम्बन्धी मत हैं। कानून बनाने के कार्य को लाक अपेक्षाकृत, सरल, तीव्र गति के साथ किया जाने वाला कार्य मानता है क्योंकि कानून बनाने वाला कानून बनाने के बाद समाप्त हो जाता है। जो उसको लागू करके काय रूप में परिणत करते हैं वह सतत सतर्कता के साथ उसकी समस्त सम्भावनाओं को भी सतर्क दृष्टि से देखते रहते हैं। इसलिये इन दोनों कार्यों को व्यक्ति और शक्ति के आधार पर अलग-अलग रखना चाहिये। यदि ऐसा नहीं होगा तो कानून बनाने वाले अपने को कानून के अनुशासन से मुक्त कर लेंगे और उसको लागू करने में सदैव ऐसी सतर्कता का आचरण करने लगेंगे कि वे कानून को बनाने में अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं और स्वार्थों के ध्यान का ही पोषण करने लगेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि समुदाय (Community) के हित की अपेक्षा उनके हितों की एक अलग स्थिति बन जायगी और वे समुदाय के हित की अवहेलना करने लगेंगे। इससे समाज और शासन दोनों में ही विकृतियाँ उपस्थित होने लगेंगी। इसीलिये कानून बनाने वाले (Legislators) को स्वयम् अपने ही बनाये गये कानूनों से मर्यादित होना आवश्यक है। यही नहीं उसका ऐसा चुनाव होना चाहिए ताकि वह अपने निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधि सभा (Representative Assembly) में समान रूप से प्रतिनिधित्व कर सके। उस काल की प्रचलित प्रथाओं की यह सब से बड़ी विडम्बना थी कि उस समय तक के सड़े-गले स्वायत्त शासन (Boroughs) सम्बन्धी नियम प्रशासक दायित्व

(Executive Act) से पृथक नहीं किये गये थे। लाक ने प्रस्तुत संदर्भ में उसी की निन्दा की है। यद्यपि उसने यह बात बहुत पहले ही कही थी फिर भी इसको कार्य रूप में अवतरित करने में एक सौ चालीस वर्ष लग गये थे।

लाक ने शक्ति के विभाजन (Division of Power) की बात बलपूर्वक कही है। वह यह जानता था कि अनिवार्यताएँ ही विशेष आवश्यकताओं की जननी होती हैं। इसीलिये उसने समकालीन इङ्गलैण्ड की व्यवस्था के अनुकूल यह स्वीकार कर लिया था कि प्रशासक (Executive) कानून बनाने (Legislators) के कार्य को भी संचालित कर सकता है और अनिवार्य स्थितियों में जब विधान सभाओं की बैठक न हो तो (Special Ordinances) भी पारित कर सकता है। यही नहीं किसी भयंकर ख़तरे की स्थिति में प्रचलित कानून के विरुद्ध आचरण कर सकता है। प्रशासक को विधान सभाओं की बैठक बुलाने के लिये मजबूर नहीं किया जा सकता। यहाँ यह स्पष्ट पता चलता है कि लाक अंग्रेजी संविधान को व्यापक संदर्भों में प्रस्तुत करके उसकी व्याख्या कर रहा है और वह समझौते की मनःस्थिति में यह सब मानता जा रहा है। ऐसा करने में उसके अनुमति (Consent) विचार सम्बन्धी उसकी साधारण दृष्टि से किसी भी रूप में पृथक् नहीं दीखते। उसकी यह धारणा मात्र इसलिये है क्योंकि वह यह मान कर चलता है कि शासन सत्ता के जो लोग इन स्थितियों में विशेष कानून बना रहे हैं वह अकेले नहीं हैं। वह स्वतः क्रियाशील नागरिक हैं। वह एकनिष्ठ रूप में व्यापक प्राकृतिक नियमों और व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों का अर्थ और उसका दायित्व भली प्रकार समझते हैं। इस प्रकार उचित-अनुचित की व्याख्या करने वाले उस स्तर से कार्य करते हैं जो राज्य (State) की महत्तर क्षमता का प्रतीक है। अपने इस विचार की व्याख्या करते हुए वह कहता है कि "कोई भी शासन सत्ता मनचाहा करने के लिये स्वतंत्र नहीं होती..........प्राकृतिक नियम (Natural Laws) सदैव उसकी शक्ति को मर्यादित करने के लिए उसके सभी मनुष्यों और विधायकों के सम्मुख सदैव प्रस्तुत रहती हैं। सामाजिक अनुबन्धन (Social

Contract) इस प्रकार जन विधायकों (Popular Statutes) की स्थितियों में हितों (interests) की रक्षा करती है।

प्रस्तुत सत्यों की नितान्त परिणति ही क्रान्ति के अधिकार को (Right of Revolution) प्रतिष्ठित करती है। यह बड़ी ही महत्वपूर्ण बात है कि उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर लाक क्रान्ति की स्थिति का समर्थन करता है क्योंकि १७७६ में उसने स्वयम् ही यह भी घोषित किया था कि स्वयं आत्मशक्ति (Conscience) के आधार पर भी क्रान्ति को कोई उचित नहीं सिद्ध कर सकता। उसने यह वक्तव्य उस समय के पूर्व दिया था जब चार्ल्स की अन्याय-पूर्ण नीति ने उसे उसके संरक्षक के साथ इंगलैण्ड से देश निकाला का दंड दिया था। जेम्स ने वैधानिक शासन की समस्त सुविधाओं की अवहेलना कर दी थी। क्रांति के अधिकार (Right of Revolution) को अस्वीकार करने का अर्थ यह था कि जेम्स के समस्त अन्याय और अनीतिपूर्ण व्यवहारों और माँगों को स्वीकार करना था; इसीलिये उसने इन विचारों के हित के लिये इतनी विरोधी शक्तियों का सामना करते हुए क्रान्ति को उचित बताया था। उसने कहा था—"किसी भी ऐसी शक्ति (Force) का विरोध करने के लिये जिसके पास अधिकार (authority) न हो शक्ति (force) का प्रयोग करना उचित है।" सम्राट को ऐसी स्थिति में उसे सत्ता (Power) से पृथक् निकाल देना चाहिये जो कि समाज अनुबन्धन (Social Contract) द्वारा उसे दिया गया था। ऐसी स्थिति में (जब समाज अनुबन्धन के विरुद्ध सम्राट् की शक्तियाँ कार्य कर रही हों) प्रतिरोध करना एक प्राकृतिक अधिकार है। किन्तु रुचि (Will) या इस प्रकार के आक्रमण करने की स्वतंत्रता की व्याख्या कैसे की जाय? जिन घटनाओं का उल्लेख लाक ने किया है उनसे यह स्पष्ट पता चलता है कि वह १६८८ की घटनाओं का साथ दे रहा था और उसका समर्थक था। कानूनी एवं वैधानिक शक्तियों का खंडन करके जब निरंकुशात्मक सत्ता (Arbitrary Will) स्थापित हो जाय, संसद (Parliament) जब भ्रष्टाचार के कारण केवल राजवंश के

* देखिये किंग: लाइफ आफ लाक, पृष्ठ सं० ६२-६३

हित का संरक्षण करने लगे, किसी विदेशी राज्य के हित में गद्दारी की भावनाएँ विकसित होने लगें और ससद (Parliament) की वैधानिक बैठक में जब रुकावट पैदा होने लगे—तो इन परिस्थितियों को इस बात का सूचक मानना चाहिये कि सामाजिक अनुबन्धन के समस्त दायित्व खंडित हो चुके हैं और वह विश्वास जो उस अनुबन्धन द्वारा हस्तांतरित किया गया था वह अन्यथा रूप मे प्रयुक्त हो रहा है। जब प्राकृतिक स्थिति (State of Nature) की पूर्व दशा पुनः स्थापित हो जाती है तब ऐसी अवस्था में अनुबन्धन को पुनः नये तरीके ऐसे व्यक्तियों के साथ संगठित करना आवश्यक हो जाता है जो उसके दायित्व को कुशलतापूर्वक निभा सकें। यहाँ लाक ने पुनः हॉब्स के मत का खण्डन करते हुए उसकी अनुबन्धन की केन्द्रीय अनिवार्य सत्ता (Power) की धारणा का खण्डन किया है और सत्ता (Power) के निरपेक्ष (Absolute) अस्तित्व का विरोध करते हुए इस भावना का विरोध किया है कि सत्ता पुनः छीनी (usurp) नहीं जा सकती। हॉब्स ने सत्ता को निरपेक्ष बताते हुए उसको ऐसी शक्ति के रूप में स्वीकार किया है जो फिर वापस नहीं ली जा सकती। किन्तु लाक उसकी कटु आलोचना करते हुये यह कहता है कि निरपेक्ष शासन सत्ता (Absolute Government) का कोई अर्थ ही नहीं है। ऐसी सत्ता शासन सत्ता नहीं कही जा सकती क्योंकि वह स्वार्थ, और तात्कालिक हितों से परिचालित होने वाली शासन सत्ता होती है। उसमें विवेक (Reason) नहीं होता। ऐसी स्थिति की तुलना केवल एक युद्ध स्थिति (State of war) से ही की जा सकती है क्योंकि उस स्थिति में सत्ता (Power) में सम्बन्धी निर्णय शक्ति (Judgment) नितान्त रूप से नहीं होती। उसमें अनुमति (Consent) के तत्व नहीं होते जिसके कारण उसमें कानून के बन्धन में बाँधने की क्षमता विनष्ट हो चुकी होती है। प्रत्येक शासन सत्ता एक प्रकार का नैतिक दायित्व (Moral Trust) है और उसे नैतिक दायित्व के रूप में स्वीकार करने के नाते उसकी अनिवार्य सीमाएँ भी हैं। किन्तु कोई भी सीमा (Limitation) बिना अनुमति के प्रशासित कर सकने में क्षम्य नहीं होती; इसीलिये क्रान्ति (Revolution) समाज की सुरक्षित सत्ता (Reserved

Power) है। इस सत्ता को कार्यान्वित रूप में परिणत करने में यदि कोई वस्तु बाधक होती है तो वह संख्या की शक्ति है। अल्पसंख्यक को क्रान्ति (Revolution) करने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि अनुबन्धन (Contract) की मर्यादा बहुसंख्यक की ऐसी मर्यादा है जिसमें जन-समूह का अधिकांश शामिल होता है। इसलिये उस अनुमति (contract) को यह अधिकार भी होना चाहिये कि विरोध करने वाले को दण्डित कर सके।

इसी प्रकार चर्च और राज्य की समस्या की भी अलग से व्याख्या करने की आवश्यकता अनिवार्य हो गई थी। लाक के समस्त वक्तव्यों में से उसका लेटर आफ टालेरेशन (Letter of Toleration) शीर्षक पत्र निश्चय ही उसके उदार विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। उसे समझने में भी कोई कठिनाई नहीं होती। यह पत्र उसके विचारों का एक लम्बे एवं क्रमिक विकास का उत्कर्ष स्थापित करता है। जैसा कि स्वयं विलियम (William) ने कहा था, "लाक का यह पत्र विचार क्षेत्र में एक युग प्रवर्तक स्थिति का परिचायक है।" यों तो सोलहवीं शताब्दी में राबर्ट ब्राउन (Robert Brown) और विलियम साईलेन्ट (William Silent) ने मनुष्य के विश्वास की उपेक्षा करके उसे प्रताड़ित करने की प्रवृत्ति की घोर निन्दा कर दी थी। पहले बैप्टिस्ट्स (Baptists) में से बुशर (Busher) और रिचर्डसन (Richardson) ने भी धर्म के नाम पर प्रताड़नाएँ देने की वास्तविकता को खण्डित कर दिया था। अमरीका में राजर विलियम (Rodger William) और इंगलैण्ड में मिल्टन (Milton) ने भी इस प्रताड़ना के नैतिक औचित्य और राजनैतिक उपादेयता का घोर खण्डन और विरोध प्रस्तुत किया था। यही नहीं पादरियों में से हेल्स (Hales) और टेलर (Taylor) ने एवं संभ्रांत जनों में से चिलिनवर्थ (Chillinworth) ने भी घृणा तथा तिरस्कार पर आधारित धर्म की खुली भर्त्सना भी कर दी थी। इसीलिए सहिष्णुता के लिये प्रमाण की भी कोई आवश्यकता नहीं थी। हालैण्ड की धार्मिक स्वतन्त्रता—जैसा कि स्पीनोजा (Spinoza) ने स्वतः अनुभव किया है—बहुत ही संकीर्ण था किन्तु फिर भी वह निश्चय ही पूर्ण स्वतन्त्र था। र्‍होड द्वीप (Rhode Island), पेन्सिल्वेनिया (Pensylvania), साउथ

कैरोलिना (South Carolina) और मेस्सेचुसेट्स (Massachusetts) ने नये प्रयोग प्रारम्भ कर दिये थे। पेन ने स्वतः यह कह दिया था कि कोई भी मनुष्य प्रार्थना करने के लिए किसी भी छोटे गिरजे (Chapel) में जा सकता है। उसके लिए चर्च (Church) में ही जाना अनिवार्य नहीं है। वह इस प्रकार भी कर्तव्यपरायण रह कर धर्म का निर्वाह कर सकता है। बर्नेट (Burnet) ने भी १६८७ में अपने लैक्टेन्टियस (Lactantius) के अनुवाद की भूमिका में उस नैतिक कुप्रथा को जिसमें धर्म के आधार पर प्रताड़ना में दी जाती थी घोर निन्दा की थी। उसने चर्च और राज्य (Church and State) के बीच कुछ भेद गिनाये थे जिसमें लाक के मत का विचित्र पूर्वाभास मिलता है।

लाक ने स्वतः तत्सम्बन्धी विषय क्षेत्र की समस्त सीमाओं का उल्लेख किया है। चूँकि वह इन विचारों पर पिछले बीस वर्ष से मनन कर रहा था इसलिये यह अपने विचारों में एक सुदृढ़ निश्चयात्मकता के साथ निष्ठ था। वह सर्वप्रथम इस बात को नहीं मानता कि किसी भी धर्म सापेक्ष शासन सत्ता का कोई राजनैतिक महत्व भी हो सकता है। किसी मजिस्ट्रेट का प्राथमिक कर्तव्य सामाजिक शान्ति स्थापित करना है न कि यह देखना कि जनता की आत्माओं की क्या-क्या समस्याएँ हैं। हाँ, जहाँ कहीं भी कोई विनाशकारी शक्ति राज्य को क्षति पहुँचाती है अथवा कोई भी अशान्ति फैलाने वाला कार्य करती है तो वहाँ मजिस्ट्रेट को यह इस बात का अधिकार है कि वह उस स्थिति का दमन करके उन शक्तियों का नाश करे। यहाँ भी बल का प्रयोग केवल अन्य उपायों के अभाव में ही करना चाहिये। अँग्रेजी दृष्टिकोण में यह निहित है कि प्रत्येक विचार के प्रति सहनशीलता की दृष्टि रखनी चाहिए चाहे वह कैथोलिक (Catholic) मतावलम्बी हो अथवा मुसल्मान (Mohammedan) या नास्तिक (Atheist) हो। जहाँ तक कैथोलिक मतावलम्बियों का सम्बन्ध है वे स्वतः एक विदेशी अनुशासन की सत्ता स्वीकार करते हैं और अपने राजनैतिक विचारों के लिए भी उसी विदेशीय नीति की ओर उन्मुख रहते हैं। मुस्लिम विचारों का योरोप के सामाजिक विचारों में कोई साम्य नहीं मिलता। जहाँ तक नास्तिकवाद का सम्बन्ध है वह किसी भी रूप में कोई ऐसा केन्द्रीय

तत्व नहीं मानता जिससे कि उसके नैतिक आचरण मर्यादित हो सकें। इस प्रकार यद्यपि चर्च और राज्य दोनों एक-दूसरे से पृथक् हैं किन्तु फिर भी दोनों एक अन्योन्याश्रित रूप में एक-दूसरे को हित पहुँचाते हैं। इसलिये यह देखना बड़ा आवश्यक है कि लाक ने धार्मिक प्रताड़नाओं (Persecutions) की इतनी निन्दा क्यों की है और उसे निरर्थक क्यों सिद्ध किया है। आत्मा-सम्बन्धी विकृतियों के उपचार के लिये मैजिस्ट्रेट के पास कोई भी ऐसी दैविक शक्ति नहीं होती जिससे वह उसका उपचार कर सके। ऐसी स्थिति में वह किसी भी अन्य आधार पर अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता क्योंकि वह उन प्रकारों से कभी भी किसी आन्तरिक विश्वास (Internal Conviction) को जन्म नहीं दे सकता। लेकिन यदि यह मान लिया जाय कि मैजिस्ट्रेट यह सब करने की क्षमता रखता है तो भी शक्ति का प्रयोग करना गलत होगा। जब संसार की बहुसंख्यक आबादी ईसाई धर्म का पालन नहीं करती तो ऐसी स्थिति में मजिस्ट्रेट को उन लोगों को भी प्रताड़ित करने का अधिकार देना गलत है। इसी प्रकार यह भी नहीं माना जा सकता कि मैजिस्ट्रेट के पास स्वर्ग के द्वार की कुञ्जी है। लाक ने इस सत्य को बड़े सुन्दर ढंग से कहा है—"ऐसा धर्म जिसे हम जानते हैं कि सत्य नहीं, न तो हमारे लिए सत्य हो सकता है और न उससे हमें कोई लाभ पहुँच सकता है।" इसीलिए वह चर्च को ऐसी संस्था मानता है जो उस समय के विचारों के विरोध में प्रस्तुत होती है। इसीलिये वह चर्च को ऐसी संस्था के रूप में स्वीकार करता है जिसकी सदस्यता स्वेच्छा पर आधारित होनी चाहिये; क्योंकि बिना उसके सदस्य उसके कुप्रभावों से न बचाये जा सकेंगे। चर्च स्वतंत्र रूप से अपने त्योहारों को मनाने के लिए स्वतन्त्र तो हो सकता है किंतु वह अपने सदस्यों में से किसी पर उन त्योहारों को आरोपित नहीं कर सकता। यही नहीं चूँकि स्वयं क्राइस्ट के विचारों के अनुसार प्रताड़ना देना अन्याय और असंगत है इसलिए चर्च की नियंत्रित शक्ति केवल धार्मिक सीमाओं तक ही सीमित रहनी चाहिये। हमें सहिष्णुता के लाभों को कभी भी नहीं भूलना चाहिए। सहिष्णुता का प्रथम शिशु वह उदारता है जिसके बिना किसी भी प्रकार की विचार सम्बन्धी ईमानदारी संभव नहीं हो सकती। इसीलिये अनेक प्रकार के

विरोधों के बावजूद भी लाक ने अपने विचारों में कोई परिवर्तन नहीं किया। उन्हीं विचारों के आधार पर मैकाले (Macaulay) को उन्नीसवीं शताब्दी के राजनैतिक पद्धतियों का नया संगठनात्मक रूप प्रस्तुत करने में विशेष सहायता मिल पाई।

(४)

यदि लाक के प्राथमिक राजनैतिक सिद्धान्तों का विवेचनात्मक अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि लाक के मूल सिद्धान्तों में कोई नयापन नहीं है। वह हर प्रकार से एक परम्परागत चली आती हुई विचारधारा की श्रृंखला की एक कड़ी मात्र है। इस अचेतन स्थिति को पूर्वजों से किसी भी रूप में पृथक नहीं सिद्ध किया जा सकता। उसको कोई निश्चित मतवाद भी नहीं कहा जा सकता। बिना यह जाने कि वह किस सीमा तक अपनी समकालीन समस्याओं में डूबा था कोई उसकी पुस्तकों का ठीक-ठीक अध्ययन भी नहीं कर सकता। उसने स्वयम् हूकर (Hooker) की महानता को स्वीकार किया है और अन्यत्र उसने ग्रोटियस (Grotius) और प्यूफेन्ड्राफ (Peufendrof) की कृतियों की प्रशंसा करते हुए उनकी शिक्षा को आधारभूत तत्व के रूप में स्वीकार किया है। यह सब होते हुए लाक की प्रकृति कुछ ऐसी थी कि वह पुस्तकों की अपेक्षा मानव जीवन से बहुत कुछ सीखता रहता था। उसने बार-बार यह भी बलपूर्वक कहा है कि उसके अनगढ़ विचार (Coarse Thought) स्वतः उसकी अपनी अनुभूतियों से उपजे हैं। उसके इस कथन का मुख्य आशय यह था कि उसके पूर्व के चिन्तक जिस प्रकार की पारिभाषिक ग्रन्थियों में अपने विचार प्रकट करते आये हैं, वह उनसे भिन्न है और सम्पर्कों पर आधारित ज्ञान को अधिक श्रेयस्कर समझता है। उसकी पुस्तक इस अर्थ में तो निश्चय ही भिन्न है कि उसमें अन्यथा और अनावश्यक रूप में वे संदर्भ (allusions) नहीं हैं जो प्राइन (Prynne) की पुस्तकों में बाईबिल के संदर्भों के साथ पृष्ठ के बाद पृष्ठों में लगातार मिलते हैं। इस दृष्टि से यदि] पहला ह्विग नेता (Whig) एक दैत्य-सा कहा जा सकता है तो निश्चय ही लाक उस प्रकार बाई-

त्रिलवादी दुरूहता से अवश्य ही मुक्त माना जायगा। अपनी नवीनताओं के बावजूद भी उसकी कोई भी कृति ऐसी नहीं कही जा सकती जो स्वतः अपने ही मूलभूत सिद्धान्तों को न खण्डित करती हो।

यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि लाक ने अपने पूर्व के चुनावों पर अपने अधिकांश विचार आधारित किये हैं। सामाजिक अनुबन्धन (Social Contract) का सिद्धान्त कम से कम इतना पुराना तो है ही कि उसके तत्व उन वार्तालापों में भी मिलते हैं जो सुकरात और ग्लॉकन (Socrates and Glaucon) के साथ एथेन्स (Athens) के बाजारो में हुए थे। प्राकृतिक स्थिति (State of Nature) का सिद्धान्त तो हमें स्टोइसिज्म (Stoicism) के उन विचारों में भी मिलता है जिसके ऊपर रोमन वकीलों (Roman Lawyers) से लेकर मध्य युग की विचारधारा तक में मिलता है जिसमें अरस्तू के प्रयोगवादी (Aristotle's Experimentation) सिद्धान्तों के विरुद्ध नए सिद्धांतों को स्थापित करने का प्रयास किया गया था। स्वयम् अरस्तू (Aristotle) के सिद्धान्तों में शक्तियों के विभाजन (Separation of Power) सम्बन्धी विचार स्पष्टतया मिलते हैं। यही नहीं लाक के सौ वर्ष पूर्व ही बोडिन (Bodin) ने इस सिद्धान्त को वैज्ञानिक राजदर्शन का मुख्य अंग मान लिया था। ठीक इसी प्रकार क्रान्ति (Revolution) सम्बन्धी उसके विचार भी नितान्त रूप से उसके अपने सिद्धान्त नहीं कहे जा सकते। जैसे ही रिफार्मेशन (Reformation) ने चर्च और राज्य से सम्बन्धित समस्याओं पर नये परिप्रेक्ष्य के साथ विचार प्रस्तुत किये थे, वैसे ही उसके साथ-साथ वे समस्त विचार जिन्हें लाक ने इतनी गहनता के साथ प्रस्तुत किया था हर व्यक्ति की चर्चा का विषय बन चुका था। प्रेसबेटीरियन्स (Presbyterians) में गुडमैन (Goodman) और नाक्स (Knox), कैथोलिक मतावलाम्बियो में सुराज (Suarez) और मैरियाना (Mareana) एवम् ह्यूगनाटवादियों में से विण्डिशियोव (Vindicioe) नामक ग्रन्थ का लेखक फ्रैंसिस हाटमैन (Francis Hotman) एवम् अन्य कई विचारकों ने भी जन शक्ति को एक दायित्व (Trust) के रूप में स्वीकार किया था। हाँ, अन्तर इतना था कि उन्होंने मात्र

इतना ही कहा था कि जब शक्ति का दुरुपयोग होने लगे तो उसका विरोध करना चाहिये। चूंकि लाक स्वयम् एल्गेरनौन सिडनी (Algernon Sydney) के परिचितों में से था इसलिये वह उन परम्पराओं से परिचित था जिन्हें सिडनी ने डिस्कोर्सेज् आन गवर्नमेन्ट (Discourses on Govt.) में लिखा है। यही नहीं उनका सहिष्णुता का सिद्धान्त भी उस युग के सैकड़ों विवादग्रस्त चिन्तकों में से दो-एक द्वारा व्यक्त किया जा चुका था। अस्तु लाक के सिद्धान्तों में न तो जेर्मी टेलर (Taylor) की-सी उच्चस्तर की वर्णन शक्ति है और न वह हृदय-ग्राही सरलता ही है जो विलियम पेन (William Penn) की कृतियों में समान रूप से पाई जाती है।

लाक अपने पूर्वजों से जिस बात में सर्वथा भिन्न है वह उसकी शैली है। वह एक ओर तो अपनी दृष्टि से समस्याओं पर विचार प्रस्तुत करता है और दूसरी ओर वह क्रान्ति (Revolution) की समस्याओं के साथ युग की समस्याओं को भी लेता हुआ चलता है। सिडनी (Sydney) को छोड़कर पहले के प्रायः सभी चिन्तक—यद्यपि १६८६ तक सिडनी की कोई कृति प्रकाशित नहीं हुई थी—शायद ही चर्च के सम्बन्ध में लिखते समय राज्य (State) के विषय में इतने जागरूक रहे हों जितना कि लाक था। यहाँ तक कि धर्म निरपेक्ष हॉब्स ने भी अपनी कृतियों में राज्य के उस अंधकारमय साम्राज्य (Kingdom of Darkness) के विषय में इतनी सतर्कता के साथ नहीं लिखा है। सिडनी को छोड़कर प्रायः सभी ने प्रतिबन्ध की बात कही है किन्तु उनमें से प्रत्येक ने इस प्रतिरोध को केवल धर्म के नाम पर अत्याचार करने वाले के विरुद्ध ही उचित घोषित किया है। उनमें से कार्टराइट (Cartwright) ही सतर्क चिंतक था। उसने अपनी कृति में क्राति (Revolution) की चर्चा करते हुए राजनैतिक दमन नीति (Political Oppression) को उसकी मूल धारणाओं (Fundamentals) में से जानबूझ कर निकाल डाला है। इसके विपरीत लाक ने क्रान्ति के सिद्धान्तों की स्थापना करते हुए राजनैतिक दमन को मौलिक प्राथमिकता दी है। अंग्रेजी विचारकों में लाक ही वह प्रथम विचारक रहा है जिसने धर्म निरपेक्ष होकर बातें कही हैं। ऐसा नहीं है कि

वह धार्मिक प्रभावों (Ecclesiasticism) से सर्वथा मुक्त रहा है क्योंकि ह्यूम (Hume) की शंकावादी (sceptical) विचारों के पूर्व तक यह स्थिति संभव ही नहीं हो पाई थी। फिर भी यह स्पष्ट है कि लाक की आधारभूमि उसके पूर्वजों की आधारभूमि से सर्वथा पृथक् रही है। उसके पूर्वज उस पक्ष को नहीं देख पाये थे जिस पक्ष को लाक देख सका था। लाक चर्च और राज्य के पृथकीकरण (Separation) की बात तो करता है किन्तु उसका पृथकीकरण उन स्काट जेस्यूआईट्स की भाँति नहीं है जो धार्मिक स्वतन्त्रता (Eccelesiastic Independence) के लिए चर्च से पृथक् होना चाहते थे। इसके विपरीत उसकी पृथकीकरण की धारणा राज्य (State) को प्रमुखता देने की दृष्टि से विकसित हुई है। उसके सामने मूल समस्या राजनैतिक है। अन्य सभी समस्याएँ इसके बाद प्रस्तुत होती हैं। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो मैकीयावली को छोड़कर पूर्व के सभी चिन्तक ही अपने विचारों में इतने स्पष्ट नहीं हैं जो वे मध्य-कालीन संस्कारों की पतनशील प्रवृत्तियों के प्रति इतने जागरूक ढंग से बात नहीं कर सकते। उस काल में चर्च और राज्य (Church & State) दोनों ही एक-दूसरे के क्षेत्र में अत्यधिक हस्तक्षेप करने लगे थे। ऐसी स्थिति में नये विचारों को विकसित होने की अनिवार्यता ही नये पथ को प्रशस्त कर चुकी थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के ऐतिहासिक अनुसन्धानों ने राज्य के विकास सम्बन्धी अनुबन्धन के सभी सिद्धान्तों को व्याख्या के रूप में तिरस्कृत कर दिया है। इन चिन्तकों ने प्राकृतिक अधिकारों (Natural Rights) को संगठित समाज के पूर्व (Anterior) की स्थिति के रूप में स्वीकार किया है। आज की राजनैतिक समस्याएँ अपेक्षाकृत इतनी जटिल हैं कि हमारे पूर्व के राजनैतिक चिन्तक आज की तरह सोच ही नहीं सकते थे। फिर भी लाक का प्राकृतिक अधिकारों (Natural Rights) और अनुमति (Consent) के प्रति सतत आग्रह आज प्रत्येक रूप में प्रत्येक दृष्टि से आलोचनात्मक अध्ययन का विषय बना हुआ है। इतिहास के प्रत्येक संघर्षात्मक काल में इन सिद्धान्तों को नये अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। अनुमति का सिद्धान्त (Theory of Consent) बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि बिना इसके उचित ज्ञान के मनुष्य प्रशासनात्मक

अभिव्यक्तियों में निरीह प्राणी-सा अपनी शक्ति को जाने बिना सत्ता (Power) की अनधिकारपूर्ण नियत्रणों में दबता रहा है। मानव समूह की सामुहिक अनुमति में जो भाव निहित है वह यह कि सत्ता की पृष्ठभूमि में स्वतन्त्र चेतना कार्य करती है। इसालिये राज्य की मुख्य भौतिक तुष्टियों में ही पूर्ण उपलब्धियाँ नहीं प्राप्त होतीं। इनके अतिरिक्त भी तुष्टियों को प्राप्त करना राज्य का ध्येय है। प्राकृतिक अधिकारों (Natural Rights) की धारणा इस भि ान से ही गहन सम्बन्ध रखती है। क्योंकि जब तक हम अधिकार को केवल कानून मानने वाले प्राणी के रूप में ही स्वीकार करते रहेंगे तब तक उन अधिकारों के छीने जाने की स्थिति से कोई भी बचाव का रास्ता नहीं निकल सकता। राज्य सम्बन्धी केवल वैधानिक (Legal) ज्ञान राजनीति दर्शन (Political Philosophy) की पूर्ण समस्याओ की तुष्टि नहीं कर सकता।

लाक के अतिरिक्त किसी भी अन्य विचारक ने इस समस्या को इतने स्पष्ट रूप में नही देखा था। यदि लाक के सिद्धान्तों का अध्ययन करते समय कोई उन सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि मे बिना न्याय सम्बन्धी बातों को स्पष्टतया देखे, सरक्षण के निहित तत्व का उचित मूल्यांकन नहीं कर सकता। यही नहीं उसके विचार का मूल आधार भी खो जाता है। राज्य, जिसका कि मूल उद्देश्य मनुष्य को व्यवस्थित शक्तियों को और आत्म-प्रवृत्तियों को पूर्ण रूप से विकसित करना है वह कुछ बातों को विधायकों के अधिकार के परे की वस्तु मान कर चलता है। स्टैमलर (Stammler) जिसे प्राकृतिक अधिकारों के विषयगत परिवर्तन का प्रतीक मानता है—ऐसा विषयगत प्रतीक जो हमारी क्षमताओं (Power) के साथ हमारी आवश्यकताओं के अनुकूल विकसित होता है—वह (State) यदि राज्य जीवित रहना चाहता है तो उसके लिए नितान्त आवश्यक है। यही वह स्थल है जिसे लाक की जिज्ञासा का केन्द्रबिन्दु माना जा सकता है। टी० एच० ग्रीन के मतानुसार लाक जिस विषय में मुख्यतः रत था वह ईश्वरप्रदत्त अधिकार के अनुसार सम्राट (Kingship) को गलत कार्यों को करने की अनिवार्य छूट का खण्डन था। इस निकृष्ट सत्ता को

सीमित करने की जो विधि उसने बताई वह सत्ता (Power) को काट-छाँट कर सीमित करने की विधि थी। इस कार्य को करने के लिए उसने दो तरीके अपनाये थे : एक का तो रूप बाह्य (External) था; और दूसरे का रूप आन्तरिक चरित्र (Inner Character) से सम्बन्ध रखता था।

बाह्य पद्धति (External Method) के दो पक्ष थे : पहला पक्ष तो राज्य की सीमित व्याख्या प्रस्तुत करने से उपलब्ध होता है। लाक राज्य को एक नकारात्मक संस्था (Negative Institution) से अधिक महत्वपूर्ण मानता था। यदि इस स्थिति को और ध्यानपूर्वक देखा जाय तो स्पष्टतया यह पता लग जायगा कि उसने राज्य को वृहत एवम् सीमित (Limited) दायित्वों की वस्तु के रूप में स्वीकार किया था। यदि इसकी और गहन व्याख्या की जाय तो यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होगा कि नीयो हिगेलियन विचारकों (Neo Hegelians) में से ग्रीन (Green) और बोसांके (Bosanquet) के सिद्धान्तों में भी राज्य व्यक्तिहित की सापेक्षता में नकारात्मक (Negative Sense) तत्वों से मुक्त नहीं हो पाया था। जहाँ तक लाक का सम्बन्ध है वह इन अधिकारों को इसी प्रकार से सुरक्षित रखना चाहता है। वह जो कुछ भी स्थापित करना चाहता है यदि उसे सारांश रूप में प्रस्तुत किया जाय तो उसे रूसो के विचारों का एक विभिन्न एवम् महत्वपूर्ण पूर्व कल्पना (Anticipation) कहा जा सकता है अर्थात् वह प्रभुत्व शक्ति (Sovereignty) की स्थापना को समूचे समुदाय को छोड़कर कहीं अतिरिक्त स्थिति होने की बात का खण्डन करता-सा प्रतीत होता है। वह यह मान कर चलता है कि एक सर्वमान्य राजनैतिक महान् व्यक्तित्व (Political Superior) का समुदाय में होना परम आवश्यक है किन्तु इसके साथ यह भी है कि शासन सत्ता को सर्व शक्तिमान (omnipotent) सत्ता के रूप में कभी भी स्थापित नहीं किया जा सकता। लाक की पुस्तक में जहाँ-कहीं भी प्रभुत्व शक्ति का उल्लेख आया है वहाँ उसने इस शब्द का प्रयोग बहुमत की उस इच्छा शक्ति के रूप में किया है जिसे रूसो (Rousseau) ने व्यापक इच्छा शक्ति (General Will) के रूप में स्वीकार किया है। किन्तु लाक ने जिस प्रकार उसे यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की

है उसमें प्रभुत्व सम्बन्धी धारणा विशृंखल होकर प्रस्तुत हुई है। वह प्रभुत्व शक्ति (Sovereignty) के रूप को क्रियाशील (operative) अर्थ देने में समर्थ नहीं हुआ है। लाक जैसे व्यक्ति के लिए जिसने तीन सम्राटों के लगातार शासन काल में व्यापक जन इच्छाशक्ति का हनन होते हुए देखा हो और सत्ता की असीमित शक्ति के फलस्वरूप उसकी बुराइयों से भी परिचित हो चुका हो-उसके लिये प्रभुत्व शक्ति को प्रचलित रूप में अस्वीकार करना स्वाभाविक ही था। यदि तर्क के आधार पर हाब्स के मत की विवेचना की जाय और उसकी प्रभुत्व सम्बन्धी निरपेक्ष, अनियंत्रित शक्ति का अध्ययन करके उसकी तुलना लाक के विचारों से की जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि लाक हमारे युग की स्थितियों और परिस्थितियों के स्थापन एवम् समर्थन में अधिक है। लाक की अभ्यर्थना में बेन्थम और आस्टिन (Bentham and Austin) को भी संसद् (Parliament) की सर्व शक्तिमान सत्ता को प्रतिष्ठित करने का प्रयास करते हुए लाक के दृष्टिकोण की नैतिक सत्ता और यथार्थवादिता को स्वीकार करना पड़ा है। आज जितना ही अधिक उसका अध्ययन किया जाता है उतना ही स्पष्ट रूप में लाक के तर्कों की अनिवार्यता* भी स्पष्ट होती जाती है।

किन्तु आन्तरिक सीमाओं (Internal limitations) को जिस प्रकार लाक ने प्रस्तुत किया है बड़ा सन्देहपूर्ण है। उसके मतानुसार शासन सत्ता का मूल तत्व दायित्व निष्ठा (Trustee) के आधार पर विकसित हुआ है, किन्तु वह यह भी मानता है कि ये दायित्वनिष्ठ व्यक्ति (Trustee) भी अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करते रहते हैं। इसीलिए वह सम्पूर्ण दायित्व को भी विभिन्न खण्डों और व्यक्तियों में बाँट कर रखना चाहता है ताकि शासन सत्ता के छिनने या उसके अतिक्रमण की संभावना नष्ट हो जाय। इस सिद्धान्त का एक बहुत लम्बा इतिहास है जिस पर विचार करना व्यर्थ का समय गँवाना है। इस आन्तरिक सीमा के सिद्धान्त ने बड़े बर्बर रूप में समस्त मानव वर्ग को विभाजित करके प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसका

---

*देखिये मेरी पुस्तक प्रॉबलम आफ सावरेनटी, अध्याय १।

अनिवार्य परिणाम यह हुआ है कि इस विचार पर आधारित समस्त तर्क शक्ति बे-बुनियाद एवं निराधार रूप में प्रस्तुत हो कर रह गई है। मान्टेस्क्यू (Montesquieu) ने आन्तरिक विभाजन के नियम को स्वाधीनता का मूल मन्त्र माना है। ब्लैकस्टोन (Blackstone) जो इसके अर्थ को अधिक स्पष्ट रूप में जानता था, केवल फ्रेंच लेखक (मान्टेस्क्यू) के ही शब्दों को पुनरोक्ति रूप में दुहराता चलता है। यही नहीं उसके साथ मैडिसन (Madison) के विचार में परिवर्तन करने के लिये अमरीका के उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) तक में यह स्पष्ट रूप से सिद्ध करने की चेष्टा की है कि किसी भी अन्याय एवम् अत्याचार (Tyranny) को शक्ति विभाजन (Separation of Power) के नियमानुसार रोका जा सकता है। किन्तु सत्य यह है कि इन धारणाओं को वास्तविकता का आधार नहीं मिल पाया है। सत्ता के विभाजन (Separation of Power) का अर्थ बहुत-सी भ्रान्तियाँ पैदा कर देता है। किसी भी जज के न्याय करने और उसके कानून बनाने के कार्य में कोई वास्तविक विभाजन नहीं प्रस्तुत कर सकता*। प्रत्येक शासन सत्ता के विभागों को कुछ न कुछ नियम बनाने पड़ते हैं और उन नियमो के आधार पर किसी न किसी रूप में न्याय का भी कार्य करना पड़ता है। अमरीका में तो सत्ता विभाजन का इतिहास यह रहा है कि वहाँ इस बात का सतत प्रयास किया गया है कि इन विभाजित सत्ताओं को किसी न किसी रूप में फिर से एक में सङ्गठित करके व्यापक जनजीवन से अधिक से अधिक प्रतिभाओं को शासनसत्ता के कार्य में भाग लेने की नीति को प्रोत्साहन दिया जाय। फ्राँस में तो सत्ता विभाजन (Separation of Power) का अर्थ अभी कुछ दिनों पूर्व तक यह रहा है कि वहाँ की सारी न्याय व्यवस्था मन्त्रिमण्डल के अधीन कार्य करती थी। इसके साथ-साथ लाक को भी नहीं भूलना चाहिये जब कि क्रामवेल के वैधानिक प्रयोग प्रारम्भ किये थे और उनके जो परिणाम हुए थे। यह सत्य है कि आधुनिक राज्य के लिए—

*देखिये जस्टिस होम्स (Holmes) का जेन्सन बनाम सदर्न पैसेफिक नामक मुकदमे का २४४ U. S. २२१

सत्ता विभाजन (Separation of Power) नितान्त आवश्यक है किन्तु इस विभाजन को विभिन्न खानों और सीमाओं में दृढ़ता के साथ इस प्रकार नहीं बाँधना चाहिए जिस प्रकार कि लाक ने बाँधने की चेष्टा की है।*

अस्तु हमें उन आलोचनाओं को जिन्हें फिट्जजेम्स स्टीफेन (Fitzjames Stephen) ने अपनी पुस्तक में लाक के सहिष्णुता के सिद्धान्तों (Theory of Toleration)के विरुद्ध लिखा है उसकी भी अवहेलना करनी चाहिये।† आधुनिक युग में संसार का अधिकांश भाग लाक के सिद्धान्तो को स्वीकार करने में संकोच नहीं करेगा क्योंकि उसके सिद्धान्तों में अँग्रेज़ी प्रकृति का पूर्ण प्रतिनिधित्व तो है ही साथ ही वह अपनी समझौते की नीति के कारण और भी अँग्रेजी मिजाज के अनुकूल हो गया है। यह सब होते हुए भी उसके सिद्धान्तों के विरुद्ध जो आलोचनाएँ प्रस्तुत की गई हैं—विशेषकर प्रोस्ट (Prost) की आलोचना—उनकी तुष्टि लाक के सिद्धान्त नहीं कर पाते। लाक का यह मत कि प्रत्यक्ष रूप से चर्च का धर्म से कोई सम्बन्ध ही नहीं है और तो और उदार एंग्लीकनों को भी न स्वीकार होगा। किन्तु यदि चर्च के प्रत्यक्ष योग को एक बार के लिए भी मान लिया जाय, तो फिर लाक द्वारा प्रस्तुत किये गये चर्च और स्टेट के विभाजन और तत्सम्बन्धी विचार स्वतः धराशायी हो जायँगे। साथ ही इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि लाक ने बेजा दबावों द्वारा स्वीकृति प्राप्त करने की संभावनाओं की उचित व्याख्या नहीं की है। यह सत्य है कि लुई चौदहवें की नीति ह्यूगनाट्स (Huguenots) के विरुद्ध बहुत ही अमानुषिक थी, किन्तु यह होते हुए भी उसकी नीति की क्षमता के प्रति सन्देह नहीं किया जा सकता। यह भी सन्देहास्पद ही है कि लाक के सिद्धान्तों का ऐसे व्यक्तियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा जो—समकालीन रोमेन कैथोलिक की भाँति यह मानते हैं कि आत्मसाक्षात्कार किये हुए विशिष्ट सत्य को प्रतिष्ठित करने में, अन्य सभी

---

*देखिये मेरी पुस्तक "अथॉरिटी इन दि माडर्न स्टेट", पृष्ठ ७०

†देखिये इस सम्बन्ध में कालरेज (Coleridge) के बयान। टेबेल टाक, ३ जनवरी, १८३४।

समस्याएँ मूल्यरहित हो जाती हैं। इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए उसने लिखा था—"प्रत्येक चर्च अपने ही प्रति रूढ़िग्रस्त रहता है, दूसरों के प्रति वह सदैव त्रुटिपूर्ण और धर्मविरोधी (heretical) होता है।" किन्तु किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिये लाक का जो ईमानदारी से चर्च में विश्वास करता है इस विचार में ईश्वर निन्दा (Blasphemy) के तत्व भी दिखलाई पड़ेंगे। साथ ही किसी भी गम्भीर चिन्तनशील ईसाई के लिये लाक का यह विचार कि—"क्राइस्ट के उपदेशानुसार कहीं भी एक क्रिश्चियन कामनवेल्थ (Christian Commonwealth) का कोई संदर्भ ही नहीं है" असह्य होगा। प्रेसबेटिरियन और कैथोलिक (Presbyterians, Catholics) को तो उसकी यह बात अपने धर्म का मजाक उड़ाने जैसा भी लग सकता है।

यहाँ और इस संदर्भ के अतिरिक्त भी बहुत से स्थल ऐसे हैं जहाँ लाक बेन्थमवाद (Benthamism) का पूर्वज जैसा बात करता हुआ लगता है। यही नहीं उसकी बात भी बिना इस संदर्भ (बेन्थम के संदर्भ) में देखे समझ में नहीं आ सकती। जिस प्रकार वह अपनी नैतिक जिज्ञासा के अनुसार व्यक्ति के आनन्द का अन्वेषण करने में रत था उसी प्रकार वह राजनैतिक क्षेत्र में जनता के सामान्य आनन्द (Happiness) को दृष्टि में रखकर वह बात करता था। दोनों स्थितियाँ में उसने जो कुछ भी कहा है वह तात्कालिक अनुभूति (Immediate Experience) से उपजा हुआ बोध नहीं है। यही कारण है कि उसके अन्दर प्राचीन परम्पराओं के प्रति इतनी गहरी घृणा है कि उसकी कृतियाँ भी उन्हीं भावनाओं से भरी पड़ी हैं। उसका यह मत था कि "ईश्वरीय इच्छा वही है जिसमें कि जनकल्याण (Public Welfare) की भावना निहित होती है।" इस प्रकार उपयोगितावाद का मूल स्रोत, जिसे कि मेन (Maine) ने उन्नीसवीं शताब्दी की क्रान्ति के जनक के रूप में स्वीकार किया है, लाक की कृतियों में व्याप्त हैं। बेन्थम की भाँति लाक में भी विवेक और उससे सम्बन्धित अन्य बहुत से उपयोगितावादी विचारों को अनावश्यक प्रश्रय मिला है। लाक की दूसरी पुस्तक (Second Treatise) को कोई भी बिना इस पूर्वधारणा में विश्वास किये नहीं पढ़ सकता कि राज्य का प्रारूप बिल्कुल एक

मशीन की भाँति है जिसे जब चाहा खण्डों में विभाजित करके बड़े सीधे और सरल ढंग से बनाया-बिगाड़ा जा सकता है। ऐसा करने में भी उसने मौलिक समस्या को बहुत सरल रूप में प्रस्तुत किया है। इस सरलीकरण की दृष्टि ने ही निस्सन्देह रूप से राज्य सम्बन्धी कई मनोवैज्ञानिक सत्यों को खण्डित और ध्वस्त करके छोड़ दिया था। उसका अनुबन्धनवाद (Contractualism) भी इसी विवेकशील होने की प्रवृत्ति का प्रतिरूप है। यही कारण है कि इन धारणाओं को प्रतिपादित करने में वह यह देखना भूल गया कि प्रत्येक राजनैतिक कार्य (Political Act) अनेक उग्र प्रवृत्तियों (Motives) द्वारा उद्भूत होता रहता है। वह समूह प्रकृति (Herd Instruct) और आदिम संस्कारों (Primitive) के प्रति पूर्णतया अनभिज्ञ भी था और वह यह नहीं जानता था कि यह प्रवृतियाँ कैसे मनुष्य के विचारों को प्रभावित करती रहती हैं। यह सारी बातें उसके सिद्धान्त की त्रुटियों के रूप में गिनाई जा सकती हैं किन्तु उन त्रुटियों के लिए उसे क्षमा भी किया जा सकता है क्योंकि मनुष्य और पशु की प्रकृति में कितना साम्य हैं उसे दिखलाने का कार्य डार्विन जैसे वेत्ताओं का था। हमारा लक्ष्य तो अरस्तू की दृष्टि का वह सत्य देखना है जिसमें उसने यह स्थापित किया है कि मनुष्य राजनैतिक समाज (Public Society) में डूबा हुआ प्राणी है।

(५)

लाक की कृति जैसे ही प्रकाश में आई, वैसे ही उसे ख्याति मिलनी अनिवार्य हो गई। उसकी ख्याति का कारण यह नहीं था कि उस पुस्तक को वर्तमान पीढ़ी ने बड़े स्वागत के साथ स्वीकार किया था। समाज में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं थी जो उस तर्कवाद के सिद्धान्त को स्वीकार करने से घबराते थे अथवा सत्य को तर्क की कसौटी के अतिरिक्त किसी अन्य कसौटी पर कसने को श्रेयस्कर समझते थे। वे लोग जो प्राचीन विचारों के अनुयायी थे उन्हें उसमें गणतंत्रवाद (Republicanism) और नास्तिकवाद (Atheism) के अंकुर दिखलाई पड़ने लगे। यह विरोध इस सीमा तक बढ़ गया कि लोग फिल्मर (Filmer)

तक के सिद्धान्तों का तो स्वागत और समर्थन करते किन्तु लाक की निन्दा करने से नहीं चूकते थे। जान हटन (John Hutton) ने लाक के विषय में अपने एक मित्र को सूचित करते हुए कहा था कि "वह उतना ही खतरनाक व्यक्ति है जितना कि स्पीनोजा।" जान हटन का यह मत नानजुरिंग संप्रदाय (Scab) वालों ने बड़े जोरशोर से प्रचारित किया। किन्तु ये सब उस बवण्डर के समान थे जो एक तेज गति से उठे और फिर दफ़न हो गये। बहुतों के लिए क्रान्ति (Revolution) एक अन्तिम सत्य के रूप में अन्तिम निर्णय का प्रतीक बन कर शान्त हो गया। किन्तु लाक का बहुत लोगों ने मात्र इसलिये स्वागत किया क्योंकि उसके विचारों में अन्तिम राजनैतिक निश्चिन्तता पा सकने की सम्पूर्ण भावना सन्निहित थी। इसीलिये विलियम मोलेनेक्स (Molyneux) ने उन विचारों को स्वीकार करते हुए आयर्लैंण्ड की स्वाधीनता की माँग के समय लाक के पुस्तक का अद्वितीय पुस्तक (incomparable) के रूप में उल्लेख किया है। इस प्रकार उस काल में भी वह पुस्तक बड़े विवाद-ग्रस्त रूप में पढ़ी गई। यह भी कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं थी कि हाटमैन (Hotman) की फ्रैंको गोलिया (Franco Gallia) नामक पुस्तक के अनुवाद की भूमिका लाक जैसा व्यक्ति लिखता। जैसा कि मोलिनाक्स ने इस भूमिका को लिखने का अनुरोध करते हुए लाक को लिखा था उससे यह स्पष्ट था कि वह लाक से व्यक्तिगत रूप में परिचित नहीं था। वह उसे केवल उसकी पुस्तक के माध्यम से ही जानता था और हाटमैन को अपने निजी विचारों का साक्षी के रूप में स्वीकार करता था। उसके सिद्धान्त कितनी तेज़ी से प्रचारित एवं प्रसारित हुए थे इसका प्रमाण हमें बील (Bele) के उस पत्र से मिलता है जिसे उसने १६६३ में उस समय लिखा था जब कि लाक स्वयं प्रोटेस्टेन्ट्स के मंगल सूचक शिक्षक के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुका था। उसका तात्कालिक प्रभाव भी केवल इंगलैंड तक ही सीमित नहीं था। फ्राँस के ह्यूगोनाटस (Huguenots) और डच बहुत निकट से उसके सिद्धान्तों के समर्थक थे। बारबेरेक (Barbeyrac) जिसने कि पियूफेन्ड्राफ (Pufendorf) की पुस्तक का अनुवाद १७०६ ई० में प्रकाशित किया था लाक से इतना प्रभा-

वित था कि वह उसके विचारों को बराबर उद्धरित किया करता था। शचेबेरेल (Sacheverell) के दण्ड सम्बन्धी मोकदमे में जितने भी वक्तव्य अभियोग सिद्ध करने के लिये दिये गये थे वे प्रायः आदि से अन्त तक लाक के विचारों से ओत-प्रोत थे। वे वकील जो कि अभियोगी को बचाने के लिये खड़े थे उन्हें भी लाक के बहुत से विचारों को स्वीकार करते हुए जेम्स को गद्दी से उतारे जाने की कानूनी (Legal) स्थिति को स्वीकार करने पड़े थे।

इससे अधिक प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। एडिसन ने अपनी पुस्तक स्पेकटेटर (Spectator) में छः स्थलों पर लाक के विषय में लिखते हुए उसे राष्ट्रीय वैभव (National Glory) के रूप में स्वीकार किया है। डीफो (Defoe) ने अपनी पुस्तक ओरिजनल पावर आफ दि प्यूपुल आफ इङ्गलैंड (Original Power of the People of England) में लाक को जनसाधारण के हृदय में बसने वाला व्यक्ति घोषित किया है और अपने गुरु के रूप में उसकी महानता को स्वीकार किया है। यही नहीं स्विफ्ट (Swift) जैसे द्रोही विचार वाले व्यक्ति को जिसे किसी भी प्रकार से कोई भी सुविधा लाक के मत मानने से नहीं मिल सकती थी उसकी प्रशस्ति करनी पड़ी। पोप (Pope) को भी उसकी शिक्षा को उस रूप में स्वीकार करना पड़ा जिस रूप में कि बोलिंग-ब्रोक (Bolingbroke) ने उसे हस्तान्तरित किया था। होडले (Hoadly) ने अपनी पुस्तक ओरिजिनल एण्ड इन्स्टीट्यूशन आफ सिविल गवर्नमेंट (Original and Institution of Civil Goverment) के प्रथम खण्ड में फिल्मर की स्थापनाओं का खंडन ही नहीं किया है वरन् इसके साथ-साथ उसने लाक के मतानुसार अपनी कृति के प्रत्येक पृष्ठ में विचारों का विवरण और विवेचन प्रस्तुत किया है। दूसरे खण्ड में उसने यद्यपि हुकर (Hooker) का समर्थन बड़े भोण्डे ढङ्ग से किया है किन्तु फिर भी इस खण्ड को भी उसने सेकण्ड ट्रीटाईज के अनुरूप विभाजित करके प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। वारबर्टन (Warburton) जैसा प्रत्येक बात में विरोध प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति वाले विचारक ने भी अपनी प्रकृति का परित्याग करके अपनी पुस्तक डिवाइन लिगेशन (Divine Legation) में लाक को अपने युग की लाज और भावी द्रष्टा के

रूप में उल्लिखित किया है। किन्तु चूँकि वारबर्टन (Warburton) के विचार हाई चर्च (High Church) थियरी को खंडित करने में लाक के विचारों से अक्षरशः मिलते हैं इसलिये सम्भव है कि उसने लाक की इतनी प्रशस्ति मात्र अपने विचारों को स्थापित करने के लिये ही की। सर टामस होलिस (Sir Thomas Hollis) ने इंगलिश रैडिकलवाद (English Radicalism) के पूर्व लाक की पुस्तक का एक बड़ा ही रोचक संस्मरण प्रस्तुत किया था। बोलिंगब्रोक (Bolingbroke) का मज़ाक करते हुए उस युग में प्रायः यह कहा जाता था कि उसने अपनी पुस्तक क्राफ्टसमैन (Craftsman) में वालपोल (Walpole) की टैक्स पद्धति की इसलिये आलोचना की है क्योंकि वह सर टामस हालेस द्वारा प्रकाशित पुस्तक को लाक की अर्थ नीति सम्बन्धी पुस्तक मानता था। प्रस्तुत विवरण इस बात का प्रमाण है कि लाक उस युग में कितना लोकप्रिय और सर्वमान्य ख्याति अर्जित कर चुका था।

किन्तु उसकी ख्याति का अन्त यहीं तक सीमित नहीं था। इसके बाद भी मानटेस्क्यू ने जब लाक के सत्ता विभाजन (Separation of Power) के सिद्धान्त के अनुसार अपनी कृति की रचना की तो उसने लाक के सिद्धान्त को अपनी पुस्तक का आधार-शिला बनाया। यही नहीं बाह्य रूप में अध्ययन करने वालों (Sciolists) ने भी लाक के इस पुस्तक का उपयोग अनुबन्धन (Contract) के सिद्धान्त की व्याख्या करने के लिए प्रस्तुत किये थे। डेक्लेरेशन आफ इन्डेपेन्डेन्स के रचयिताओं को भी प्राकृतिक अधिकार और प्राकृतिक स्थिति (State of Nature) की व्याख्या करने के लिए लाक की पुस्तक का आश्रित होना पड़ा और नार्थ केरोलिना (North Carolina) के मिस्टर मारटिन (Mr Martin) को फिलाडेलफिया के अधिवेशन में अपनी बात के समर्थन में लाक का उद्धरण भी प्रस्तुत करना पड़ा। यह सब होते हुए भी लाक द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों को उसी काल में उसके विरुद्ध भी प्रयोग किया जाता था, और उसकी पुस्तक की भी अवहेलना की जाने लगी थी। बजाय इसके कि लोग उसके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को समय के अनुकूल एवम् आवश्यकतानुसार उसका प्रयोग करते उन्होंने उसका खण्डन प्रारम्भ कर दिया।

ह्यूम (Hume) के थोड़े से वाक्यों ने अनुबन्धन (Contract) के सिद्धान्त को ठीक उसी प्रकार रद्द कर दिया जैसे उसके पूर्व ईश्वरप्रदत्त सम्राटत्व के अधिकार (Divine Right of Kingship) का सिद्धान्त खण्डित किया गया था। ब्लैकस्टोन (Blackstone) ने जब क्रान्ति (Revolution) के बाद समस्त घटनाओं को संपृक्त रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की तो वह यह मान कर चला कि अनुबन्धन (Contract) का सिद्धान्त मात्र एक कपोलकल्पित गल्प है और १६८८ के समझौते के सन्दर्भ में केवल उसका एक किंवदन्ती के रूप में ही योग रहा है। इसी प्रकार डीन टकर (Dean Tucker) की कृति भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। अमेरिकन युद्ध में इङ्गलैण्ड की पराजय निश्चित थी और इसलिये डीन टकर को लाक विद्रोह के प्रणेता होना स्वाभाविक था। उसने इस तथ्य का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "अमरीकन्स ने लाक के सिद्धान्तो को वर्तमान युद्ध की आधार भूमि बनाई थी।" उसने अपनी पुस्तक कन्सर्निंग सिविल गवर्नमेन्ट (Concerning Civil Government) और फोर लेटर्स (Four Letters) में यह घोषित किया था कि यह बात उसके समझ में नहीं आती कि लाक को लोग इतना महत्व-पूर्ण व्यक्तित्व क्यों मानते हैं? इसी प्रकार रूसो (Rousseau) के अनुयायी जो इङ्गलैण्ड में थे उन्होंने उस पर यह आरोप लगाया था कि लाक जिसे वर्तमान इङ्गलैंड में समता स्थापित करने वाला माना जाता है वास्तव में फ्रांस के विस्फोट का वही मूल कारण है। ठीक उसी समय बर्क (Burke) ने भी इन पृथक-पृथक कहे जाने वाली बातों को एक सूत्र में पिरोकर रखने की चेष्टा प्रारम्भ कर दी थी। जब उसने अनुबन्धन सिद्धान्त (Contract Theory) का पूर्ण खंडन प्रस्तुत कर दिया तो उसके बाद से इङ्गलैंड में तो लाक का प्रभाव भी कम हो गया। सामाजिक अनुबन्धन (Social Contract) के स्थान पर उपयोगितावाद (Utilitarianism) के उन सिद्धान्तों की प्रभुता बढ़ने लगी। इसकी रूपरेखा ह्यूम (Hume) ने प्रस्तुत की थी। इस प्रकार जब बेन्थम द्वारा लिखित फ्रैग-मेन्ट (Fragment) प्रकाश में आया तो उसके बाद से सर्वथा नये राज-नैतिक विचारों का इतिहास प्रारम्भ हो गया।

लाक प्रस्तुत जागरूकता (Renaissance) का महत्वपूर्ण अंग था। क्योंकि जैसे ही बर्क (Burke) का प्रभाव इङ्गलैण्ड में समाप्त हुआ वैसे ही लोगों ने नये देवताओं को खोजना प्रारम्भ किया। बेन्थम ने प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त को वैसे भी नष्ट कर दिया था। जहाँ तक अतीत के प्रति घृणा करने की प्रवृत्ति थी वह बेन्थम में लाक से कहीं अधिक तीव्र थी। लाक की कृतियों की तुलना उसके पूर्व के चिन्तकों में से रूसो और हॉब्स से करना अधिक उचित होगा बनिस्बत उन चिन्तकों के जो उसके बाद विकसित हुए। ऐसा इसलिये है क्योंकि ह्यूम (Hume) के बाद से अँग्रेजी विचार ऐसी भाषा और माध्यमों के अन्तर्गत प्रयुक्त होने लगी कि उसमें न तो लाक का कोई स्थान ही हो सकता और न उसकी समझ में यह नये माध्यम ही आ सकते थे। यदि स्पष्ट रूप से देखा जाय तो यह सत्य ही है कि लाक की विचार शैली में वह तार्किक स्पष्टता (Relentless Logic) नहीं है जो कि हॉब्स की विचारशैली में है। अपनी तर्क शक्ति के आधार पर हाब्स आज भी अँग्रेजी दर्शन के महत्वपूर्ण व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जाता है। लाक में हॉब्स की भाँति ऐसी शिल्प प्रौढ़ता भी नहीं है जो तथ्य को सम्पूर्ण गहराई के साथ रखने के साथ-साथ उसे प्रेषणीय रोचक और प्रभावशाली बना सकें। फिर भी आज मात्र इस कारण ही लाक को उसके पूर्व के विचारकों की अपेक्षा निम्न नहीं सिद्ध किया जा सकता। यदि आज हॉब्स के प्रभुत्व शक्ति (Sovereignty) सम्बन्धी सिद्धान्त न्याय (Jurisprudence) के क्षेत्र में व्यापक रूप से प्रयुक्त होते हैं तो नैतिक (Ethical) और राजनैतिक (Political) दृष्टि से हमें लॉक के सिद्धान्तों के आधार पर खड़े होकर अनियन्त्रित शक्तियों को सीमित और अनुशासित करने की भी शक्ति मिलती है। यदि हम लाक द्वारा स्थापित मानव प्रकृति की सहज सदाशयता (General Goodness of Man) के सिद्धान्तों को अस्वीकार कर दें तो हॉब्स द्वारा प्रतिपादित मानव प्रकृति की सहज विकृतियों के आधार पर हमारे लिए कुछ भी विचार करना संभव नहीं हो पायेगा। इस प्रकार हम हॉब्स के सिद्धान्त को पूर्णतया नहीं स्वीकार कर सकते। यद्यपि लाक के चर्च और राज्य (Church and

State) सम्बन्धी विवाद में जार्ज कालीन इंगलैंड का रूप सौतेले पुत्र की भाँति अनायास ही बहु चर्चित हो गया था किन्तु इस विचार के विपरीत एक ओर वेसलेयनिज्म (Wesleyanism) और दूसरी ओर आक्सफोर्ड आन्दोलन (Oxford Movement) ने तो प्रतिक्रियावादी विचारों को इस सीमा तक प्रश्रय देना प्रारम्भ कर दिया था कि वे हाब्स के सिद्धान्त का भी समर्थन करने लग गये थे। यदि आज कोई भी अमरीका के चर्च और राज्य सम्बन्धी संघर्ष का इतिहास पढ़े तो उसे यह स्पष्ट हो जायगा कि पिछले सौ वर्षों के अन्तराल में इस पृथकीकरण से जो लाभ हुए हैं उनको देखते हुए लाक के मत की सच्चाई भी स्पष्ट हो जायगी। लाक के सिद्धान्तों से बृहत मानवता के सुरक्षा की बात सम्बद्ध है। इसके विपरीत हाब्स मानवता से उसकी निर्णय शक्ति छीन कर, मनुष्य से उसकी विवेक शक्ति और आत्म-शक्ति लेकर उसे अपने बनाये हुए मतवाद का आँख मूँद कर अनुकरण करने के लिये बाध्य करता है। लाक ने जागरूकता (Vigilance) को स्वाधीनता की (Liberty) बहन के रूप में स्वीकार किया है। इसके विपरीत हॉब्स ने जागरूकता (Vigilance) को दलगत (Faction) सिद्ध किया है, और स्वाधीनता (Liberty) को अराजकता (Disorder) का स्रोत माना है। हर ऐसे स्थल पर जहाँ हाब्स और लाक के मत में भिन्नता दीख पड़ती है वहाँ यह भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि भावी मानवता ने लाक के विचारों का तो समर्थन किया है किन्तु उसने हाब्स का साथ नहीं दिया है। हो सकता है लाक ने सचेष्ट ढंग से निश्चित योजना के साथ अपने विचारों को प्रस्तुत करने की चेष्टा की हो किन्तु इसके बावजूद भी इस बात को स्वीकार ही करना पड़ेगा कि लाक अपेक्षाकृत एक महान उद्देश्य का समर्थक और प्रवर्तक था।

जहाँ तक रूसो (Rousseau) का सम्बन्ध है उसमें और लाक में कोई विरोध नहीं है क्योंकि रूसो ने लाक के बनाये सिद्धान्तों को केवल विस्तार दिया है। लाक की दो कृतियों 'ट्र ट्रीटीज' का कोई ऐसा महत्वपूर्ण अंश नहीं है जिसे रूसो (Rousseau) ने अपने सोशल कन्ट्रैक्ट में स्वीकार न किया हो। यह अवश्य है कि रूसो (Rousseau) ने अपने पूर्वजों की अपेक्षा कई अर्थ में

अधिक गहरी दृष्टि से उस सिद्धांत को देखा था। जिस रूप में रूसो ने इस सिद्धान्त को प्रस्तुत करके उसके शाश्वत महत्व को स्थापित किया था वह लाक के वश की बात नहीं थी। रूसो (Roussean) राज्य के गठन के सर्वाङ्गिकत्ता (Organic) को भली-भाँति जानता था। लाक व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का होने के नाते सदैव राज्य की व्याख्या में अस्पष्ट और दुविधाजनक स्थिति का ही परिचायक रहा है। किन्तु फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि जिन तत्वों के आधार पर रूसो को ख्याति मिली वह नितान्त लाक द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को अग्रसर करने से ही संभव हो सका था। जिस व्यापक इच्छाशक्ति (General Will) को प्रायः अर्द्ध रहस्यात्मक रूप में कहा जाता है वह मूलत: लोक कल्याण (Welfare of the Community) की भावना पर ही आधारित होता है । किन्तु इस व्यापक इच्छा शक्ति (General Will) को कैसे जानने के लिये अन्ततोगत्वा चारों ओर से भटक कर हमें लाक के बहुसंख्यक (Majority) सिद्धान्त पर आकर आश्रित होना पड़ता है। रूसो (Rousseau) ने व्यापक इच्छा शक्ति (General Will) को जिस रूप और जिस सिद्धान्तों पर आधारित करके प्रस्तुत किया है उसकी तह में आग्रह इसी विषय को लेकर किया गया है कि अधिक से अधिक रूप में सत्य और औचित्त को व्यापक प्रतिष्ठा मिले। जहाँ तक इस तथ्य का सम्बन्ध है लाक भी इसी को स्थापित करने के लिये उत्सुक था। अन्तर यह था कि वह इस तथ्य को पाने के लिये कोई ऐसा मार्ग नहीं निश्चित कर पाया था कि जिससे वह संख्या की शक्ति के महत्व को स्थापित कर सकता। इसके साथ-साथ यह सिद्ध करना भी कोई कठिन कार्य नहीं है कि लाक में रूसो (Rousseau) की अपेक्षा व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ अधिक सशक्त रूप में प्रस्तुत हुई हैं। रूसो (Rousseau) ने हर प्रकार से यह सिद्ध किया है कि प्रभुत्त्व शक्ति किसी भी रूप और किसी भी स्थिति में जनता की व्यापक इच्छा शक्ति से प्रथक करके न तो हस्तांतरित की जा सकती है और न वह अन्य कहीं भी जा सकती है। किन्तु जहाँ तक व्यवहार का सम्बन्ध है नगर राज्य (City State) के बाहर व्यापक इच्छा शक्ति लागू करना

कठिन है। इसलिये वह सदैव उस सीमा तक ही सीमित रहती है, किन्तु जब हम आधुनिक समस्याओं पर विचार करने लगेंगे तो फिर लाक की भाँति हमारे सामने वही प्रश्न आकर उपस्थित होता है कि शासन सत्ता पर वे कौन से प्रतिबन्ध हैं जो संभव रूप से लागू किये जा सकते हैं। रूसो (Rousseau) ने केवल इस विवाद की अनिवार्यता पर ही विशेष आग्रह किया है।

लाक ने एक प्रकार से अपने समय के अनुरूप सिद्धान्तों को आधारित किया था। इसलिये जब हम उन्हें आधुनिक काल की समस्याओं से सम्बद्ध कर के देखते हैं तो यह स्पष्ट रूप से पता चलता है प्रस्तुत भेदों के आधार पर किसी भी राजनैतिक समस्या का उत्तर सरलता से नहीं दिया जा सकता। प्रत्येक युग की अपनी नयी वस्तु स्थितियाँ होती हैं, इसलिए कोई भी ऐसा विचार दर्शन जो स्थिर रूप का हो वह पनपने के पूर्व ही तिरस्कृत कर दिया जाता है। हम मन-गढ़ंत (Utopic) कल्पनाएँ नहीं गढ़ते, इसलिए जब कभी भी ऐसे सिद्धान्त के अन्वेषण करने की चेष्टा की जाती है जिसमें राजनैतिक अधिकारों (Political Rights) के आधार पर कोई शाश्वत नियम निर्धारित हो सके तो वह सर्वथा निष्क्रिय सिद्ध होता है। किन्तु यह सब होते हुए भी आज के युग में वह हानिकारक नहीं सिद्ध होता। आज हमारे युग के लिए भी कुछ ऐसे कार्य की आवश्यकता है जैसा कि लाक ने अपने समय में किया था। अधिक व्यापक अर्थों में प्रत्येक कदम पर हमें आज भी लाक के विचारों से लाभ पहुँचता है। हमें इस बात की आवश्यकता भी अनुभव होती है कि हम लाक के बताये संकेतों के अनुरूप अपने प्रयासों को आगे की ओर अग्रसर करने में गतिशील हों। अँग्रेजी इतिहास में जिस समय और जिन परिस्थितियों में वह अपने सिद्धान्तों को लेकर उठा था उसकी आज की वर्तमान स्थिति से कोई भी तुलना नहीं की जा सकती। आज भी उस काल की भाँति सारा बल स्वतंत्रता से सम्बन्धित समस्याओं पर दिया जाता है। उस काल की भाँति आज भी मुख्य समस्या यह है कि इन विचारों को संघात्मक रूप (Institutional Term) में कैसे प्रतिपादित किया जाय। यह लाक की महानता थी कि वह अप्रतिहत धैर्य एवम् अन्वेषणात्मक दृष्टि के साथ अपने विचारों को कार्य रूप में प्रस्तुत करने में सफल हो सका।

अध्याय ३

अठारहवीं शताब्दी में राज्य और चर्च

१६८८ की क्रान्ति (Revolution) ने मूल प्रेरणा शक्ति परम्परागत रोम के आधिपत्य के प्रति जाग्रत अनिच्छा की भावना से, एवम् इंगलैंड के चर्च को जेम्स की आक्रमणकारी (aggressive) प्रवृत्तियों से बचाने की इच्छा से, ग्रहण की थी। यद्यपि यह संघर्ष प्राचीन था फिर भी इंगलैंड को इसके अभिशापों से अभी एक पीढ़ी पूर्व ही मुक्ति मिल पाई है। इस मुक्ति के अभाव में शासन कार्य को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। यद्यपि आज यह कहा जाता है कि इन समस्याओं का समीकरण हो चुका है किन्तु निश्चयात्मक रूप में यह नहीं कहा जा सकता कि ये समस्याएँ अन्तिम रूप से स्थिर हो चुकी हैं। यही कारण है कि राज्य और चर्च से सम्बन्धित कोई भी व्याख्या आज भी अन्तिम रूप में स्थिर नहीं की जा सकती। धर्म विरोधी प्रवृत्तियों (Non-Conformists) अधिक होने के नाते एवम् शासन सत्ता के आन्तरिक गठन में व्याप्त विकृतियों का बाहुल्य होने के नाते इन सब की मूल व्याख्या पुन: करना नितान्त आवश्यक हो गया था। मात्र इतने ही से समस्या का अन्त नहीं हो सकता था। पारस्परिक फूट (Scheism) और अविश्वास (Disloyalty) की समस्या और भी जटिल हो गई थी। चर्च के अनुयाइयों में भी एक बहुत महत्व-पूर्ण अंश ऐसों का था जो विलियम (William) द्वारा स्थापित सम्राटत्व की परिभाषा को स्वीकार करने में असमर्थ था। अधिकांश रूप में जो लोग विलियम की बात को स्वीकार करते थे उनमें वह उत्साह नहीं था कि अपनी बात को स्पष्ट रूप से लागू करवा सकें।

साथ ही यह भी सत्य है कि चर्च ने धर्म विरोधियों (Non-Conformist) को सरलता से अपने विचारों को प्रसारित करना भी कठिन कर दिया था। ऐसी स्थिति में किसी न किसी प्रकार की सहिष्णुता (Toleration) नितान्त रूप से आवश्यक हो गई थी। इस सहिष्णुता की आवश्यकता इसलिये भी थी क्योंकि काल्वीनिस्ट (Calvinist) मत का अनुयायी इंगलैण्ड की गद्दी पर आरूढ़ था, इसलिये प्रेस्बेटीरियन (Presbyterians) को प्रताड़ित करना असम्भव-सा हो गया था। यह सब होते हुए भी सहिष्णुता (Toleration) की सीमाएँ और मर्यादाएँ स्थापित करना कोई सरल कार्य नहीं था। वस्तुतः उस समय जब कि नान जूरर्स (Non-Jurors) धर्म विरोधी (Non-Conformists) और एक ईश्वरवादी (Deists) सभी चर्च पर हर ओर से आक्रमण कर रहे थे, चर्च के अनुयायों का सदस्य रूप में संगठित होकर उसे एक किले की भाँति सुरक्षित रखने का प्रयास करना स्वाभाविक था। चर्च को राजनैतिक क्षेत्र (Political Privilege) से अपना अधिकार हटाना आत्म-हत्या (Self-destruction) के समान लगता था। यदि चर्च और राज्य को आपस में कुछ भी सम्बन्ध बनाये रखना आवश्यक था तो उस समझौते की परिणति इसमें होनी अनिवार्य थी कि राज्य चर्च (Church) को किसी न किसी रूप में लाभ पहुँचाने का प्रयास करे। तब क्या इसका यह भी अर्थ नहीं होता कि वे जो किसी भी धर्म की प्रभुता को नहीं मानते वह धीरे-धीरे कर राज्य की व्यापक सुविधाओं से भी वंचित कर दिये जायँ ? कम से कम जहाँ तक लाक का सम्बन्ध है उसने इन समस्त संभावनाओं को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था और उसने यह तर्क प्रस्तुत किया था कि चूँकि चर्च एक स्वेच्छा (voluntary) पूर्ण संस्था है इसलिए उसका कोई भी आदान-प्रदान राज्य की सापेक्षता में सम्भव नहीं है। किन्तु लाक का यह मत इतना कठिन था कि न तो वह उसके युग के लोगों को पच सकता था और न कोई भी राजनैतिक व्यक्ति (Statesman) प्रस्तुत संदर्भ में यह स्वीकार करने की क्षमता ही रखता था कि शासन-सत्ता द्वारा इन धार्मिक आधारों को पूर्णतया अस्वीकार कर देना ही उचित होगा। स्वयम विलियम भी चर्च को उसके दमनकर्ताओं से मुक्त करने का समर्थक था। उस

युग में स्वतंत्रता का अर्थ संरक्षण के रूप में ही समझा जाता था और संरक्षण का तात्पर्य व्यवस्था को सुचारु रूप में स्थापित करने के अर्थ में लिया जाता था। यही कारण था कि इंगलैंड के चर्च के अधिकांश सदस्य चर्च के राज्य-संरक्षण का अर्थ यह मानते थे कि राज्य द्वारा चर्च की प्रभुता स्थापित की जाय और उनको अन्य प्रकार के धार्मिक संगठनों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाय। प्रभुता (Superiority) स्वयम् में ही एक एकांगी अर्थ का परिचायक है। जब वह किसी प्रकार के व्याप्त राजनैतिक स्वार्थों से सम्बद्ध हो जाती है तब उसका यह पक्ष और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। यही कारण था कि टोलरेशन ऐक्ट (Toleration Act) के वास्तविक अर्थ और उसके वास्तविक मन्तव्य को समझने और उदार रूप में आचरित करने में कई वर्षों की लम्बी अवधि का समय लग गया।

चर्च-प्रधान शासन सत्ता की समस्याएँ और भी अधिक जटिलता के साथ प्रस्तुत हो गई थीं। जिस कटुता के साथ उस युग में इन विवादों पर बहस किया जाता था उसको देखते हुए हमें यह अनुभव होता है कि अपेक्षाकृत आज हम अधिक निश्चित स्थिति में हैं। उस समय के बहुत से विवाद निश्चय ही इसलिए अधिक तीव्र थे क्योंकि उस काल के हाई चर्चमेन (High Churchmen) विलियम (William) को बिल्कुल ही नहीं चाहते थे; किन्तु चूँकि उन्हें अन्यमनस्क रूप से उसे धार्मिक क्षेत्र में महान मानना पड़ता था इसलिए यह बात भी उन्हें खलती थी। इस कटुता के उभर कर प्रस्तुत हो सकने का एक कारण यह भी था कि बावजूद इसके कि उस युग में टिलाट्सन (Tillotson) और वेक (Wake) जैसे महान पादरी विद्यमान थे, फिर भी इन जैसे महान व्यक्तियों को भी धार्मिक मूल्यों (Religious Values) की अपेक्षा राजनैतिक मन्तव्यों के लिए ही अधिक प्रयोग किया जाता था। बर्नेट (Burnet) और होडले (Hoadlay) जैसे योग्य और विद्वान व्यक्ति भी अपने अनुयाइयों को अधिक नम्र और उदार आत्मा वाले व्यक्ति नहीं बना सकते थे। जिस कटुता और तीव्रता के साथ उस काल में चर्च की निन्दा की जाती थी, उसने भी चर्च के अनुयाइयों को यह

बोध करा दिया था कि वे अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवान और महत्वपूर्ण सत्ता हैं। चर्च के हस्तक्षेप सम्बन्धी प्रश्न जो राजभक्ति की शपथ (Oath of Allegiance) और हलफनामें (Abjuration) के रूप में चले आ रहे हैं उन्होंने ऐसी समस्याएँ प्रस्तुत कर दी हैं कि उनका निराकरण आज तक नहीं हो पाया है। इस प्रथा से यह स्थापित होता है कि चर्च आज भी राज्य के अधीन है। यही कारण है कि उस युग में ही हिक्स (Hickes) और लेसली (Leslie) जैसे व्यक्तियों ने इस प्रथा में निहित युग की विरोधी विचारधाराओं की ओर संकेत करके उनका खंडन किया था। उस स्थिति में जब कि स्पष्टतया चर्च राज्याश्रित-सा प्रतीत हो रहा था तो गहरी खिन्नता और रोष के भावों से उद्भूत विचारों का विकसित होना स्वाभाविक सत्य था। चर्च की पावनता उस समय तक स्थापित नहीं की जा सकती जब तक कि उसकी विशुद्ध सामाजिकता की अक्षुण्ण सत्ता को स्वीकार नहीं किया जाता। चर्च की सत्ता पूर्ण रूप से क्राइस्ट (Christ) के विचारों का प्रतिनिधित्व स्वतः कर सकती है। इसलिए उसके आश्रित सत्य को न तो कोई सम्राट नियंत्रित कर सकता है और न वह इसकी दया पर जीवित रह सकता है। यही प्रश्न है जिसे यदि एक समय वेक (Wake) ने उठाया था और उसका निराकरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया था तो दूसरे समय में होडले (Hoadly) ने, अस्तु चाहे जिस रूप में हो प्रस्तुत समस्या का मूलभूत तत्व प्रभुत्व (Sovereignty) के प्रश्न से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध है। इसी आशय को लेकर ही क्रान्ति (Revolution) की समस्या का सम्बन्ध आक्सफोर्ड आन्दोलन (Oxford Movement) से भी स्थापित हो जाता है। किन्तु न्यूमैन (Newman) और उसके अनुयाइयों ने जिस रूप में इस समस्या को प्रस्तुत किया है वह कई खंडों और अंकों से बढ़कर वृहदाकार हो गया। यही कारण है यदि उस समय के समकालीन विचारों और उनके विभिन्न पक्षों का अध्ययन करना है तो वेक (Wake), होडले (Hoadly) और ला (Law) के विचारों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

यहाँ हमारे विषय-क्षेत्र का लक्ष्य विलियम (William) के उन परा-

नर्शदाताओं के विचारों से नहीं है जिन्होंने पादरियों से भी राजभक्ति की शपथ लेने की बात उठाई थी। इस घटना ने जो मूलभूत परिस्थिति पैदा कर दी थी वह उस सिद्धांत की उपयुक्तवादिता से सम्बद्ध है जिसने कि एक शताब्दी से अधिक काल तक इंगलैंड की जनता को सारे बोध कराके राजसिंहासन और बलिवेदी के बीच उत्सगित रखने का प्रयास किया था। राजभक्ति की शपथ की माँग ने समस्त जनता में ऐसी फूट पैदा कर दी थी जो उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक संघर्षशील रही। उन लोगों में से जिन्होंने कि शपथ नहीं लिया था कुछ बड़े महत्वपूर्ण एवं महान व्यक्तित्व वाले पादरी थे। स्टाफर्ड जो कि आर्क बिशप आफ कैन्टरबेरी था और जो उन सात महान व्यक्तियों में से माना जाता था कि जिन्होंने जेम्स की प्रत्येक आक्रमणकारी नीति का सामना किया था, उसने भी यह शपथ नहीं ली थी। महान संत केन (Ken), बिशप आफ बाथ (Bishop of Bath) और वेल्स (Wells) भी उन्हीं व्यक्तियों में से थे जिन्होंने शपथ लेने से इन्कार कर दिया था। विद्वानों में से जार्ज हिक्स (Gorge Hicks), हेनरी डाडवेल (Henry Dadwell) और चार्ल्स लेसली (Charles Leslie) जो अद्वितीय प्रतिभा वाले माने जाते थे उन्होंने भी यह शपथ नहीं ग्रहण किया था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय इंगलैण्ड के चर्च की उच्चतम बौद्धिक प्रतिभाएँ इसके विरोध में शामिल थीं। इतिहास के इस अंश में विशेष आकर्षण की अपेक्षा दुखद और करुणाजनक स्थितियाँ अधिक हैं। उन लोगों में से जिन्होंने शपथ ग्रहण करने से इन्कार कर दिया था वे सब कुछ छिन जाने के बाद मात्र दरिद्रता का जीवन बिताने लगे थे। कुछ थोड़े से लोग ही ऐसे थे जिन्होंने पदच्युत होकर अपने वचन वापस ले लिये थे। इनके अतिरिक्त जिनको कि उन्नीसवीं सदी में जान केबेल (John Keble) ने चित्रित किया है सैन्क्राफ्ट (Sancroft), केन (Ken), एम्ब्रोस बानविक (Ambrose Bonwick) ऐसे महान थे जो एंग्लीकन चर्च (Anglican Church) की परम्परा के समक्ष अपने सरल और सादे जीवन का प्रमाण प्रस्तुत करके उसके वैभव को समृद्धि प्रदान करते हैं। यद्यपि ऐसे व्यक्तियों को नान जूरर्स (Non-Jurors) कहा जाता था फिर भी इनमें कम

कटुता नहीं थी। हिल्किया बेडफोर्ड (Hilkiah Bedford) और राल्फ टेलर (Ralph Taylor) की प्रताड़ना के बाद तो इनकी दशा और भी गिर गई। इनमें इतनी आपसी फूट (Schism) बढ़ गई कि इनका इतिहास ही दयनीय बन गया। किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि इनके पतन का इतिहास कुछ कम रोचक है। इनका ईस्टर्न चर्च (Eastern Church) से गठबन्धन करने का प्रयास तो धार्मिक इतिहास के अध्येता को अद्वितीय रस और रोचकता प्रदान करता है।

यह सब होते हुए भी नान जूरिङ्ग फूटवाद (Non Juring Schism) को राजनैतिक ही कहा जा सकता है, धार्मिक नहीं। इसके कारण भी इतिहास के अतीत में गर्भित हैं। इसकी तह में ईश्वरप्रदत्त सम्राटत्व (Divine Right of Kings) के सिद्धान्त की प्रतिक्रिया का बहुत बड़ा हाथ रहा है। यह सिद्धान्त जो किसी काल में रोम (Rome) द्वारा किये जाने वाले हस्तक्षेपों के विरुद्ध प्रारम्भिक निरपेक्ष राज्य सत्ताओं का एक मात्र अस्त्र था, निश्चय ही उस चर्च के मतानुकूल रहा होगा जिसका कि जेम्स प्रथम (James I) सदस्य रहा होगा। इन्हीं के आधार पर जेम्स प्रथम ने साहसपूर्ण घोषणाएँ करने में शक्ति ग्रहण की होगी। इस सिद्धान्त के मूल विरोधियों में से कैथोलिक (Catholics) और डिसेन्टर्स (Dissenters) थे। इन्हीं लोगों के नाते ही जब एन्ड्रयूज (Andrews) जैसे व्यक्तियों ने बेलार्मे (Bellarme) का प्रतिवाद किया होगा तो उसके साथ चर्च के पक्ष का भी समर्थन किया होगा। जेम्स प्रथम के शासन का घोर विरोध करने के साथ-साथ ही प्रतिरोध की भावना ने कर्तव्य का रूप धारण करके जेस्यूट्स (Jesuits) और नान कान्फोर्मिस्टो (Non-Conformists) का निर्माण किया होगा। इन्हीं स्थितियों का यह परिणाम राजनैतिक स्तर के विपरीत विरोधी भावना के साथ प्रस्तुत हुआ होगा। इन्हीं कारणों से चर्च आफ इङ्गलैण्ड का एक नया सिद्धांत भिन्न स्तर पर विकसित भी हो सका होगा क्योंकि उस समय चर्च को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये किसी न किसी रूप में राज-सत्ता पर आश्रित होना अनिवार्य हो गया था। प्रस्तुत संदर्भ में यदि चर्च राजस-त्ता (Monarchy) का विरोध करने की

क्षमता रखता भी था (जैसा कि नाक्स (Knox) और बेलार्मे (Bellarme) के मतानुसार किसी भी विरोधी चर्च (Dissenting Church) में यह विधि करने की क्षमता होना बहुत बड़ा यंत्र माना है) तो भी राज सत्ता के एक बार नष्ट हो जाने के बाद विरोध की कोई भी संभावना शेष नहीं रह सकी। यही मनोवृत्ति उस बात को भी स्पष्ट करती है जिससे प्रभावित होकर धर्म-मर्मज्ञ बैरो (Barrow) और जैक्सन (Jackson) जैसे लोगों ने ऐसे विचार लिखे थे जो अपनी मूल प्रवृति में षडयंत्रकारी एवम् विस्फोटजनक प्रवृत्तियों का परिचय देते हैं। इसीलिये जब राज्य (State) के प्रभुत्व की बात करते हैं तो वस्तुत: उनका उद्देश्य चर्च की प्रभुत्व शक्ति को व्यक्त करना है। और तब ऐसी स्थिति उनके विचारों से ऐसी शक्तियों की विजय घोषणा है जो धर्म विरोधों (Non-Conformism) के रूप में प्रत्येक वर्ग द्वारा अभी तक घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे। वस्तुतः इङ्गलैण्ड के चर्च ने संघर्षहीनता (Non-resistance) को केवल आत्मरक्षा के रूप में ही प्रचारित किया था।

प्रस्तुत भावना ने कितनी गहरी जड़ पकड़ ली थी यह हमें मेनवेरिंग (Manwaring) और सैन्डर्सन (Sanderson) की कृतियों द्वारा स्पष्ट पता लग जाता है। किन्तु फिर भी इन विचारों की व्यापक स्वीकृति को क्रान्ति (Revolution) ने जिस सीमा तक प्रमाणित किया है उतना किसी अन्य आन्दोलन ने नहीं किया है। इसके पूर्व चार सौ व्यक्तियों ने मात्र इसलिये अपना धर्म छोड़ दिया था क्योंकि जेम्स जैसा सम्राट ईश्वरप्रदत्त शक्ति (Divine Right) के साथ अपने को शासनकर्ता कहता था और वे अपनी आवाज के बावजूद उसका विरोध कर सकने में अपने को असमर्थ पा रहे थे। १६८९ में प्रकाशित एक पुस्तिका—जिसमें उस काल से सम्बन्धित काफी सामग्री सम्पादित की गई है—को देखने से यह स्पष्ट पता चलता है कि इस सिद्धान्त ने उस समय चर्च को कितना अधिक प्रभावित किया था। यदि विलियम (William) की शासन सत्ता ने उन पादरियों को राज-भक्ति की शपथ लेने के लिए बाध्य न किया होता तो यह संभव था कि जनता में उसको लेकर इतना अधिक वितण्डावाद और फूट न पैदा होता; क्योंकि प्रारम्भिक नानजूरर्स (Non-Jurers)

हिक्स (Hicks) और टर्नर (Turner) को छोड़कर प्रायः अन्य सभों ने फूटवाद (Schism) से मुक्ति मिलने की आशा से कोई भी अन्य स्थिति स्वीकार कर लेते। शपथ ग्रहण की प्रथा को लागू करते ही तीन प्रमुख समस्याएँ उठ खड़ी हुईं। अपहरण द्वारा निश्चय ही राज्य ने चर्च पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। इसलिए इस घटना के बाद जो प्रश्न उपस्थित हुआ वह यह था कि यदि एक ऐसे सम्मेलन (Convention) द्वारा निर्धारित कानून जिसकी नैतिकता के बारे में सन्देह किया जा सकता हो चर्च का सब कुछ हरण करके उसे उसकी स्थिति से विस्थापित कर सकता है तो ऐसी स्थिति में क्या चर्च को एक धार्मिक संस्था कहा जायगा या वह मात्र एक निरपेक्ष सत्ता (Secular) के आश्रय पर जीने वाला संस्था कहा जायगा? ऐसी स्थिति में, आत्मशक्ति की क्या व्याख्या की जायगी? कोई भी चर्च यह आन्तरिक आस्था के रूप में मात्र शक्ति स्थापित करने के लिए अपने विश्वास का त्याग नहीं कर सकता। कुछ बाद के चिन्तकों ने इस प्रश्न पर प्रकाश डालते हुए निपक्ष रूप से यह कहा है कि यदि ऐसी स्थिति में विरोध करने की प्रवृत्ति को स्वीकार कर लिया जायगा तो फिर वह व्यापक रूप ग्रहण कर लेगा। लेसली (Leslie) ने इस मत को स्वीकार कर लिया था और वह राज आज्ञा को मानने के पक्ष में हो गया था। ऐसा करने से उसने यह समझा था कि अब एक समाज के विभिन्न सूत्र एक दूसरे से मिल जायँगे। लेसली जैसे निपुण वक्ता के लिए यह सिद्ध कर देना उसकी प्रवृत्ति के अनुरूप ही था किन्तु उसके इस कथन से यह भी स्वतः सिद्ध हो जाता है कि ईश्वरप्रदत्त अधिकार की धारणा भी शीघ्र ही मर जाने वाली थी।

उपर्युक्त सिद्धान्तों की एक बार पुनः विवेचना करना आवश्यक है। विलियम्स (Williams) ने जो बाद में बिशप आफ चीचेस्टर (Chichester) के पद पर नियुक्त हो गया था इस विषय में विचार प्रकट करते हुए यह कहा था कि शपथ के प्रश्न को लेकर चर्च और राज्य (Church and State) का विभाजन करना अनुचित होगा। उसने इस प्रसंग में लिखा था कि—"इस विषय में राजसत्ता जो कुछ भी करना चाहती है वह मात्र यह है कि वह

उन समस्त व्यक्तियों से भी यह प्रमाण ले लेना चाहती है जो असंतुष्ट होकर विरोधी विचार और कार्य करना चाहते हैं।" नान जूरर्स, इस दिशा में समस्त धार्मिक विषयों को एक निरपेक्ष रूप में प्रस्तुत करना चाहते थे। विलियम (Williams) की इस स्थापना का उत्तर स्वयं सैम्यूएल ग्रेस्कम ने दिया था जिसका कि विलियम्स के विरोधी विचारवालों ने बड़े सहानुभूत्यात्मक स्तर पर स्वागत किया था। उसने कहा था कि--"इन शपथों का सार चर्च की प्रार्थनाओं में तो वैसे ही सम्मिलित रहता है! जिस बात को लोग साधारण रूप से अपनी प्रार्थनाओ में बराबर कहते रहते हैं उसको न जाने क्यों शासन सत्ता स्पष्ट अभिव्यक्ति के रूप में कुबूल कराना चाहती है। इसका अनिवार्य अर्थ यही है कि चर्च और राज्य में विभाजन पूर्ण रूप से स्थापित करना ही श्रेयस्कर है।" वास्तविक वस्तुस्थिति का मूल तत्व इसी में निहित है। यदि चर्च को इस प्रकार शासन के अधीन रखने का प्रयास किया जायगा तो इसका मूल परिणाम यह होगा कि ऐसे लोग जो शासन सत्ता की धारणाओं और विचारों से सहमत होगे उनके लिए चर्च का कोई महत्व नहीं रह जायगा क्योंकि चर्च को समृद्धिशाली बनाने में वही लोग योगदान देते हैं और वे ही उसके सदस्य होते हैं जो अपने विश्वास के आधार पर चर्च के सदस्य बने रहने की चेष्टा करते हैं। फूटवादी विचारों को प्रश्रय देने वाले वही लोग थे जो विलियम्स (Williams) के विचारों से प्रभावित होकर उसका अनुकरण करते थे। नानजूरर्स (Non-Jurors) में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। वे उस समय भी चर्च की रक्षा में और उसकी दृढ़ता को राज शक्तियों के बल पर अपहरण करने वालों के हाथ से सुरक्षित रखने में सतत क्रियाशील रहते थे।

दृढ़ता (Integrity) की समस्या बहुत महत्वपूर्ण है। मैकाले (Macaulay) के वैभव और चमत्कार ने शपथ लेने वालों की स्थिति को काफी सरल और सुगम बना दिया था और मैकाले ने अपने इतिहास के पन्नों में नान जूरर्स को मात्र मूर्ख एवम् पतनशील लक्ष्य के संरक्षक के रूप में चित्रित किया है। इस विडम्बना और स्वाँग के विषय में यहाँ जान लेना आवश्यक

है। टिलटसन (Tilotson) जो सैंक्राफ्ट (Sancroft) और बर्नेट के निकाल दिये जाने के बाद उत्तराधिकारी के रूप में आये और उन्होंने शान्तिपूर्ण विरोध (Passive Resistance) को स्वीकार करके लार्ड विलियम रसेल (William Russel) पर यह सिद्ध करना चाहा कि मात्र यही एक ऐसा मार्ग है जो वास्तविक रूप में आत्मरक्षा का साधन बन सकता है। मानमथ (Monmouth) की प्रताड़ना के बाद टेनसियन (Tensian) ने भी उसी पथ का अनुसरण किया था। स्टिलिंगफ्लीट (Stillingfleet), पैट्रिक (Patrick), ह्वाइट कैनेट (White Kannet) आदि ने भी इसी के पक्ष में अपने मत लिखे थे। विलियम शेरलाक (William Sherlock) ने अपने दो पैम्फ्लेटों में जिस प्रकार चर्च का पक्ष और विरोध की नीति का समर्थन करते हुये विरोधियों पर आक्रमण किया था वह उसकी प्रतिभा का अद्वितीय नमूना था। स्पष्ट रूप से यदि दृढ़ नीति के अनुयायी के रूप में देखा जाय तो निश्चय ही नानजूरर्स को इस बात का संतोष होगा कि उन्होंने सत्य का पक्ष लेकर उसको सुरक्षित रखने की बलपूर्वक चेष्टा की थी। यदि यह कहा जाय कि जेम्स ने प्रस्तुत स्थिति पैदा करके एक सर्वथा नई परिस्थिति को पैदा करने की चेष्टा की थी तो इस मत का एक मात्र उत्तर यह है कि ईश्वरप्रदत्त (Divine Right) सिद्धान्त और शान्तिपूर्ण विरोध दोनों ही किसी भी प्रकार से सर्वथा नवीन पद्धति के रूप में नहीं स्वीकार किये जा सकते।

अस्तु इस धार्मिक संघर्ष के मूल तत्व का परिचय हमें लेसली (Leslie) द्वारा "केस आफ दि रीगल एण्ड दि पान्टिफिकेट (Case of the Regal and the Pontificate) नामक लेख में मिलता है। इसमें उसने इन कान्वोकेशन संघर्षों (Convocation Disputes) का उल्लेख करते हुए समस्त कारणों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। उसने अपने मत में स्पष्ट रूप से सिद्ध किया है कि राज्य (State) का कोई अधिकार पादरियों और बिशपों पर नहीं है क्योंकि पादरी और बिशप अपनी आत्मिक प्रेरणा क्राइस्ट से ग्रहण करते हैं। चर्च समस्त राजनैतिक संस्थाओं से परे और

उनके बन्धनों से मुक्त है। इस मुक्त प्रकृति के नाते ही उसके पास अपने अनुकूल जीवन व्यतीत करने की पूर्ण सुविधा एवम् शक्ति स्वतन्त्र रूप से होना आवश्यक है। लेसली ने इसीलिए वितण्डावाद (Controversy) की घोर निन्दा की है। इस प्रकार के विचारों को वह केवल क्राइस्ट (Christ) के अधिकारों पर आक्षेप करने वाला ही नहीं मानता वरन् ऐसे विचारों को वह संभ्रान्त वर्ग (Aristocracy) में प्रचार करने का और जन साधारण में विरोध और असंतोष फैलाने वाला भी मानता है। इंगलैण्ड का चर्च प्रस्तुत परिस्थितियों में मात्र पार्लियामेंट (Parliament) द्वारा प्रेषित संस्था रह जाता है और तब ऐसी स्थिति में उसे मात्र वोटों द्वारा निर्मित संस्था के रूप में स्वीकार करके छोड़ देना उसकी दैविक शक्ति की अवहेलना करना होगा।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे लोग जो उपर्युक्त आधार पर सोचने में असमर्थ थे उनके लिये कोई दूसरी दिशा नहीं थी। उनके साथ यह अवश्य था कि वे आत्मा (Spirit) के विषय को अपने जीवन के अवस्थान का नितान्त महत्वपूर्ण अंग मानते थे। अपनी मृत्यु शैया पर उडकेस्टर के बिशप ने यह कहा था कि "मैं एक आर्य्य की मौत की शपथ ग्रहण करने से कहीं अधिक श्रेयस्कर मानता हूँ।" इसमें सन्देह नहीं कि उनके इस वाक्य में उस समय की वास्तविक मनःस्थिति बोल रही थी। बहुत से लोग ऐसे थे जो इस पर भी यह नहीं समझ पाते थे कि जेम्स ने कोई अनुचित कार्य किया है। उन्होंने राजभक्ति की शपथ उसे दिया क्योंकि ऐसा करने के सिवा उन्हें कोई दूसरा रास्ता नहीं दीख पड़ा। बिशप लेक (Bishop Lake) की मृत्यु का वर्णन लिखते हुए उसका लेखक लिखता है कि "सम्राट और सम्राज्ञी के रूप में केवल दो व्यक्ति हैं जो उनके ऊपर, उनके हित और इच्छाओं पर शासन करते हैं। ऐसी स्थिति में उनके प्रति अपनी अटूट राजभक्ति प्रदर्शन में उनकी आत्मा सामने आकर उनके इस राजभक्ति की अभिव्यक्ति को रोक सकती है।" प्रस्तुत संदर्भ में वे लोग जो इन विरोधियों को गलत समझते थे उनको भी यह मानना पड़ेगा कि उन्होंने अपने विश्वास के अनुसार जो कुछ भी किया वह ठीक समझ कर किया था। बात जो भी हो आज यह नितान्त सत्य है कि राज्य का निर्माण मानव आत्मा

की निष्ठा पर ही हुआ है। इन विरोधों के महत्व का तो उस समय पता चलता है जब दूसरी पीढ़ी में चर्च में अत्यधिक सांसारिकता बढ़ गई थी। वे राजनैतिक स्तर से भ्रष्ट हो चुके थे और तब उनको उस गर्त से उबारने में केवल आन्तरिक शक्ति ही क्रान्तिकारी रूप में उन्हें विशृंखलल होने से बचाने में समर्थ हुई थी।

इस समस्त घटना के राजनैतिक पक्ष को जितने अच्छे ढङ्ग से चार्ल्स लेगले ने प्रस्तुत किया है वैसा कोई और दूसरा नहीं कर सका है। उनके तर्क की तह में जो विचार प्रकट किये गये हैं वह मूलतः अराजकता के हैं और वह अपनी शैली में भी बहुत कुछ मध्यकालीन स्वर में ठीक उसी विरुद्ध प्रकार के तर्कों से पूर्ण है जिस प्रकार के तर्क दे मास्तर ने पोपवाद (Papacy) के समर्थन में प्रस्तुत करते हुए संसार की व्यवस्था का एक गोपनीय अंग सिद्ध किया था। उसने ईश्वरप्रदत्त अधिकार (Divine Right) और निष्क्रय आज्ञा पालन के समर्थन को पूर्ण रूप से रक्षा की है। उसने कहा था—"वह भी कैसा आदमी हो सकता है जो अपनी प्राकृतिक सत्ता को दूसरों की आत्मा को झुकाने के लिये प्रयोग में लाता है। ऐसी सत्ता जीवन शक्ति, स्वाधीनता और समृद्धि से पूर्ति सदस्य ही होगी, इसीलिये उसकी रक्षा के लिये दैविक अभिजात्य के समर्थन नितान्त आवश्यक हैं।" इन आधारभूत तत्वों को मानते हुए उनका उल्लेख करते हुए उसने दूसरे स्थल पर लिखा है—"यदि प्रत्येक स्थिति का निर्णय एक मात्र जनता पर छोड़ दिया जायगा तो बड़ा असंतोष और अव्यवस्था फैलने लगेगी और विवादों का अन्त भी नहीं हो पायेगा और ऐसा भ्रमपूर्ण वातावरण विकसित हो जायगा कि फिर उसका उपचार करना कठिन हो जायगा।" इसी प्रकार उनकी कोई भी सहानुभूति ह्विगदल वालों की एक सत्तात्मक (Monarchy) सत्ता के विरुद्ध की गई आलोचनाओं के प्रति भी नहीं है। उसने इसकी व्याख्या करते हुए एक स्थान पर लिखा है—"सम्राटों के विरुद्ध ठीक जितने तर्क लगाये जाते हैं वे सब के सब ऐसे हैं जो किसी भी सत्ता के विरुद्ध आरोपित किये जा सकते हैं क्योंकि मनुष्य चाहे जिस दल में हो उससे गलतियाँ तो होती ही हैं। ऐसी गलतियों की संख्या अधिक ही हो सकती है कम नहीं।" इसीलिए उसने अपनी पुस्तक बेस्ट आफ आल मेन (Best of All Men) में

इस मत को प्रतिपादन किया है कि अनुशासन को कोई भी वस्तु ढीली नहीं कर सकती क्योंकि—"आज्ञा-पालन प्रजा के सामूहिक (Commonwealth) शक्ति का परिचायक है। और उसे आत्मा (Conscience) की रक्षा के लिये वहाँ भी पालन करता है जहाँ वह राजाओं के प्रति विद्रोह करके स्वतः अपनी ही धारणाओं में बँध जाता है।"

इस विचारपूर्ण तर्क का महत्व जितना इतिहास में स्पष्टतया दिखलाई पड़ता है उससे बहुत अधिक है इसके तह में। मूलतः उस नीच परम्परा पर आक्रमण किया गया है जिसे लाक ने स्थापित किया था। इस तर्क के अध्ययन से जो तथ्य प्राप्त होता है वह यह है कि इसके प्रतिपादक को सिवा ईश्वर-प्रदत्त राज सत्ता के कोई अन्य मार्ग दृष्टगत ही नहीं होता। इस दैविक राज सत्ता से कम कोई भी वस्तु बुरी मनोवृत्तियों को दबाने में उन्हें समर्थ नहीं दिखलाई पड़तीं। यदि उनके विचार एक बार भी विरोध (Resistance) की ओर उन्मुख होते तो निश्चय ही उन्हें यह स्पष्ट हो जाता कि इस विरोध भाव से सामाजिक सङ्गठन छिन्न-भिन्न हो जायगा। ये सम्पूर्ण आत्मसमर्पण को ही अराजकता से बचने का उपाय मानते हैं। इन्हीं आधार पर एक शताब्दी बाद दे मैतरे (De Maitre) ने भी यह घोषित किया था कि जब तक सम्पूर्ण संसार एवम् संसार का समस्त ईसाई समाज रोम के पोप का आधिपत्य नहीं स्वीकार करेगा तब तक शान्ति नहीं स्थापित होगी। इसी प्रकार पचास वर्ष पूर्व हाब्स ने भी सम्पूर्ण सत्ता के आधिपत्य का तर्क प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध किया था कि यदि ऐसा नहीं होगा तो मनुष्य की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ और इच्छाएँ सामाजिक स्थिति की सीमाओं का सदैव अतिक्रमण करती रहेंगी।

इसका उत्तर भी स्पष्ट है। नान जूरर्स (Non-Jurors) का पक्ष जितना राजनैतिक दृष्टि से दृढ़ है उतना किसी और दृष्टि से नहीं है। मनुष्य को किसी भी संकीर्ण तर्क के अंतर्गत बाँध कर नहीं रखा जा सकता। ऐसे लोग बिशप केन (Ken) की भाँति किसी भी प्रताड़ना को क्रास (Cross) के सिद्धान्त पर रख उससे आनन्दित नहीं हो पायेंगे। इसके विपरीत लगातार की दमन नीति उनके

अन्दर अपराध की भावना जाग्रत करती रहेगी और उनकी आत्मा को बार-बार क्रियाशील होने के लिये बाध्य करती रहेगी। ऐसी ही स्थिति में लाक के अनुमति सिद्धान्त (Theory of Consent) की मूल धाराएँ उत्पन्न हुई थीं, क्योंकि जैसा कि ह्यूम ने भी स्वीकार किया है कि जब तक शासन सत्ता के पक्ष में व्यापक जनमत नहो होगा तब तक उसका चलना भी सम्भव नहीं हो पायेगा। जेम्स का पतन कनज्यूरर्स (Conjurors) के अनुसार इसलिये नहीं हुआ था कि उसके दैविक व्यक्तित्व (Divine Personality) के विरुद्ध व्यापक लोकमत की भावना जाग्रत हो गई थी, वरन् इसके अतिरिक्त मूल बात यह थी कि जेम्स यह नहीं जानता था कि किसी भी बुरी शासन व्यवस्था के क्या परिणाम हैं और वह किस सीमा तक प्रतिरोध को जन्म दे सकती है। ऐसी ही स्थिति में नान ज्यूरर्स (Non-Jurors) ने यह विरोधी तर्क प्रस्तुत किया है। स्टीलिंग फ्लीट (Stellingfleet) की यह बात सत्य है कि यदि विलियम (William) का आगमन न हुआ होता तो नान ज्यूरर्स की रक्षा के लिये इंगलैंड में एक भी चर्च न बच पाता, और उनको अन्य प्रकार के हीन समझौते करने पड़ते। शेरलाक (Sherlock) के मतानुसार शासन विरोध-हीनता (Non-resistance) का सिद्धान्त व्यापक रूप से, जैसा कि सत्ता पर लागू होता है। ओवरआल (Overall) ने अपनी पुस्तक कान्वोकेशन बुक (Convocation Book) में यह समझाया है कि शपथ ग्रहण को (De facto) वास्तविक सत्ता के समक्ष लेना चाहिये न कि (De jure) वैधानिक सत्ता के समक्ष। थोड़े ही लोग ऐसे होंगे जिन्होंने बिशप बर्नेट (Bishop Burnet) के मत का समर्थन करते हुए विलियम और मेरी (William and Mary) को विजयी समझकर सारा राज्य देना उचित समझा हो। कम से कम जिस पुस्तिका में उसने यह मत प्रकट किये हैं उससे यह स्पष्ट पता चलता है कि उसने हाउस आफ कामन्स (House of Commons) की सत्ता को एक 'कामन' जल्लाद की भाँति जलाकर समाप्त कर दिया है।

वस्तुतः जिस चीज ने नान ज्यूरर्स को पराजित किया वह सहज ज्ञान (Common Sense) था। इसके मतवाद पर जितनी आलोचनाएँ हुई हैं

उनमें से फ्लीट की आलोचना सबसे योग्य और महत्वपूर्ण है। उसने उन रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिये आग्रह किया है जो कि पादरियों के अपहरण और पदच्युत करने की नीति के कारण खाली हो गईं थीं। इस सम्बन्ध में उसने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया था वह यह था कि जब तक इन पदच्युत पादरियों के रिक्त स्थान की पूर्ति नहीं की जाती ,तब तक पदच्युत करने की नीति वैधानिक नहीं मानी जा सकती और नान ज्यूरर्स की वर्तमान स्थिति भी जैसी की तैसी बनी रहनी अनिवार्य रहेगी। उसने इस विषय पर विचार करते हुए लिखा है कि—"यदि पदच्चुत पादरियों के रिक्त स्थानों पर किसी दूसरे को स्थापित करना गैर कानूनी माना जायगा तो वह पदच्युत पादरी स्थानरिक्त होने के बाद भी उसका प्रतिनिधि माना जायगा। ऐसी दशा में वह कानून जो उसे पदच्युत करता है उसका कोई महत्व ही नहीं रह जाता। इसी के साथ वह सम्राट और पार्लियामेन्ट जिसने पदच्युत करने का कानून पारित किया है वे भी न तो सम्राट कहे जा सकते हैं और न वह पार्लियामेन्ट पार्लियामेन्ट मानी जा सकती है। यदि उपर्युक्त बातें मान ली जायँ तो इनके अनुसार राजभक्ति के शपथ (Oath of Allegiance) का भी कोई महत्व उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि शपथ दिलाने वाला यह भी न घोषित करे कि सम्राट वह सम्राट है जिसकी कोई शक्ति नहीं है और न ही वह शासन कर सकता है।" नानजूरर्स (Non-Jurors) यह सब बातें स्वीकार कर लेगा और आज इतना ही सत्य है कि उनकी इस प्रकार की दलीलें ही यह सिद्ध कर सकती हैं कि वह किस सीमा तक राष्ट्रीय मनोभावना (National Temper) से अपरिचित और अनभिज्ञ थे। वह मात्र कानूनी क्रान्ति (Legal Revolution) करना चाहते थे। स्पष्ट है कि ऐसी क्रान्ति कभी भी सम्भव नहीं हो सकती। हम इस बात पर दुख प्रकट कर सकते हैं कि शपथ की प्रथा उस समय इतनी तीव्र रूप से क्यों कर प्रस्तुत की गई थी। साथ ही हम इस पर भी दुख प्रकट कर सकते हैं कि वह अनावश्यक रूप में लागू की गई थी। किन्तु क्रान्तिकारियों का प्रमाण-पथ ज्वालाओं का होता है, इसलिये नानजूरर्स ने

जितना भी कष्ट उठाया उसके लिये शासन सत्ता कम से कम जिम्मेदार ठहराई जा सकती है। क्योंकि स्वयम् उनमें अपने सिद्धान्तों के लिये कटिबद्ध होकर संघर्ष करने की क्षमता नहीं थी। विलियम और उसके सलाहकारों को ऐसी परिस्थिति में जब कि स्काटलैण्ड और आयरलैंड में आन्दोलन की संभावनाएँ थीं फ्रांस से विरोध नहीं करना था क्योंकि देश में भी डाह और षड़यन्त्रों की सम्भावनाएँ पर्याप्त होने के नाते, शासन कार्य चलाना कोई सरल कार्य नहीं था। उस समय को देखते हुए नानज्यूरर्स की असफलता का जो कारण दिखाई पड़ता है वह उनके उत्साह में व्याप्त वह दुर्बलता है जो उनकी प्रकृति के साथ बँधी हुई थी।

(२)

नान ज्यूरिंग फूटवाद (Nonjuring Schism) की ही अकेली समस्या नहीं थी। उस समय चर्च और राज्य, चर्च और राष्ट्र सम्बन्धी समस्याएँ देखने में काफी गौण लगती थीं, किन्तु आने वाले वर्षों में यही समस्यायें बड़ी तीखी व्यंजनाओं के साथ उभर कर प्रस्तुत हो गई थीं। कुछ विद्वेषपूर्ण अशान्त प्रकृति के व्यक्तियों को छोड़कर, किसी न किसी प्रकार की सहिष्णु नीति को प्रायः सभी स्वीकार करते थे। इससे भी बड़ी समस्या उस समय उन व्यक्तियों को थी जो एक बृहत्त योजना (Scheme of Comprehension) के स्वप्न देख रहे थे। उस स्वप्न के आधार पर वह आशा करते थे कि कुछ विरोधियों (Dissenters) को छोड़ कर, प्रायः सभी उनकी उस बृहत्त योजना (Scheme of Comprehension) को स्वीकार कर लेंगे और चर्च में शामिल हो जायँगे। यही समस्या थी जो दो वर्ष तक बड़ी तीव्र ढंग से विवाद का विषय बनी हुई थी। उन विद्रोहियों एवम् विरोधियों (Dissenters) के प्रति चर्च क्यों इतनी घृणित दृष्टि रखता था इसका भेद तो उस समय खुलता है जब हम इन पंथवादियों के इतिहास को गृह-युद्ध के काल में देखते हैं। कभी-कभी यह देखकर कि वे लोग जो कल तक चर्च को समाप्त करने का आन्दोलन कर रहे थे आज वे ही चर्च के अधिकारों के समर्थक

बन गये हैं एक ऐसी व्यंग्यात्मक स्थिति का बोध होता था जो काफी दुखद थी। अस्तु इस समस्या के राजनैतिक पहलू को हमें नहीं भूलना चाहिए। विलियम को बहुत उत्सुकतापूर्ण समर्थन धर्मविरोधियों (Non-Conformist) ने दिया था। चूँकि ये धर्मविरोधी (Non-Conformist) अधिकांश रूप में ह्विग (Whig) दल के मनोभावों से सम्पृक्त थे, इसलिये उनमें सहिष्णुता की मात्रा अधिक थी, इसीलिये वे चर्च के कटु आलोचक भी थे। टोरी दल के अनुयाइयों के लिये धर्मविरोधियों को निकाल बाहर करना ही प्रधान कार्य-क्रम बन गया था। टोरी दल के लिये यह नीति इसलिये और भी अधिक मूल्यवान सिद्ध हो रही थी क्योंकि इससे उन्हें एक संस्था की आड़ लेकर अपने विरोधियों को जड़ से नष्ट करने का बड़ा ही सुन्दर सुअवसर मिल गया था। स्केवेरेल (Scheaverell) के अभियोग (Trial) के समय (१७१०) में उन्हें यह भी स्पष्ट हो गया था कि चर्च अब भी व्यापक जनता पर अपना पर्याप्त प्रभुत्व रखता है और उस प्रभुत्व का समुचित लाभ उठाया जा सकता है।

इस प्रकार की मनोवृत्तियों में उस काल की शासन सत्ता की विनाशकारी (Eraslian) नीति का बहुत बड़ा हाथ था। विलियम (William) की छत्र छाया में इस मनोवृत्ति का अर्थ भी स्पष्ट हो गया था। क्योंकि यदि वह अपने चर्च को अपने वश में करके नहीं रखता तो यह निश्चित था कि उस नीति के अभाव में उसके शत्रुओं की शक्ति बढ़ जाती। ऐन (Anne) यद्यपि स्वयम् चर्च के पक्ष में थी फिर भी वह अपने इसके शासन काल में इस समस्या को मूलरूप में कोई परिवर्तन नहीं ला सकी। विलियम (William) ने धर्मविरोधियों (Non-Conformist) को राज दण्ड के अभियोग से मुक्त कर दिया था। १७१३ के आकेजनल कन्फर्मिटी ऐक्ट (Occassional Comformity Act) द्वारा प्रायः सभी विरोधी मत वालों को राजनैतिक पदों से निकाल दिया गया था। जब हैनोवर वंश वाले (Hanoverians) इंगलैण्ड की गद्दी पर बैठे तो उन्होंने इस कानून के बहुत-से ऐसे कठोर अंशों को संशोधित करना चाहा जिन में अत्यधिक असहिष्णुता थी किन्तु

टेस्ट ऐक्ट (Test Act) के बदस्तूर कायम रहने से इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिलता है, कि विरोधियों (Dissenters) को उस समय भी पूरी तरह से राष्ट्रीय जीवन का जीवित अंग नहीं माना गया था।

विरोधियों के प्रति इन घृणा के भावों के कारण गृह-युद्ध के काल जैसा वातावरण पाया जाता है। इसका एक रूप उस काल में भी व्यापक रूप में मिलता है जब जेम्स और एलिजाबेथ की नीति के कारण धर्म को लेकर संघर्ष उठ खड़े हुए थे। उस समय की पुस्तिकाओं का अनन्त संख्या है जिनमें से कुछ नष्ट हो गईं क्योंकि वे नष्ट होने लायक ही थीं। हमें अठारहवीं शताब्दी में ठीक सतरहवीं शताब्दी की भाँति इस बात का बोध होता है कि प्रेस्बिटेरियन (Presbyterians) शासन सिद्धान्त, प्राकृतिक शक्ति (Natural Power) के अस्तित्व के साथ बैठ नहीं पाता। लेसली (Leslie) कहता है कि "उनका यह मत है कि यदि शासन सत्ता हानिकारक और बिना लाभ के धार्मिक नियमों को अनुपयोगी मानती हैं और यह अनुभव करती है कि उनसे कोई लाभ नहीं होगा, तो उसे यह अधिकार है कि उनको नियंत्रित करने के लिये धार्मिक क्षेत्रों से सम्बन्धित कानून पारित करे। ऐसी स्थिति में वे सिविल मजिस्ट्रेट के माध्यम से अपने इस अधिकार को भी प्रयोग में ला सकते हैं।" जहाँ तक नाक्स (Knox) और कार्टराइट (Cartright) का सम्बन्ध है उनके लिये ऐसे मत का होना कोई अनुचित नहीं कहा जा सकता। किन्तु उनके बाद के प्रेस्बिटेरियन भी जब इस मत का अनुकरण करते हैं तो वह बड़ा हास्यास्पद स्वांग जैसा लगता है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि वे दो विभिन्न साम्राज्यों को अधिक से अधिक निकट प्रस्तुत करना चाहते हैं किन्तु बाद में जब वे ऐक्ट आफ १७१२ (Act of 1712) के द्वारा चर्च पर आधिपत्य के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेते हैं तो स्वयम् उनकी बात ही खण्डित हो जाती है। ब्रैमहाल उनके सुचारु-पूर्ण अनुशासन को बिना किसी संदेह के पापवाद की परिष्कृत अवस्था मानता है। उसके इस मत का समर्थन सैकड़ों ऐसे लोगों ने भी अपनी पुस्तिकाओं (Pamphlets) में दुहराया है जो उसकी तुलना में बड़ी ही निम्नस्तर के बुद्धि के थे। डेफो (Defoe) की व्यंग्यपूर्ण स्थिति ही पर्याप्त रूप में जन साधारण

से, चर्च के अनुयायियों से, यह भावना मिटाने में समर्थ हो सकी थीं। क्रान्ति ने ही चर्च की स्थिति को खण्डित किया है। न वे सिद्धिप्राप्त सिद्धान्त ही उपर्युक्त भावना को मिटा सकने में समर्थ हो सके थे। इसीलिये लोगों का यह भी मत था कि शासन सत्ता को छूट देने से निश्चय ही बड़े भयंकर दुष्परिणाम निकलेंगे। लेकी (Lecky) के शब्दों में यदि कहा जाय तो यह कहना गलत न होगा कि चर्च ने इसीलिये शासन सत्ता का इतना दृढ़ विरोध किया कि जार्ज प्रथम (George I) के गद्दी पर बैठने के बाद ही टालेरेशन एक्ट (Toleration Act) रद्द किया जा सका और क्रान्ति के राजनैतिक स्वार्थों को विनष्ट किया जा सका।

किन्तु उन मनोभावनाओं (tempers) की अभिव्यक्ति इतनी तीव्र ढंग से कहीं और नहीं प्रदर्शित हो सकी थी, जितनी कान्वोकेशन सम्बन्धी विरोधों को लेकर उठाई गई थी। इस भेद को बढ़ाने में चर्च से अधिक विलियम (William) के परामर्शदाताओं ने भाग लिया था। यदि वे उसके शासनकाल के आरम्भ में ही गिरजे की सम्मिलित प्रार्थना (Liturgy) के विरुद्ध इतने सन्देह न उत्पन्न करते तो बहुत से संघर्ष अपने आप समाप्त हो जाते। इस बात को चर्च के अनुयाइयों ने इसलिये और भी बहुत कटुता के साथ अनुभव किया था क्योंकि कान्वोकेशन (Convocation) के उच्च सदन (Upper House) के दो-तिहाई सदस्य वि लयम (William) द्वारा नामज़द किये गये थे। वे सदैव विलियम का ही पक्ष लेकर बात करते थे। विलियम (William) और एन (Anne) दोनों के शासनकाल में यह संघर्ष उसी रूप में चलता रहा। केवल छोटे दर्जे के पादरी किसी प्रकार के संघर्ष से सदैव बचने की चेष्टा करते रहे। उन्होंने सम्राट (King), आर्कबिशप (Archbishop) और उच्च सदन (Upper House) का विरोध किया। टोलैण्ड (Toland) और बर्नेट की कृतियों की निन्दा का यही कारण है कि तब से बर्नेट की पुस्तक एंग्लीकन साहित्य की महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है। मूल रूप में यह विरोध उस संघर्ष का भी प्रतिनिधित्व करता था जो चर्च की ऊँचाई (High Church) की अपेक्षा उसकी व्यापकता (Latitud-

inarianism) के परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत किया गया था। किन्तु यह आन्दोलन इस मूल प्रवाह का एक अंशमात्र था। जो वास्तविक संघर्ष था वह इस बात को लेकर उठाया गया था कि राज्य का कैसा और किस सीमा तक चर्च पर अधिकार उचित माना जा सकता है। इस प्रश्न का उत्तर भी कोई दूसरा नहीं हो सकता था, क्योंकि जेम्स प्रथम और चार्ल्स के शासन ने वास्तविकता को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दिया था। इस स्थिति में परिवर्तन उसी समय संभव हो सका जब चर्च और राज्य की नीति एवम् कार्य-क्षेत्र भिन्न स्तरों के आधार पर स्थापित हो सके।

यह विवाद विलियम के गद्दी पर बैठने के साथ ही उठ खड़ा हुआ था किन्तु इसका वास्तविक रूप १६६७ में व्यक्त हो सका था। उसी साल 'दि लेटर टु ए कान्वोकेशन' द्वारा (जहाँ तक ज्ञात है सर बार्थोलम्यू (Bartholomew) ने भी जो कि एक योग्य किन्तु विकृत मनोवृत्तियों वाला जेकोबाइट (Jecobite) वकील था और बड़े ही द्वेषपूर्ण विचारों के साथ अप्रतिम रूप से चालाक व्यक्ति था) सर्वप्रथम उन सभी प्रश्नों को उधेड़ कर उठाया गया था जिनसे एक शान्तिप्रिय चर्च अनुयायी सदैव बचने की चेष्टा करता था। इस पत्र में नास्तिका की वृद्धि का उल्लेख किया गया था और यह प्रतिपादित किया गया था कि उस समय वे चर्च सोसिनियन (Socinian) मतवाद का अनुकरण कर रहे थे। इसलिये इन बुराइयों को केवल कान्वोकेशन सभा के सदस्य ही रोक सकते हैं। इस पत्र के लेखक ने कहीं भी इस बात को स्वीकार करने से इन्कार नहीं किया था कि सम्राट का हस्तक्षेप ही इस बिगड़ती हुई चर्च की दशा को ठीक कर सकने में समर्थ होगा। इसके विपरीत उसमें इस पक्ष का समर्थन किया गया था कि कान्वोकेशन (Convocation) अपनी बैठक में उन सभी प्रश्नों पर उसी प्रकार विचार कर सकती है जिस प्रकार कि पार्लियामेन्ट की बैठक में किसी भी सम्बन्धित विषय पर विचार किया जा सकता है। शावर (Shower) ने यह भी कहा था कि—"ये सभाएँ ठीक उसी प्रकार शक्ति और क्षमताओं का चर्च में प्रयोग कर सकती हैं जैसे पार्लियामेन्ट राज्य के सम्बन्ध में प्रयुक्त कर सकती है।" उसने इस बात पर बल देते हुए कहा था कि बैठक बुलाने के कार्यक्रम में किसी भी प्रकार अन्य विषयों पर विचार करने का अधिकार सीमित नहीं किया

जा सकता। चूँकि कान्वोकेशन धार्मिक पार्लियामेन्ट है इसलिये वह विधायक बना सकती है, और किसी भी प्रकार के कानून लागू कर सकती है, बशर्ते कि वे कानून साधारण कानून, नियम, प्रथा और दायित्व को न खण्डित करें। शावर (Shower) इस सम्बन्ध में कहता है कि "विवादों को प्रस्तुत करना और उन पर निर्णय बिना सम्राट् की स्वीकृति के भी पारित करना वह साधारण नियम है जिनका कि पूर्ण अधिकार कान्वोकेशन (Convocation) को है।"

इस पत्र में पुनः उन समाधानों को चुनौती दी गई थी जिन्हें विलियम वेक (William Wake) ने उठाया था। चर्च के व्यापकवादी आन्दोलनकारियों में वह बड़ा सुयोग्य और विद्वान पादरी होने के साथ-साथ जागरूक भी था। टेनीसन के बाद कैन्टरबरी में उसके पद को स्वीकार कर के उसने इस आदोलन को अधिक योग्यता के साथ संचालित किया था। इसका उल्लेख अपनी पुस्तक "दि अथार्टी आफ विलियम प्रिन्सेज" में उसने स्पष्ट रूप से किया है। उसका तर्क मात्र ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित था। उसका यह मत था कि धार्मिक परिषदों की बैठक बुलाने का अधिकार पुराने विलियम राजाओं को अनादिकाल से उस समय तक था जब तक कि चर्च के पोप उनके अधिकारों का अपहरण करके चर्च को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र बनाने में समर्थ नहीं हुए थे। रिफार्मेशन ने उस आदिम प्रवृत्ति को फिर से ग्रहण कर लिया था और १५३१ के ऐक्ट आफ सबमिशन (Act of Submission) ने किसी भी पादरी को वैधानिक रूप से बिना सम्राट् की आज्ञा के किसी भी धार्मिक विषय पर वादविवाद करने की स्वतन्त्रता को असम्भव बना दिया था। ऐतिहासिक दृष्टि से वेक के तर्कों का खण्डन नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत चर्च को उसकी जो बात बहुत ही प्रिय लगी थी वह उसके खंडनवादी (Erastianism) तर्क थे और उनमें निहित पुरानी शैली का प्रयोग था। वस्तुतः सम्राट् चर्च के लिए कोई भी ऐसा कानून बना सकता है जो कि उनके लिये उपयुक्त हों, क्योंकि चर्च एक ऐसा माध्यम (Canon) है, जिस पर सम्राट् की सत्ता का मोहर लगाना नितान्त आवश्यक है। उसकी दृष्टि में चर्च की सत्ता सिवा राज्य के एक विभाग के और कुछ नहीं है। यही नहीं वेक (Wake) ने इससे

बढ़कर जो बात कही है वह यह है—"मेरी समझ में नहीं आता कि वह प्रधान सत्ता (Supreme Power) जो स्पष्टतया कान्वोकेशन (Convocation) के किसी भी डिग्री को रद्द करने की शक्ति रखती है, वह उसका कोई अन्य उपयोग क्यों नहीं कर सकती और अपने मनोनुकूल वह उनमें सुधार, संशोधन, अथवा उनके प्रस्तावों में परिवर्तन करने की क्षमता, अनुमति देने के पूर्व क्यों नहीं प्रदर्शित कर सकती।"

प्रस्तुत व्याख्या के आधार पर यह सिद्ध होता है कि कोई भी चर्च सही अर्थों में क्राइस्ट के नेतृत्व को नहीं स्वीकार कर सकता क्योंकि उसकी सम्पूर्ण सत्ता स्पष्ट रूप से शासन के अधीन ही मानी जायगी और उसको उसकी सुविधा एवम् आचरण के अनुकूल चलना पड़ेगा। वेक (Wake) के इन उत्तरों ने बड़ी उत्तेजना फैला दी थी, ठीक वैसी ही उत्तेजना जैसे कि शावर के पत्र ने फैलाई थी। किन्तु इससे भी भव्य आलोचना फ्रैन्सिस एटरबेरी (Atterbury) की है जो उस समय क्राइस्ट चर्च कालेज का विद्यार्थी था और अपने तूफानी जीवन के प्रथम चरण में प्रवेश कर रहा था। उसका 'राइट्स, पावर्स एण्ड प्रिविलिजेज् आफ एन इंगलिश कान्वोकेशन स्टेटेड एण्ड विन्डीकेटेड' (Rights, Powers and Privileges of an English Convocation Stated and Vindicated) नामक लेख मात्र उसकी सशक्त ऐतिहासिक प्रतिभा का ही परिचय नहीं देता वरन् साथ-साथ वेक उत्तरों का प्रतिवाद करते हुए उसके मूल अवस्थान (Position) को भी खंडित करता है। वास्तव में वेक ने जिस ऐतिहासिक आधार पर चर्च की बात उठाई थी वह उचित नहीं थी। वेक ने पुनः स्टेट आफ दि चर्च (State of the Church, 1703) नामक लेख में अपनी बात को प्रस्तुत करने के लिये कुछ बातों को स्वीकार कर लिया था। किन्तु जब एटबेरी चर्च की प्रकृति सम्बन्धी समस्या की तह में विवेचना करता है तब उसकी बातों और विचारों को बड़ी शक्ति मिल जाती है। इस सम्बन्ध में उसके उन तर्कों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है जहाँ वह वेक की प्रतिपादित सम्राट् की प्रभुता को खंडन करते हुए उसके तर्क को दोषी बनाता है और कहता है कि वेक (Wake) ने इस

सिद्धान्त को प्रतिपादित करके पार्लियामेन्ट की शक्ति की अवहेलना की है। इस तर्क का तो वेक (Wake) बड़ी सरलता से उत्तर दे सकता था और वह कहता था कि यह परिवर्तन तो प्रस्तुत क्रांति (Revolution) के कारण हुआ है। एटबेरी सहज रूप में अपनी इस बात से समस्त सहानुभूति ग्रहण कर लेता है कि कोई भी चर्च बिना किसी ऐसे परिषद् के जीवित नहीं रह सकता जहाँ खुल कर विभिन्न समस्याओं पर विचार करने की स्वतन्त्रता न हो। इसी प्रकार कोई भी परिषद् यथार्थ रूप में परिषद् नहीं कही जा सकती यदि उस पर किसी भी प्रकार बाह्य नियंत्रण आरोपित रहेगा। वह कहता है कि—"ऐसी संस्था राज्य के लिये भी व्यर्थ की सिद्ध होगी और परिणामस्वरूप घृणास्पद भी होगी" क्योंकि इसके मत एवं विचार उस स्वतन्त्रता के साथ नहीं विकसित होंगे जो सम्मान स्वीकार करा सके। अन्य हाई चर्चमेन (High Churchman) की भाँति एटबेरी (Atterbury) के पास वह स्पष्ट दृष्टि थी जो चर्च और राज्य को समान स्तर पर रख कर नहीं देखती थी। इसीलिये वह चर्च को किसी भी बाह्य या विदेशी आक्रमण से बचाने के लिये चिन्तित भी था। यदि चर्च को वास्तव में यथार्थ का होना है तो उसे स्वतंत्र होना पड़ेगा और इसी प्रकार स्वतन्त्र होने के अर्थ होंगे कि वह आत्म-अभिव्यक्ति में स्वतन्त्र सचेत जीवन्त रूप में प्रस्तुत हो सकेगा। किन्तु विलियम (William) और एन (Anne) दो में से कोई भी धार्मिक नियंत्रण में निहित राजनैतिक स्वार्थों का परित्याग करने के लिए तैयार नहीं थे। यही कारण था कि खण्डनवादी (Erastian) सिद्धान्त दिन प्रतिदिन विजयी होते जाते थे।

हाई चर्चमेन (High Churchmen) के वास्तविक दृष्टिकोण को सबसे अधिक कुशल ढंग से चार्ल्स लेसली (Charles Leslie) ने ही प्रस्तुत किया था। अपनी पुस्तक 'केस फार दी रीगेल' (Case for the Reagale) में उसने अपनी अन्य कृतियों की अपेक्षा अधिक कुशलता एवं पटुता का परिचय दिया है। उसने इस समस्या की प्राथमिक स्थिति में ही यह देख लिया था कि चर्च की वास्तविक स्थापना एक दैविक समाज (Divine Society) को ऐसे अधिकारों से युक्त रूप में स्थापित करना है, जो केवल उन्हीं द्वारा बनाये

नियमों के अनुसार कार्य संचालन कर सके। यदि इन अधिकारों को ईश्वरप्रदत्त मान लिया जाय तो फिर उनकी शक्ति को कोई भी बाह्य आक्रमण खडित नहीं कर सकता। इसी आधार पर उसने यह कहा था कि ऐसे ईश्वरप्रदत्त अधिकारों का कैसे परित्याग किया जा सकता है? यदि वे दैविक अधिकार हैं तो उन्हें कोई मनुष्य न तो छीन सकता है और न खंडित ही कर सकता है। इसी प्रकार चूँकि वे जन्मजात अधिकार हैं इसलिए वे अविभाज्य हैं। मिलने, विचार करने, नियम पारित करने और अपने समाज को अनुशासित करने का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति और संस्था को है। ऐसी स्थिति में जीवन के उन अविभाज्य और अनिवार्य अंगों को अपने से पृथक् भी कैसे किया जा सकता है? न ही इस बात से इन्कार किया जा सकता है कि, जब किसी समाज के शिक्षकों को अनुशासित करने का अधिकार स्वयम् उस समाज के बजाय किसी दूसरे समाज में होता है, तो वह समाज भी उसके अधीन हो जाता है और अपना स्वत्व नष्ट कर देता है। इस प्रकार व्यापक आन्दोलनकारियों की दृष्टि में चर्च या तो राज्याश्रित रूप में ही जीवित रह सकता है या वह स्वत्व से अनुप्राणित और अनुशासित ही होकर जीवित रह सकता है। किन्तु लेसली किसी भी प्रकार से इन फलदायक गतिरोधों को नहीं स्वीकार कर सकता। इस विषय में उसका यह मत था कि राजनैतिक और धार्मिक शक्तियाँ उन समानांतर रेखाओं की भाँति हैं जो न तो कभी मिलती हैं और न एक-दूसरे के कार्य क्षेत्र में हस्तक्षेप कर सकती हैं। जब कोई भी राजनैतिक शक्ति (Civil Power) धार्मिक शक्तियों को, या चर्च को, अपने कानून द्वारा अनुशासित करने का प्रयास करेगी तो बहुत-सी भ्रांतियाँ उत्पन्न होंगी और धार्मिक मामलों में चर्च की शक्तियों में बहुत-सी विकृतियाँ उत्पन्न होने लगेंगी। वह यद्यपि चर्च द्वारा सम्राट् को अनुशासन देने की बात पर कोई संदेह नहीं करता और न सिविल मैजिस्ट्रेट (राजनैतिक सत्ता, Civil Power) की दमन नीति पर ही कोई संदेह प्रकट करता है किन्तु वह यह मानता है कि जो अधिकार राजनैतिक शक्तियों और सत्ताओं को है ठीक वही अधिकार चर्च को भी है। चूँकि दोनों को अपने-अपने क्षेत्र में समान अधिकार प्राप्त है इसलिए सम्राट् को भी यह चाहिये कि वह

क्राइस्ट के चर्च (Church of Christ) की रक्षा के कर्तव्य को चर्च पर किया जाने वाला एहसान न माने। मात्र रक्षा के बदले में वह उन अधिकारों को स्वयम् अपने हाथ में लेने की चेष्टा नहीं कर सकता जो कि क्राइस्ट (Christ) द्वारा चर्च को दिये गये हैं। इसके साथ ही वह खंडनवादी (Erastianism) नीति की भी आलोचना करना नहीं भूल सका है क्योंकि चर्च का जनता पर अधिकार केवल उसके विश्वास से सम्बन्ध रखता है और लोगों का विश्वास (Faith) भी चर्च के सिद्धांतों के बावजूद उन पर बिना आधारित हुए भी संभव हो सकता है। इसीलिए जब जनता राज्य-नियुक्त पादरियों को देखती थी तो वह उनसे कचेहरी की भाषा में ही बात करना उचित समझती थी। और उनकी बातों को ऐसे चर्च की आज्ञा के रूप में स्वीकार करती थी जो अदालतो के आदेशानुसार निर्णय देते रहते थे। यह स्थिति स्वयम् इस बात की परिचायक थी कि राज्य की शासन सत्ता धीरे-धीरे जनता के विश्वास से वंचित हो रही थी।

उपर्युक्त तर्क काफी सशक्त है, किन्तु यह ध्यान रखने की बात है कि इस स्थापना के कई ऐसे भी अंश हैं जिनको यहाँ दबा दिया गया है। लेसली (Leslie) ने यह नहीं बताया है कि चर्च और स्टेट (Church and State) के सीमा-क्षेत्रों को कैसे निर्धारित किया जाय। वह यह भी नहीं स्पष्ट कर सका है कि चर्च और राज्य सम्बन्धी संघर्षों को किस पद्धति के अनुसार ऐसा सुलझाया जाय ताकि बिना स्वतंत्रता को खण्डित किये ही दोनों की स्थापनाएँ सुलभ रूप से मर्यादित हो सकें। यह बात तो स्पष्ट है कि चर्च और राज्य के सम्बन्ध किन्हीं शर्तों पर ही आधारित किये जा सकते हैं। यदि एक बार भी यह मान लिया जायगा कि राज्य सिवा चर्च को सम्मानित (Adoption) करने के उसके अन्य कार्यों में हस्तक्षेप कर सकता है, तो मात्र इस स्थिति को मान लेने ही से चर्च की पूर्ण स्वतंत्रता खण्डित हो जाती है। इसी प्रकार यदि चर्च राज्य के व्यवहारों के प्रति प्रतिवाद के अतिरिक्त किसी भी प्रकार के राजनैतिक माध्यम का आश्रय लेकर उन्हें दूर करने का प्रयास करता है, तो निस्सन्देह ऐसा करके वह राजनीतिक व्यक्तियों को यह अवसर प्रदान करेगा कि वे चर्च को राजनैतिक कार्यों के लिये अपना अस्त्र बनाएँ और उसकी इच्छाशक्ति (Will

Power) का दमन करके उसका बेजा लाभ उठाएँ। इसलिये हाई चर्चमेन (High Churchmen) का उद्धार किसी भी स्थिति को नितांत (Exclusiveness) रूप में स्वीकार करने में नहीं है। उसका उद्धार उस बंधन से मुक्त होने में है।

इन संघर्षों का यह अर्थ जार्ज प्रथम(George I) के काल तक स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं किया जा सका था। जिस विवाद को बंगोरियन विवाद के नाम से बहुचर्चित किया जाता है, वह मूलतः जार्ज हिक्स जो नान-ज्यूरर्स दल का बहुत बड़ा नेता था उसकी मृत्यु के बाद उसके निबधों के प्रकाशित होने के नाते उठ खड़े हुए थे। वैसे उन निबंधों का कोई विशेष महत्व नहीं है, किंतु यदि १७१५ में काफी विवाद जैकोबाइट विद्रोह के साथ रखकर उन निबंधों को देखा जाय तो यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि उन सबका उद्देश्य क्रान्ति द्वारा स्थापित व्यवस्था को तोड़ना ही था। बात जो भी रही हो बेंजमिन होडले(Benjamin Hoadlay) ने जो कि बेंगर का बिशप (Bishop of Bangor) और चर्च के व्यापकवादी (Latitudinarianism) सम्प्रदाय के प्रमुख नेताओं में से था, उन सबका यही अर्थ लगाया था। आज यह समस्त संघर्ष समाप्त होकर धूल और राख में मिल गये हैं, किंतु उन लोगों को जो इन कटु एवम् तीखी आलोचनाओं वाली प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करेंगे, उन्हें यह स्पष्ट रूप से पता चलेगा, कि क्या कारण था जो सैकड़ों लेखकों ने संसार को इस प्रकार बताने और जनमत बनाने का प्रयास किया था। उन्हें इसका भी कारण मालूम होगा कि लण्डन स्टाक एक्सचेंज ने इस वाद-विवाद में जो आवश्यकता से अधिक रुचि दिखलाने की चेष्टा की थी उसका भी मूल कारण क्या था, और वह क्यों इस शोर और गुल को एक दिन के लिए भी नहीं बन्द करना चाहते थे ! इसी प्रकार लाख चेष्टा करने पर भी उनके समर्थकों में से एक को भी इस आन्दोलन का नायक नहीं घोषित किया जा सकता। स्वयं होडले जो बहुत ही साधारण परिवार का था, एक निश्चित राजनैतिक विचार का अनुयायी होने के नाते, साधारण कोटि से विन्चेस्टर के बिशप-वैभव (Bishopric of Winchester) का मालिक बन बैठा था, क्योंकि उसने तत्सम्बन्धी कई विचारों को धर्मक्षेत्र में अनुवादित एवं प्रचारित करने में सहायता

दी थी। १७१६ के विवाद के पूर्व वह प्रायः प्रमुख राजनैतिक पुस्तिकाओं के लेखक के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुका था। इन पुस्तिकाओं में उसने बिना आभार स्वीकार किये ही लाक की दोनों पुस्तकों को उद्धरित एवं रूपान्तरित करके प्रस्तुत किया था। उसे यह स्पष्ट ज्ञान था कि ईश्वरप्रदत्त अधिकार (Divine Right Theory) के ढोंग के पीछे कितना खोखलापन है, किन्तु उसे उस सिद्धान्त को हटाकर किन सिद्धान्तों को प्रतिष्ठापित करना है इसका कोई भी ज्ञान नहीं था। शायद, जैसा कि लेसली स्टीफेन (Leslie Stephen) का निश्चित मत है, उसके समस्त भ्रमपूर्ण सिद्धान्तवादिता के पीछे उस एक ईश्वरी (Deists) धार्मिकता की धुंधली प्रतिछाया है, जो उस समय बड़े जोरों से बहुचर्चित रूप में प्रस्तुत की जा रही थी। यदि ईश्वर को सांसारिक संदर्भों से पृथक् करके देखना है तो हमें इस विस्थापन और परिवर्तन को भी मानवीय दृष्टि से देखना आवश्यक है। इन्हीं विचारों के आधार पर उसने यह निश्चित मत बना लिया था कि ये विचार ठीक उसी प्रकार धार्मिक समस्याओं पर भी लागू किये जा सकते हैं जैसे कि वे निरपेक्ष राजनैतिक समस्याओं पर लागू किये जाते हैं। उसके विरोधियों में से सब से अधिक योग्य व्यक्ति विलियम ला (William Law) था। यही एक ऐसा धार्मिक शास्त्र का विद्वान् था जिसे कि गिब्बन (Gibbon) बड़ा आदर करता था और जिसकी रचनाएँ वेसलियन आन्दोलन (Wesleyan Movement) की सूत्रवाहक रूप में अपनी कार्य करती थीं। स्नेप (Snape) ने जो उस समय ईटन का प्रोवोस्ट (Provost of Eton) था उसकी कटु आलोचना की थी और तीन महीने में पुस्तिकाओं के सतरह अंकों में उसने ला के विचारों का घोर खण्डन किया था। उनके साथ-साथ प्रति-उत्तर भी प्रकाशित हुए थे। टामस शेरलाक यदि अपने प्रति-उत्तरों में इतना अधिक व्यंग्यात्मक, तर्कपूर्ण और प्रत्यक्ष रूप से न लिखता तो शायद न तो वह अपने पिता का सही पुत्र माना जाता और न वह स्वयं अपनी प्रकृति का परिचय दे पाता। किंतु जहाँ तक इस विवाद का अर्थ हमारे युग के लिए आवश्यक है, उसके लिए होडले (Hoadlay) और ला (Law) की कृतियाँ ही पर्याप्त हैं। अन्य विवादग्रस्त विषय जैसे होडले का मित्र निर्वाचन

नियम, या प्रार्थना के प्रति उसका दृष्टिकोण, या टेस्ट ऐक्ट (Test Act) की बृहद् व्याख्या, और उसकी बारीकियों का उल्लेख ही वे कारण थे जिनके नाते वह ला (Law) के प्रतिवादों का उत्तर देने में अपने को असमर्थ पाता था। होडले (Hoadlay) के मत पूरी तरह से उसकी कृति 'प्रिजर्वेटिव एगेन्स्ट दि प्रिन्सपल्स एण्ड प्रैक्टिस आव नान-ज्यूरर्स (Preservative against the Principles and Practice of Non-Jurers)—जो १७१६ में प्रकाशित हुई थी—में अच्छी तरह स्पष्टता के साथ व्यक्त हुए हैं। उसमें हिक्स (Hicks) के निबन्धों का सशक्त खण्डन किया गया है। इस पुस्तक का सारगर्भित अंश ३१ मार्च १७१७ को सम्राट् को दिये गये थे और रायल कमाण्ड द्वारा प्रकाशित 'माई किंगडम इज नाट फार दिस वर्ल्ड' (My Kingdom is not for this World) में सुचारु रूप से सग्रहीत किये गये थे। बड़े फैले हुए शब्द-जाल और काव्य-जाल की शैली मे कुछ तथ्य की बातें कही गई हैं। उस प्रबन्ध में उसने जिस बात को स्थापित करने की चेष्टा की है वह यह है कि धार्मिक नेताओं, बिशप और पादरियों का यह कहना है कि वह किसी दैविक शक्ति के प्रतिनिधि हैं और वे किसी भी राजनैतिक सत्ता द्वारा धार्मिक विषयों में किये जाने वाले हस्त-क्षेप का विरोध और खण्डन कर सकते हैं—गलत है। राजनैतिक शक्तियाँ जैसे उस व्यक्ति को भी दण्डित कर सकती हैं जो समाज के प्रति अपराध करता है ठीक उसी प्रकार किसी धार्मिक व्यक्ति को भी दण्ड दे सकती हैं। इस बात को सिद्ध करने में उसने इस बात से भी इन्कार कर दिया है कि स्वयं क्राइस्ट या उनके बाद के उनके शिष्यों में किसी प्रकार की चमत्कारिक अद्वितीय शक्ति थी। यदि वह उस तथ्य को मान लेता तो उसके आधार पर उसे अनेक भ्रमवादी व्यक्तियों को वह सारी सुविधाएँ देनी पड़तीं और अवांछित व्यक्तियों के भ्रामक व्यक्तित्व से सर्वथा प्रोत्साहन मिलने लगता। इस प्रकार ठीक लेसली (Leslie) के ही अनुसार उसने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है, कि यदि चर्च एक ईश्वरीय संस्था है, तो निश्चय ही उसे अपने अधिकार हस्तांतरित नहीं करना चाहिये। वह वस्तुतः स्वतः सर्वशक्तिमान सत्ता (Imperium in Imperio) है, इसलिए उसका संघर्ष भी राज्य से होना स्वाभाविक है। किन्तु, यदि चर्च ईश्वरीय संस्था

नहीं है तो फिर उसकी प्रकृति कैसी होनी चाहिये ? इसी प्रश्न के उत्तर में होडले (Hoadlay) उन समस्त विचारों का खण्डन करता है जो कि चर्च को धर्मप्रधान संस्था मानने वाले उसको ईश्वरीय घोषित करके राज्य-मुक्त सिद्ध करना चाहते थे। उसका यह मत था कि चर्च कोई स्पष्ट दृष्टिगोचर होने वाली संस्था नहीं है। न इसके प्रधान व्यवस्थापक ऐसे लोग हैं, जिनको सीधे क्राइस्ट (Christ) से आदेश मिलते रहते हैं। चर्चों में कोई ऐसे प्रधान व्यक्तित्व नहीं हैं जो अपने स्थान की योग्यता भी रखते हों या जो क्राइस्ट के मत का सन्देश देने की क्षमता रखते हों। वे ऐसे सन्देश दूत (Interpreters) के रूप में नहीं स्वीकार किये जा सकते जो क्राइस्ट के उपदेशों की व्याख्या कर सकते हों या जिन पर अन्तिम रूप से विश्वास किया जा सकता हो। यदि उपर्युक्त क्षमताएँ और कानून बनाने की योग्यता, पुराने कानूनों को नये संदर्भ में व्याख्या करने की शक्ति अथवा धार्मिक मामलों में अपने अनुयाइयों के आचरण का मूल्यांकन करने की क्षमता, चर्च के किसी उप-प्रधान (Vice Regents) में हैं तो वे क्षमताएँ इस पृथ्वी पर रहने वाले किसी भी अन्य व्यक्ति में भी पाई जा सकती हैं और ऐसी दशा में वह चर्च जो क्राइस्ट की दुहाई देकर बातें करता है और अपने को अक्षुण्ण बनाये रखना चाहता है अपनी योजना में सफल नहीं हो पायेगा। क्योंकि यदि कानून बनाने का अधिकार हर किसी को मिल जायगा तो वह स्वयं ही अपने का सम्राट् समझने लगेगा और इस प्रकार जो कोई भी क्राइस्ट (Christ) के उपदेशों में एक नई कड़ी जोड़ने की क्षमता प्रदर्शित कर सकेगा वह चर्च का सम्राट् और क्राइस्ट का प्रतिनिधि माना जाने लगेगा। ऐसा व्यक्ति जो किसी भी लिखित या मौखिक कानून की व्याख्या करके उसे निरपेक्ष सत्ता पर प्रशासित करने का अधिकार रखता है, वास्तव में वही असली कानून बनाने वाला है। ऐसा व्यक्ति जिसने पहले पहल कोई कानून बनाया या मौखिक रूप से स्थापित किया वास्तव में वह कानून बनाने वाला नहीं कहा जा सकता क्योंकि व्याख्या प्रस्तुत करना ही कानून का प्राण है।

इस का भाव भी काफी स्पष्ट है। होडले (Hoadlay) जिस बात को खंडित करना चाहता है वह किसी भी दृश्य क्राइस्ट के चर्च का तथाकथित अस्तित्व

है जिसे सैद्धान्तिक रूप देकर चमत्कार एवं नितान्त भ्रमयुक्त रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। वास्तविक क्राइस्ट का चर्च (Church of Christ) स्वर्ग है और इस धरती के मनुष्य अपनी त्रुटिपूर्ण क्षमता के साथ ही उस सुचारुता (Decency) और न्याय (Justice) का पालन कर सकने में समर्थ हो सकते हैं। देवताओं की तरह अभिनय, अन्तर रहस्य की बातें, मनुष्य के पापों को क्षमा करने के कार्य, वास्तविक सिद्धान्त के अधिष्ठाता के रूप में व्यवस्था स्थापित करने का निश्चय आदि की घोषणा के अधिकार पर चर्च जो प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है वह उसकी निजी शक्ति नहीं है वरन् वह जबर्दस्ती छीनी हुई शक्ति का उपयोग करता है। मनुष्य और ईश्वर का पारस्परिक सम्बन्ध नितान्त वैयक्तिक है। ईश्वर उसके पापों और पुण्यों को स्वयं उससे पूछेगा न कि वह किसी पाखण्डपूर्ण व्यवस्था के माध्यम से उसके कर्मों का निर्णय करेगा। इस प्रकार चर्च का वास्तविक रूप सिवा उपर्युक्त संदर्भों के अन्य कुछ नहीं है। तमाम ईश्वरीय शक्ति की बात जो इस सम्बन्ध में चर्च घोषित करता है वह मात्र राज्य के मानवीय अधिकारों को कुंठित करने के लिए ही है। चूँकि राज्य के पास जीवन के समस्त साधनों का होना आवश्यक है इसलिये उसका यह भी अधिकार है कि वह उन समस्त धार्मिक आन्दोलनों का विरोध करे जो बिना किसी नैतिक अधिकार के, मात्र शक्ति अपहरण करने के षडयन्त्रों में भाग लेती हैं। अपने बाद के कृतियों में होडले (Hoadlay) ने ठीक इन्हीं आधारों पर विचार प्रस्तुत किये थे जिनका उसने चर्च शासन के सम्बन्ध में पिछले पुस्तकों में उल्लेख किया था। इस प्रकार कालान्तर में समाजच्युत करने का अभिनय प्रतीकात्मक रूप में केवल घोषणा तक ही सीमित रह गया था। उनका यह कथन कि बन्धुत्व के सभी बन्धन नष्ट हो गये हैं केवल निराधार-सा लगने लगा था। वस्तुतः किसी भी रूप में इन धारणाओं का पापात्माओं की मुक्ति से कहीं कोई सम्बन्ध नहीं है।

ऐसी स्थिति में यह तो स्वयं सिद्ध हो जाता है कि चर्च का सत्य के प्रति एक मात्र एकाधिकार नहीं स्वीकार किया जा सकता। वह केवल अपने विश्वास की परीक्षा करके सत्य के बारे में अपना निर्णय विवेक द्वारा ही निर्धारित

कर सकता है। उसके निर्णय किसी व्यक्ति के वैयक्तिक कर्तव्यों के सत-असत को किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं कर सकते। किसी भी विश्वास की आधारभूत सत्ता भ्रमात्मक रूढ़ियों और पाखंडों पर नहीं आधारित की जा सकती। केवल वे ही पाखड मनुष्य को प्रभावित कर सकते हैं जिनका सम्बन्ध हमारे विश्वास से होता है। मैजिस्ट्रेट के लिए किसी के कर्मों का विवरण नहीं चाहिए वरन् उस चारित्रिक बल की विवेचना चाहिये जिस पर सारा विवरण आधारित होता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि टेस्ट एंड कारपोरेशन के प्रकार के विधायकों का कोई भी राजनैतिक महत्व नहीं है। वे विधायक तो राज्य के ऊपर उन लोगों के संकीर्ण दृष्टियों का परिचय देते हैं जो शक्ति छीनने के कार्यों में सतत प्रयत्नशील रहते हैं। धर्म विरोधियों (Conformists) का नागरिक होने का दावा उतना ही सत्य प्रतीत होता है जितना कि चर्च आफ इंगलैंड के किसी सदस्य का।

यद्यपि ऐसे सिद्धान्तों की चर्चा किसी गिरजाघर के पादरी के मुख से शुभ नहीं जान पड़ती, फिर भी यह सत्य है कि प्रस्तुत परिवेश में ये बातें उचित लगती हैं। वस्तुतः इन्हीं सब दृष्टियों से ला (Law) ने होडले के विचारों का विश्लेषण भी किया है। कोई भी ऐसा नहीं होगा जो उसकी आलोचनाओं को पढ़कर स्पष्ट रूप से यह न जान ले कि ला (Law) को अपनी धारणाओं के समर्थन में प्रस्तुत आलोचना प्रेषित करने से विशेष संतोष मिला होगा। वास्तव में यह सत्य भी है कि प्रस्तुत संदर्भ में उसकी ही आलोचना ऐसी है जो इन तमाम विवादों में स्थायी मूल्य रखती है और राजनैतिक साहित्य की भी स्थायी वस्तु हो सकी है। यदि एक प्रकार से देखा जाय तो ला (Law) के प्रत्येक उत्तर अपने में है क्योंकि वह उन तमाम स्थापनाओं में पूर्ण निहित सत्य को स्वीकार करके चलता है जिसे होडले ने विवेचना के लिए प्रस्तुत किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि उसकी पुस्तक को पढ़ने से ऐसा लगता है कि प्रत्येक लेखक स्वयं अपनी कृतियों में विभिन्न दृष्टिकोणों से बोल रहा है। अपने निबन्ध में उसने पूरी तरह से यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि यदि इङ्गलैंड के चर्च (Church of England) का वास्तविक रूप वही है जो

होडले ने प्रस्तुत किया है तो निश्चय ही समस्त ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि वह चर्च इंगलैंड का चर्च नहीं है, क्योंकि उनमें से प्रत्येक संस्था जिसे होडले ने अतिक्रमण द्वारा स्थापित हुआ माना है उसे चर्च के अनुयायी उस संस्था का अविभाज्य अंग के रूप में स्वीकार करते हैं। और यदि इसके प्रमाण के लिये केवल ईमानदारी से काम लिया जाय तो वर्तमान जगत् में वस्तुपरक धर्म-सत्य जैसी कोई वस्तु नहीं है। उसके तर्क ने मात्र उस निरपेक्ष सत्ता को (जिसका कि इङ्गलैंड के चर्च ने कभी दावा नहीं किया है) ही नहीं खण्डित किया है वरन् उसने तो प्रत्येक उस सत्ता (Authority) का खंडन किया है जो किसी भी रूप में चर्च में अनुशासन स्थापित करती है। उसके तर्कों ने राज्य की सत्ता को राजनैतिक दंडों के आधार पर धार्मिक विश्वासों को स्थापित करने के लिए उकसाने की भी चेष्टा की थी। होडले द्वारा सत्ता का सम्पूर्ण तिरस्कार, ला (Law) के मतानुसार, किसी भी प्रकार की शासन सत्ता के लिए हानिकारक है, क्योंकि प्रत्येक वैधानिक सत्ता (Constitutional Authority) किसी न किसी रूप में शाश्वत मुक्ति (Eternal Salvation) की समस्या में हस्तक्षेप करती ही है। इसीलिये उसको न मानना भी एक प्रकार का पाप ही माना जाता है। वह सत्ता जो चर्च के अधिकार में है, जन्मजात रूप से चर्च की प्रकृति का अविभाज्य अंग है। ईसाई मत में विश्वास रखने का क्रिश्चियन अर्थ किसी न किसी ऐसे चर्च में विश्वास करना है जिसे क्राइस्ट (Christ) के उपदेशों का प्रतिनिधि माना जाता हो।

स्वयम् ला (Law) के ही दृष्टिकोण से उसके अवस्थान की तार्किक संगति से इन्कार नहीं किया जा सकता। होडले (Hoadlay) के नाम जो उसने तीसरा पत्र लिखा था—जो कि उसके दृष्टिकोण का मूलभूत तत्व था—उसमें उसने उसके तर्क के केन्द्रीय स्थल पर आक्रमण किया था। यदि ईमानदारी ही सबसे बड़ी कसौटी है तो इस तर्क से यह निर्णय भी अपने आप ही सिद्ध होता है कि ईश्वर कोई ऐसा प्राणी है जो हर पक्ष से झूठी और गलत धारणाओं का वैसा ही समर्थन करता है जैसे वह सत्य और उचित धारणाओं का करता है। यह स्थापना ही गलत है। होडले ((Hoadlay) के तर्कों में इस ईमानदारी को नापने का

भी कोई साधन नहीं है। ऐसा लगता है कि इस सम्बन्ध में उसकी यह धारणा थी कि कोई भी जो अपने को ईमानदार समझता है ईमानदार होता ही है। इसका खंडन करते हुए ला का मत है कि—"यह सम्भव है कि कोई व्यक्ति गलत धारणाओं को ही ईमानदारी के साथ बिना यह जाने कि वे गलत आधार पर आधारित हैं, मानता रह सकता है और उनके प्रति वह उतनी ही दृढ़ता दिखा सकता है जितना कि धर्म के प्रति दिखाता है।" इसलिये ईमानदारी किसी भी वस्तुस्थिति का सत्य नहीं है क्योंकि ईमानदारी भी गलत धारणाओं पर आधारित एवम् मिथ्या उद्देश्यों को लक्षित करके प्रस्तुत हो सकती है। राज्य शक्ति का सम्मान कर सकती है किन्तु होडले (Hoadlay) के तर्क व्यक्तिगत विश्वासों के प्रति भ्रम पैदा करने के उसी रूप में अधिकारी नहीं हैं जैसे उसको चर्च के उपदेशों की अवहेलना करने का अधिकार नहीं है। ऐसी स्थिति में अराजकता ही अधिक बढ़ती हुई दीख पड़ती है।

प्रस्तुत संदर्भ मे प्राय: सभी विरोधी मत वाले एक मत से प्रतीत होते हैं। दोनों ही विचारों ने सत्ता के निरपेक्ष अस्तित्व को अस्वीकार किया है, किन्तु होडले (Hoadlay) चर्च का विरोध व्यर्थ में बिना आधार के करता है, क्योकि चर्च सिवा इसके कि क्राइस्ट द्वारा स्थापित नैतिक मान खंडों को स्वीकार करने वाले व्यक्तियों के और कुछ है ही नहीं। ला चर्च की व्याख्या करते हुए उसे परम्परागत आधारों पर विकसित हुई ऐतिहासिक संस्था के ही रूप में स्वीकार करता है। होडले के सिद्धान्तों से यह सिद्ध नहीं होता कि कोई व्यक्ति जो राजनैतिक सत्ता (Political Power) का विरोध करता है वह राजनैतिक सुविधाओं (Political Privileges) को भोगने से क्यों वञ्चित किया जा सकता है। ला (Law) द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों में इसका स्पष्टीकरण मिलता है। वह कहता है कि वे लोग जो हाई चर्च (High Church) की स्थिति को अस्वीकार करते हैं वह ऐसे सत्य से इन्कार करते हैं जो कि उनकी स्वीकृति के लिए सदैव सुलभ ही रहता है। होडले (Hoadlay) के तर्कों का विवेचन उसके ही सिद्धान्त पर करते हुए ला (Law) यह प्रतिपादित करता है कि होडले ने जैसे विचार प्रस्तुत किये हैं उनके आधार पर वह एक ईश्वरवादी

(Deist) मत वाला प्रतीत होता है और उस युग में एकेश्वरवादी (Deist) होना स्वयम् में एक बहुत मूल्यवान् बात थी। इन सब वाद-विवादों का सार तथ्य यह है कि बिशप (Bishop) की दृष्टि में मनुष्य के बाह्य आचरण पर ही राज्य का अनुशासन होना चाहिये। इसके विपरीत लाक का यह मत था कि किसी भी आचरण की उपयुक्तता और उसका औचित्य व्यक्ति के आत्म उपलब्ध-सत्य के आधार पर अङ्कित किये जाने चाहिये।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन समस्त विवादों का परिणाम बड़ा ही कटु एवम् आरत्तिजनक रूप धारण करने लगा। मई १७१७ में कान्वोकेशन (Convocation) के छोटे सदन (Lower House) की बैठक हुई जिसमें सर्व सम्मति से शासन की धर्म रक्षा (Preservative) और उपदेश (Sermon) सम्बन्धी नीति का विरोध करते हुए प्रस्ताव पारित किये गये। होडले (Hoadlay) के पीछे शासन सत्ता की शक्ति थी इसलिये कान्वोकेशन की बैठक इस प्रकार बुलाई गई ताकि उसके बाद कोई कार्रवाई न की जा सके। स्नेप (Snape), हेयर (Hare), मास (Mosse) और शेरलाक (Sherlock) जो कि राज्य द्वारा नियुक्त पादरी थे और जो इस विवाद में बड़ा भाग ले रहे थे उनको पदच्युत कर दिया गया, और इस घटना के बाद १३५ वर्ष तक फिर दूसरे कान्वोकेशन (Convocation) की बैठक नहीं बुलाई गई। खंडनवादियों (Erastians) की यह अद्वितीय विजय थी और होडले (Hoadlay) की बहुत-सी उदार नीति इसी कारण अधिक सफल भी नहीं हो पाई। राबर्ट वालपोल (Robert Walpole) भी इस समय अपनी शक्ति के साथ उभर रहा था और सैचेवेरलस (Sacheverells) के अभियोग के समय वह, जन साधारण पर चर्च का कितना अधिकार है, इससे भी परिचय प्राप्त कर चुका था। यही नहीं उसने वह स्थिति भी देख ली थी जब लोकमत के आवेश में होडले (Hoadlay) का अस्तित्व भी जनता और चर्च द्वारा चुनौती का शिकार बन गया था। उसका आदर्श था एवम् उसकी रुचि धर्म सम्बन्धी तत्वात्मक (metaphysical) विवेचना एवम् विवाद में भी नहीं थे। इसलिए १८२८ तक टेस्ट ऐक्ट (Test Act) जैसे का तैसा ही बना रहा किन्तु उस ऐक्ट के होते हुए वार्षिक रूप में

एक्ट आफ इन्डेमनिटी (Act of Indemnity) बड़ी सरलता के साथ नष्ट करके भी साथ-ही-साथ अपना कार्य करता रहा। यह ऐक्ट अँग्रेज बुद्धि (English brains) के उस सूक्ष्म और पैनी शक्ति का बोध देता है जो समस्याओं की जटिलता पर बिना कोई विवाद प्रस्तुत किये उसके तीखेपन की कटुता को भी सरल और सुगम स्तर पर सुलझाने की क्षमता रखता है, और विवादग्रस्त विषयों के अनावश्यक तथ्यों की अवहेलना करके सैद्धान्तिक स्तर पर उसका निराकरण प्रस्तुत करने का परिचय देता है।

बगोरियन-विवाद (Bongorian Controversy) एवम् आक्सफोर्ड आन्दोलन (Oxford Movement) के बीच एक सौ बीस वर्ष के काल में केवल एक पुस्तक ही चर्च और राज्य की समस्या पर प्रकाशित हुई और वह ऐसी पुस्तक है जिस पर विशेष ध्यान देने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। बिशप वारबर्टन (Warburtton) ने जो अपने युग का लार्ड ब्रोगहम (Lord Brougham) माना जाता था अपने युग के धर्म सम्बन्धी इन ज्वलन्त प्रश्नों पर अपनी व्यापक बुद्धि के अनुसार उत्तेजित करना चाहा था। किन्तु उसका यह प्रयास लेसली स्टीफन (Leslie Stephen) द्वारा बड़ा निन्दित किया गया। उसने वारबर्टन (Warburtton) के इस प्रयास को 'विकृति तर्क और कुत्सापूर्ण धमकी का विचित्र मिश्रण कह कर' उसको इतना घृणित सिद्ध किया कि वह फिर नहीं उभर सका। किन्तु वारबर्टन (Warburtton) ने जो बातें उठाई थीं उनके प्रति मात्र इस प्रकार का दृष्टिकोण रखना न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। वास्तव में वह स्वतन्त्र दल वालों की खण्डनवादी नीति और हाई चर्चमैनवादी नीति के बीच एक मध्यम मार्ग स्थापित करना चाहता था। वारबर्टन ने अपनी प्रकृति के अनुसार ही पुस्तक बड़ी ही अलंकारिक भाषा की सजावट एवं मूर्खतापूर्ण वाक्छलों से भरी है। किन्तु १७३६ में चर्च और राज्य के बीच प्रस्तुत समझौते ने एक दूसरी विवादपूर्ण स्थिति की कल्पना न्यूमन द्वारा प्रस्तुत की जिसके प्रति घृणात्मक दृष्टि रखते हुए भी कुछ विचार करना आवश्यक है। इस पुस्तक में यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि समिति का यह एक विशेष गुण है कि वह

अपने सदस्यों में से किसी एक के व्यक्तित्व को अन्य की अपेक्षा अधिक चमत्कृत रूप में उभार कर एवम् ऐतिहासिक स्तर पर युग की वैधानिक विज्ञप्ति के रूप में प्रस्तुत करती है। इस विषय में वह और स्पष्ट करते हुए कहता है कि "जब लोग अपने को एक समिति बनाकर धार्मिक या राजनैतिक स्तर पर सगठित करते हैं, तो यह सीमित व्यक्तियों की सम्मिलित समूह मात्र नहीं रह जाती।...किन्तु प्रत्येक ऐसी संस्था में उचित व्यक्तित्व और इच्छा शक्ति का भी होना परम आवश्यक होता है क्योंकि बिना इसके वह संस्था या तो छाया मात्र-सी लगेगी या नाम मात्र के लिये संस्था कही जा सकेगी।"

वारबर्टन के सिद्धान्तों का मूलाधार यही विचार है। वह चर्च को राज्य से सर्वथा भिन्न संस्था मानता है किन्तु उसका यह भी मत है कि चर्च राज्य को सहायता देता है क्योंकि बिना धार्मिक सहायता के सामाजिक लक्ष्य की पूर्ण पूर्ति हो सकना असम्भव है। यही कारण है कि राज्य और चर्च दोनों में एक प्रकार का समझौता है जो एक दूसरे को सामान्य हित की उपलब्धि के लिए सहायता देते रहते हैं। यह होते हुए भी दोनों एक-दूसरे से भिन्न होते हैं और उनकी पारस्परिक एकता संघात्मक होती है। किन्तु दोनों अपने अधिकारों को पारस्परिक सुविधाओं के अनुसार एक-दूसर को हस्तांतरित भी करते रहते हैं। यह हस्तांतरण की प्रक्रिया यह सिद्ध करती है कि राजकीय प्रभुत्व चर्च की अपेक्षा महान है और चर्च के अनुयाइयों को विधान परिषदों के साथ योग देना अनिवार्य है। इसी आधार पर टेस्ट ऐक्ट की उस उपयोगिता को भी समझा जा सकता है जिसके माध्यम से वे लोग जो चर्च को क्षति पहुँचा सकते हैं वे अपनी कुत्सित कृतियों से वंचित किये जा सकते हैं। इसके बदले में चर्च राज्य की अत्यधिक सेवा में तत्पर होने की चेष्टा से शक्ति त्याग देता है। उसका यह कर्तव्य इसलिए और भी अधिक अनिवार्य रूप धारण कर लेता है क्योंकि चर्च यह सेवा राज्य-संरक्षण के बदले में करता है। इस प्रकार

*देखिए, डाइसी (Dicey), लॉ एन्ड ओपीनियन (Law and Opinion), दूसरा संस्करण, पृष्ठ १६५

स्वतंत्र रूप में रहने के नाते, दोनों को जो हानि और आशंकाएँ घेरती हैं, उसकी सम्भावनाएँ भी कम हो जाती हैं। एक संघात्मक ऐक्य स्थापित होने पर सर्वशक्तिमान सत्ता के फलस्वरूप भयङ्कर समस्याएँ हाब्स जैसे चिन्तक को भी आतंकित कर देती हैं। क्षति की सम्भावना नष्ट हो जाती है। राज्य और चर्च दोनों को अपने आपसी समझौते के आधार पर कार्य करने का अवसर मिल जाता है।

इस सिद्धान्त की त्रुटियों को ढूँढ़ निकालना काफी सरल है। इस सिद्धान्त के अनुसार अनुबन्धन का अस्तित्व ही खण्डित हो जाता है। जैसा कि वारबर्टन ने स्वतः घोषित किया है, "अनुबन्धन सिद्धान्त जो वर्षों तक निरर्थक खोजबीन के परिणामस्वरूप स्थापित किये गये थे, उसके सम्राट् और जनता सम्बन्धी विचार केवल संग्रहालय की वस्तुएँ बनकर रह गई थीं। जिन आधारों पर वारबर्टन ने राज्य और चर्च के एकीकरण की बात उठाई थी वह भी निरर्थक थी। स्वतंत्र समाज सम्बन्धी उसकी कल्पनाएँ भी उसकी इस धारणा शक्ति की रक्षा करने में असफल थीं।" बात जो भी हो इस प्रकार आलोचनाओं से भी इस सिद्धान्त की वास्तविक त्रुटियाँ उभर कर सामने प्रस्तुत नहीं हो पातीं। वस्तुतः एक शताब्दी बाद ये सिद्धांत अँग्रेजी इतिहास में प्रवेश पा सके जब कि इसके पूर्व मेलविल (Melville) और बेलेरमें (Bellare) ने इसी सिद्धांत के आधार पर क्रांतिकारी परिणामों से पूरा लाभ उठा लिया था। इस विभाजन को प्रेस्बीटीरियन (Presbyterian) और जेसूइट्स (Jesuites) दोनों ही केवल इसलिए पूर्ण रूप से नहीं स्थापित कर पाये थे क्योंकि ये दोनों विचारधाराएँ विश्वस्त रूप में यह मानती थीं कि धार्मिक संस्थाएँ बुनियादी रूप में राज्य से श्रेष्ठतर होती हैं। यह होते हुए भी यह सिद्धांत यदि दोनों के अधिकारों और कर्त्तव्यों में (जो पहले निरपेक्ष और सम्पूर्ण रूप से स्वतंत्र माने जाते थे) संतुलन उत्पन्न कर सकता तो निश्चय ही यह आधुनिक स्वाधीनता का जनक होता है।

टॉलेरेशन एक्ट (Toleration Act) के पारित होने के समय तक यह सिद्धांत इसलिए बेकार रहा क्योंकि अँग्रेजी चर्च के मनोभाव (temper) उसके अनुकूल नहीं थे और लाडियन मत (Laudian views) की संरक्षता में

रहने से उनका रूप वास्तविक अर्थ में अत्यधिक धर्मपरायण (Theocratic) हो गया था। १६६२ के बाद चर्च ने प्रमुख दल के रूप में समझौते की प्रवृत्ति का परिचय दिया। ऐसा करने में चर्च ने अपनी शक्ति का गलत अनुमान लगाया। दूसरे शब्दों में चर्च ने राज्य के हाथों अपना आत्मसमर्पण इस प्रकार कर दिया कि जैसे दलगत सहयोग की अपेक्षा उस राज्य व्यवस्था में ही खप जाना उनका ध्येय रहा हो। यही कारण है कि उस काल के खंडनवादी (Erastians) चर्च के अस्तित्व को राज्य का नैतिक पुलिस (Moral Police) के सिवाय और कोई महत्व नहीं प्रदान करते थे। केन जैसे महात्मा संतों और साऊथ (South) जैसे उपदेशकों के स्थान पर वैभवलित एवम् फैशनेबुल कारनवालिस (Cornawalis) जैसे पादरियों की संख्या अधिक बढ़ गई। रैंनेले गार्डेन (Ranelegh Garden) से मिला हुआ लैम्बेथ पैलेस जैसी जगह ऐसे धर्म का केन्द्र बना जिसमें वैस्टन (Weston) जैसे आत्मवादी पादरियों की संख्या बढ़ने लगी। उस काल का चर्च वेसलियन विद्रोह (Wesleyan Revolt) के वास्तविक अर्थ और संदर्भ को समझ ही नहीं सका क्योंकि वह ऐसी दान और उदार मनोवृत्तियों का समर्थक हो गया था जिसके प्रणेता और संरक्षक हानामूर (Hannah Moor) जैसे व्यक्ति थे। चर्च की विद्वता धीरे-धीरे पतनोन्मुख होने लगी और उसकी प्रतिभा टूटने लगी थी। चर्च ने न्यू मैन के आने के पूर्व उस कमी की पूर्ति की जो आसानी से अपनी दान वृत्ति के आधार पर बड़े-बड़े सामंतों (Nobility) के छोटे पुत्रों को अपने क्षेत्र में प्रोत्साहन देने लगा था। इस प्रवृत्ति में केन (Ken) और लेक आफ चीचीस्टर (Chichister) के चर्च सम्बन्धी विचार किसी भी प्रकार कार्य नहीं कर रहे थे। परिणामस्वरूप चर्च मात्र शासन सत्ता की सूचिका का ही वस्तु बनकर रह गया था।

[२]

इस संघर्ष के महत्व की कोई भी उपेक्षा नहीं कर सकता। खंडनवादी दल के विरोधियों में चर्च के सम्बन्ध में इतनी गहरी भावना सम्बद्ध थी कि उसी से प्रेरित होकर वे धार्मिक स्वतंत्रता की बात बार-बार उठाते थे। वह यह भी अनुभव

करते थे कि ऐसा चर्च जिसकी संरक्षता, अनुशासन और वाद-विवाद में एक विदेशी संस्था कार्य कर रही है, वह ईमानदारी से क्राइस्ट (Christ) को अपने मत का नेता नहीं स्वीकार कर सकता। यदि चर्च को व्यक्तिगत निर्णय और राजनैतिक तत्कालीनता की क्षमता पर जीवित रखना है तो उसकी बहुत-सी रूढ़ियों का परित्याग करना पड़ेगा। यही वह स्थल है जहाँ टिन्डल (Tindel) और होडले (Hoadlay) के विरुद्ध भावनाएँ जड़ पकड़ रही थीं। क्योंकि उन्होंने अपने उद्देशों के माध्यम से चर्च को इस योग्य नहीं रहने दिया था कि उसमें अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहने की क्षमता रह पाती। यही कारण था कि वे राज्य की प्रमुख शक्ति के इतने विरुद्ध थे। वह कहीं न कहीं ऐसी सीमा-रेखा खींचना चाहते थे ताकि चर्च की स्वतंत्रता सुरक्षित रह सके। ऐसा इसलिये था क्योंकि यदि निरपेक्ष सत्ता (Absolute Authority) अपने आकस्मिक मत द्वारा चर्च पर अपनी इच्छा (Will) को लादने की चेष्टा करती है, तो उस स्थिति में उस चर्च के अनुयायी अपनी ईमानदारी को निभा सकने में पूर्णतया असमर्थ होंगे और उसका निर्वाह नहीं कर पायेंगे। एक धार्मिक संस्था के रूप में वह इस बात के सशक्त विरोधी थे कि धार्मिक संस्थाएँ अपने अधिकार और सम्मान के लिए राज्याश्रित होकर रहें। चर्च को जीवन शक्ति राज्य से नहीं मिलती, इसलिये राज्य का यह प्रयास कि वह अपने हस्तक्षेप द्वारा चर्च के उस सत्ता का अपहरण करे जो उसको अधिकार रूप में मिला है, गलत और त्रुटिपूर्ण है।

इसी प्रवृत्ति के कारण चर्च और राज्य की स्थापनाओं में कठिनाई उत्पन्न हो जाती थी, क्योंकि उपर्युक्त मत के आधार पर चर्च की निहित भावना यह थी कि उसके बनाये हुए नियमों और व्याख्याओं के अनुरूप राज्य का जीवन होना चाहिए। यह रिफार्मेशन (Reformation) के पूर्व तो सम्भव था किन्तु नानकन्फार्मिस्ट मतवादियों के विकास और विवेकवादी (Rationalism) दृष्टि के अनुसार चर्च के ये सुझाव कभी भी स्वीकार नहीं किये जा सकते थे। यदि चर्च राज्य के कार्यों में इतना अधिक हस्तक्षेप करने लगेगा तो चर्च को इस बात की शिकायत नहीं करनी चाहिए। राजनैतिक व्यक्ति अपनी प्रतिभा

के अनुरूप इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये चर्च को भी राज्य में मिला लेने के लिए प्रयत्न करते हैं। वस्तुतः स्वतन्त्रता का वास्तविक रहस्य मात्र स्वतत्रता के अतिरिक्त कुछ और नहीं हो सकता। चर्च ने इस स्वतन्त्रता को बिना किसी बलिदान के ही प्राप्त करना चाहा था। यही कारण है होडले (Hoadlay) जिसे केवल तर्क के आधार पर पराजित किया जा सकता था, इतना विजयी होकर इसका विरोध कर सकने में सफल हो सका। राज्य, स्वयम्, अपनी परिभाषा के आधार पर ही सम्पादित करने की क्षमता रखता है। इसलिये चर्च को इसका विरोध करने का कोई अधिकार नहीं रह जाता क्योंकि इस राजकीय क्षमता का सबसे बड़ा आधार राज्य प्रभुता द्वारा ही बन पाता है। अठारहवीं शताब्दी जैसी आत्म तुष्ट शताब्दी को इतने सङ्कटों का सामना न करना पड़ा होता यदि हाई चर्च सिद्धान्त (High Church Theory) को राजनैतिक अर्थ के साथ सम्बद्ध करने की चेष्टा न की गई होती।

फिर भी विरोधों का महत्व जैसे का तैसा ही है क्योंकि इसके बाद वाली शताब्दी में इन सब विरोधों का बहुत अच्छा परिणाम निकला। आक्सफोर्ड आन्दोलन को सतरहवीं शताब्दी के लाड और ऐएड्रयूज* (Laud and Andrews) के सिद्धान्तों को पुनः स्थापित करने का आन्दोलन ही कहा जा सकता है। वास्तव में इसका वास्तविक सम्बन्ध एटरबेरी (Atterbury; और (Law) से है। अपने पूर्वजों के समान यह भी धार्मिक स्वतंत्रता को खोजना चाहते थे और ठीक उन्हीं की तरह यह भी इस निर्णय पर पहुँच चुके थे कि राज्य से किसी भी प्रकार से सम्बन्धित होने का अर्थ चर्च को राजनैतिक स्थितियों की बलिवेदी पर बलिदान कर देना है। न्यूमैन (Newman) ने इस सम्बन्ध में यह लिखा है कि— "राज्य ने हमें नष्ट कर दिया" यह कथन उसके समय के पहले वाले युग में लिखा जाना चाहिए था। आक्सफोर्ड आन्दोलन (Oxford Movement) ने ठीक अपने पूर्वजों की भाँति अपने तर्क और विचार को बालू पर दीवाल बनाने

*देखिये मेरी पुस्तक प्राबलेम आफ सावरेन्टी (Problem of Sovereignty), अध्याय ३।

की चेष्टा की थी। यही कारण है कि जब लार्ड बोहम (Lord Bougham) ने राज सभा (House of Lords) में यह कहा कि चर्च को निरपेक्ष और सम्पर्क रूप से पूर्ण अधिकार देने का अर्थ यह होगा कि इससे बड़े भयंकर नतीजे निकलेंगे, क्योंकि यह सिद्धान्त पार्लियामेंट की प्रमुख सत्ता को नीचे स्तर पर गिरा देगा। यह व्याख्या यद्यपि स्वयम् ऐक्ट आफ सबमिशन (Act of Submission) में शामिल हैं, फिर भी यह विचार बिल्कुल वेक और होडले (Wake and Hoadlay) के विचारों से सर्वथा मिलते हैं। आर्क बिशप आफ केन्टरबरी ने लार्डस् सभा में स्पष्ट रूप में यह कहा था कि विचारवान को की नितान्त सत्ता के पक्ष और उसकी आवश्यकता को अनुभव करना चाहिए क्योंकि सम्पूर्ण शक्तिसम्पन्न स्थिति में ही चर्च सशक्त और कार्यशील रूप में वह कर सकता है जो कि वास्तव में उसे करना चाहिए।* लार्ड हाल्डेन† (Lord Haldane) ने इसका विरोध करते हुए कहा था—"सम्राट का शासन अर्थात् पार्लियामेन्ट का शासन इतने विस्तृत परिवेश का है कि उसके अन्तर्गत उसको चर्च पर भी शासन करने का, उसके नियमों को अनुशासित करने का अधिकार है। यह दोनों शक्तियाँ न तो भिन्न की जा सकती हैं और न इनमें कोई भिन्नता स्थापित की जा सकती है। इस स्थिति के नाते ही राज्य सत्ता चर्च आव इंगलैंड (Church of England) को धार्मिक सत्ता देती रही है।" आज भी प्राचीन स्थिति के अनुरूप राज्य की प्रकृति एवम् प्रभुता के सम्बन्ध में इसी प्रकार के अनिश्चित सिद्धान्त फैले हुए हैं। "एक स्वतन्त्र राज्य में स्वतंत्र चर्च" की स्थापना उस काल की भाँति आज भी हमारा आदर्श है, किन्तु इसकी स्थापना के साधन और माध्यम आज भी हम ढूँढ़ते हैं ताकि वह आदर्श स्थिति स्थापित की जा सके।

---

*पार्लियामेन्ट्री डिबेट। पाँचवाँ क्रमाङ्क। खंड ३४, पृष्ठ ६६२ (३ जून १६१६)

†पार्लियामेन्ट्री डिबेट। पाँचवाँ क्रमांक। खड ३४, पृष्ठ १००२। यह उद्धरण पूर्णतया लार्ड हाल्डेन के मत को व्यक्त करता है।

अध्याय ४

विराम का युग

(१)

जार्ज प्रथम के राजगद्दी पर बैठने के बाद का युग अंग्रेजी राजनीति की अद्वितीय शान्ति का परिचायक है। यह स्थिति १७४२ तक अर्थात् वालपोल (Walpole) के निष्कासन के समय तक स्थापित रही। किसी भी प्रकार के महत्वपूर्ण प्रश्न पर इस युग में विवाद नहीं हुआ और न कोई ऐसी सिद्धान्त-वादी समस्या ही प्रस्तुत हुई जो उन्हें इसके लिए बाध्य करती। यदि इस काल में जेकोबाइट्स (Jacobites) भी राज्य में सम्मिलित होने के विरुद्ध होते हुए भी पृष्ठभूमि में ही पड़े रहे, तो उसका भी कारण था। १७१५ में उनके प्रयासों की विफलता ने यह सिद्ध कर दिया था कि अंग्रेजी जनमत के समक्ष वे बहुत दुर्बल एवम् निःशक्ति हैं। इस शान्ति का यह अर्थ कदापि नहीं है कि नये वंशज के शासक बड़े लोकप्रिय थे। इसका यह भी कारण नहीं है जैसा कि स्काट (Scott) ने बड़ी ही अमर शैली में लिखा है—कि यह एक हारी हुई बाजी की स्थिति की शान्ति थी। जार्ज सम्राटों की प्रथम श्रेणी बोझ-सी लगती थी और ये विदेशी और दुर्बल आत्मा माने जाते थे। किन्तु वे प्रोटेस्टेन्ट (Protestants) थे और जार्ज तृतीय (George III) के काल तक की सुचारु रूप से व्यवस्था कर सकते थे, इसलिये उनके ये दोनों गुण ही प्रधान तत्व थे। इन स्थितियों के परिणामस्वरूप वास्तविक अर्थ में जैसा विरोध होना चाहिए था, वैसा नहीं हो सका क्योंकि उस समय जो बात प्रधान रूप से ध्यान देने योग्य थी वह यह थी कि वे कौन-से व्यक्तित्व हैं जो वास्तव में सत्ता को भोगते हैं। वालपोल (Walpole) के प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व ने इस समस्या का निराकरण प्रस्तुत कर दिया

था और उसने अपने काल में राजनैतिक संघर्ष को इस प्रकार सीमाओं में बाँध दिया था कि वे पीढ़ियों तक उन सीमाओं को तोड़ कर बाहर नहीं निकल पाये।

यों तो यह बड़ा ही निष्प्रभ काल रहा है किन्तु इसके साथ-साथ यह एक अनभिज्ञता का भी युग रहा है, क्योंकि यह पतनशील काल नहीं था। कृषि और व्यवसाय दोनों की काफी वृद्धि हुई थी। नये नगरों के विकास को देखते हुए हमें यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि निकट भविष्य में उद्योग क्रान्ति (Industrial Revolution) के प्रभाव वातावरण में उभर रहे हैं। एक ईश्वरवादी (Deist) वादविवाद का अब भी चलना यह सिद्ध करता था कि इस शान्तिपूर्ण वातावरण के तह में कोई अभिजात्य भावना पक रही है। टिन्डेल (Tindale), ऊल्सन (Woolson) और चब (Chubb) ने धार्मिक विश्वासों की जड़ों को हिला दिया था। शेफटस्बरी (Shaftesbury) के हेलन-वादी विचारों ने स्काटलैंड के आफक्लारंग (Aufklarung) की भावना को ही नहीं जाग्रत किया वरन् उस से यह प्रमाणित कर दिया था कि क्रिश्चियन आदर्श ऐसे नहीं हैं जिनका प्रतिरोध नहीं किया जा सकता। किन्तु जहाँ तक साहित्य का सम्बन्ध है वह केवल पोप (Pope) की कृतियों तक ही सीमित हैं। उसकी सुचारु एवम् स्वच्छ कविताएँ जार्ज युग की शान्तिपूर्ण स्थिति का पूर्ण परिचय देती हैं। डिफो (Defoc) और स्विफ्ट (Swift) दोनों की कृतियाँ भी इसी युग में लिखी गई थीं और स्विफ्ट आयरलैंड में केवल एक चूहे की भाँति मरने के लिए वापस चला गया था। बिशप बर्कले (Bishop Berkley) ही एक ऐसा व्यक्ति था जो इस युग की पतनोन्मुखता के प्रति जागरूक था किन्तु उसका 'एसे टुवर्ड्स प्रेजेन्टिङ्ग दि रूईन आफ ग्रेट ब्रिटेन (Essay Towards Presenting the Ruin of England) (१७२१) शीर्षक निबन्ध उस समय की उस कल्पनाशक्ति का परिचय देता है जो साऊथ सी बबल (South Sea Bubble) के आन्दोलन रूप में उस युग के राजनैतिक विचारों की अपेक्षा उदात्त नैतिक प्रकृति का पूर्ण परिचय प्रदान करता है। यह सत्य है कि इस पीढ़ी में कोई भी ऐसा नहीं था जो मातृत्व के लिए पेन्शन और कुँआरों पर टैक्स लगाने की जैसी बातें गम्भीरतापूर्वक सोच सकता। जिस युग को

वालपोल (Walpole) अनुशासित कर रहा था वह हर प्रकार की घृणा-भर्त्सना सहने के बावजूद भी मैन्डेविल जैसे सनकी मिथ्या तत्ववादी का युग (Cynical Sophistries) था जो बहुत ही लोकप्रिय माना जाता था। वास्तव में यह मंत्री का व्यक्ति था जो उस युग में प्रतिबिम्बित हो रहा था। वालपोल (Walpole) ऐसा व्यक्ति था जो अच्छा संभाषण तो दे लेता था किन्तु उग्र वक्ता नहीं था। वह बहुत ही सशक्त शासक था किन्तु वह कल्याण की अपेक्षा सत्ता का लोलुप था। वह मनुष्य के साथ चूहे जैसे बर्ताव करता था और अपनी प्रतिभा के आधार पर उन्हें भ्रष्ट करने का साहस रखता था। वालपोल न तो कोई ऐसा व्यक्ति ही था न और उस प्रकार की भावना रखता था जो किसी बड़ी जटिल समस्या को उभार कर समस्याओं के विवाद को झेल सकता। उसे सम्राट द्वारा अत्यधिक सम्मानित होने से ही पूर्ण तुष्टि मिल गई थी। उसे अपने विरोधियों को पदच्युत करके दण्ड देने में ही सुख मिलता था। एक-एक करके समस्त तरुण एवं प्रतिभावान व्यक्ति जैसे कार्टरेट (Cartret), पुल्टेनी (Pultency) चेस्टरफील्ड (Chesterfield), पिट (Pitt) उसके घोर विरोधी हो गये थे। वह मात्र भ्रष्टाचार के आधार पर इतनी नीतिपूर्ण ढंग से शासन करते हुए अपना पद स्थापित किये हुए था जितना कि वह अपनी सैनिक धारणाओं के अनुरूप संभव रूप में कर सकने की क्षमता रखता था। उस काल के विरोधी दल की नीति भी उस व्याप्त भ्रष्टाचार को आपस में बाँट खाने के लिए थी, और यह सिद्धान्त मानती थी कि किसी नष्टप्राय वस्तु को बाँट खाना, रखकर सड़ाने से कहीं अधिक उपयोगी है। जब इस प्रकार की दल नीति का अनुसरण हो रहा था तो यह स्वाभाविक था कि ऐसी स्थिति में सिवा व्यक्तिगत द्वेषों और दोषों के ऊपर आधारित होने के अतिरिक्त किसी नीति पर विरोध आधारित कर सकने की संभावना नहीं हो सकती थी। इस नीति का परिणाम यह था कि वालपोल (Walpole) की समस्त राजनीति युद्ध का आड़ लेकर वस्तुस्थितियों से उसी प्रकार बचना चाहती थी जैसे कोई दंभी जहाज का कप्तान लड़ाई के आतंकजन्य भय के कारण किसी को भी अपमानित करने का बहाना ढूँढ़ता रहता है। १७२६ से लेकर १७३५ तक इस दल का पथ-प्रदर्शक

बोलिंगब्रोक (Bolingbroke) था। कुछ दिनों बाद उसकी पुल्टेनी (Pulteney) से खटपट हो गई। उसके बाद वह फ्रांस में एक विरक्त जीवन व्यतीत करने लगा। अपने नेतृत्व काल में उसने एक राजनैतिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था जो कि उसके बौद्धिक दीवालियेपन का बड़ा अच्छा प्रमाण है।

बोलिंगब्रोक (Bolingbroke) की बातों को समझने के लिए उसके विचित्र चरित्र को समझना और जानना नितान्त आवश्यक है। बहुत ही कम उमर में एन (Anne) के शासन काल में उसने बहुत बड़े पद को ग्रहण कर लिया था। उसका यह प्रतिभापूर्ण काल उसी शक्तिशाली गति का परिचायक है जिसके अनुसार उसने नितान्त एकदलीय शासन व्यवस्था को स्थापित करके समस्त विरोधी विचारों को शासन से निकाल बाहर करने की नीति अपनाई थी। किन्तु उसने इस नीति को कार्यान्वित करने में बिना किसी दृढ़ संकल्प और प्रशंसनीय योग्यता के अपनी सारी शक्ति लगा देना चाहा था। हैनोवेरियन (Hanoverians) परिवार के सिंहासनारूढ़ होते ही इसीलिये वह फ्राँस भाग गया और वहाँ उसे उसकी यातना भोगनी पड़ी। उसके बाद वालपोल (Walpole) अपनी योग्यता और ख्याति के अनुसार उसका उत्तराधिकारी बना। बेहद रिश्वत देने एवम् सम्राट के आसपास की महिलाओं को नजर देने के बाद सेन्ट जॉन निर्वासन दंड से मुक्त होकर इंगलैंड आया। किन्तु इस बार वह राजनैतिक क्षेत्र में कुछ नहीं कर सका। अधिकार और पदच्युत होने के नाते उसमें विशेष मानसिक उथल-पुथल हो रहा था। मजबूर होकर उसे टोरी (Tories) और रुष्ट ह्विग (Whigs) दलों से समझौता करके अपनी एक निश्चित जगह बनाने के लिए मजबूर होना पड़ा था। इस समझौते के परिणाम बहुत देर में प्रतिफलित हुए, इसलिये बोलिंगब्रोक उससे कोई लाभ नहीं उठा सका। किन्तु इस समझौते के कारण ही उसने टोरी दल से जैकोबाइट (Jacobites) के अनुयाइयों का निष्कासन करा के बहुत बड़ी सेवा का कार्य किया था। उसके द्वारा संस्थापित क्राफ्ट्समैन (Craftsman) प्रथम राजनैतिक दल का वह मुखपत्र था, जिसमें राजनैतिक विवादों को मर्यादित

रूप देने का सर्वप्रथम प्रयास किया गया था। आज उसका अधिकांश समाप्त हो चुका है। अपने काल में भी उसको सफलता इसलिये नहीं मिली थी क्योंकि उसने समसामयिक सफलताओंऔर टिअशियों में वर्तमान स्थितियों का विवेचन सफलता-पूर्वक किया था। उस पक्ष में उसकी व्यक्तिगत धारणाएँ, सीमाएँ बहुत थीं। इस-लिए आज के संदर्भ में उसका कोई भी महत्वपूर्ण अर्थ नहीं रह गया है। यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि उसके विचार और उसकी कल्पनाएँ डीफो (Defoe) द्वारा संचालित रिव्यू (Review) और लेसली (Leslie) द्वारा संपादित रिहर्सल (Rehearsal) से अत्यधिक अनुप्राणित थे; फिर भी पादरी दल की नीति और नेतृत्व के कारण उसमें कुछ ऐसे अद्भुत तत्व थे जिनके पूर्णतः सफल रूप में प्रस्तुत हो सकने में उसे विशेष सहायता मिली। उसके बाद की पीढ़ियों द्वारा संचा-लित मुख पत्रों की परम्परा का सम्बन्ध इस पत्र से निश्चय ही स्थापित होता है।

आज के युग में बोलिंगब्रोक (Bolingbroke) की ख्याति राजदर्शन के चिंतक के रूप में नहीं मानी जा सकती। लार्ड मोरले (Morley) के अनुसार एक तुच्छ प्रकार का आडम्बरी व्यक्ति था। यह समझ में नहीं आता कि लोग उसकी साधारण अस्वीकृतियों को भी गलत ढंग से दृढ़ विचारों से क्यो सम्बद्ध करते हैं। इसमें कुछ कारण तो उसके आकर्षक व्यक्तित्व का भी है जिससे पोप (Pope) और वाल्टेयर (Voltair) जैसे व्यक्ति भी प्रभावित हो गये थे और चैथम जैसे चिंतक भी और डिजरैले जैसे राजनीतिज्ञ (politicians) भी जिसके विचारों से इतने प्रभावित हो गये थे कि वे भी उन विचारों का ठीक-ठीक मूल्यांकन करने में असमर्थ थे। इसमें सन्देह नहीं कि सरल और सादी शैली में वह बड़ी कुशलता के साथ लिखता था और उसके लेख अट्ठारहवीं शताब्दी की शैल-रुचि का पूर्ण प्रतिनिधित्व भी करते हैं। लिखने में विशेषणों का प्रयोग वह बहुत रुचि और जागरूकता के साथ करता है। किंतु यह सब होते हुए भी उसकी बोली युग की परम्परा के अनुसार पौराणिक (Classical) संदर्भों से इतनी भरी पड़ी है कि उसे अट्ठारहवीं शताब्दी के इस अभिशाप से सर्वथा संयुक्त कृति के रूप में ही स्वीकार करना पड़ता है। उसने अपने निबंधों में व्यापक सत्य का अन्वेषण नहीं किया है और न ही उसने ईमानदारी (sincerity) से सम्बंधित लांछनों को स्वी-

कार किया है। उसमें तीव्र गुटबन्दी उत्साह के अतिरिक्त कोई उत्साह नहीं है। वह वालपोल (Walpole) से घृणा करता था और इसीलिए उसकी समस्त राजनैतिक कृतियों की तह में उसी विद्वेष को व्यापक रूप में व्यक्त करने का प्रयास मिलता है। दि डिसर्टेशन ऑन पार्टीज (१७३४) (The Dissertation on Parties) और आइडिया आफ ए पेट्रियाट किंग (१७३८) (Idea of a Patriot King) जैसे निबन्ध हमको भ्रमित कर सकते हैं, क्योंकि यदि उसके आधार पर उनकी कृतियों को निष्पक्ष द्रष्टा के रूप में देखने का प्रयास किया जायगा तो निश्चय ही ऐसे भ्रम होंगे किंतु यदि इन दोनों निबंधों के साथ उसके 'लेटर टू सर वि० विंडम १७१७ (Letter to Sir. V Wyndham) के साथ सम्बद्ध करके देखा जायगा (जो कि उसके मरने के बाद प्रकाश में आया और जिसमें उसके घातक अतिवादी आनन्दपूर्ण धारणाओं का आभास मिलता है) तो यह पता चल जायगा कि उसका तथाकथित ईमानदारी (sincerity) का दावा कितना गलत और निराधार था। उस संदर्भ में उसके प्रस्तुत दोनों लेख सिवा उसका महत्वाकांक्षा से अभिभूत, घृणास्पद मनोवृत्तियों से पूर्ण, कृतियों के और कुछ नहीं लगेगी।

इस क्षति की सारी मानसिक स्थितियों की पृष्ठभूमि में निश्चय ही कोई तथ्य रहा होगा। उस तथ्य का पता हमें उसकी कृति लेटर्स आन दि स्टडी आफ हिस्ट्री (१७३५) (Letters on the Study of History (1735) में स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। अनुभूति सत्य की कसौटी पर खरी होनी चाहिये क्योंकि इतिहास एक प्रकार का ऐसा दर्शनशास्त्र है जो प्रमाणों पर आधारित होता है। किन्तु बोलिंगब्रूक (Bolingbroke) की कृतियाँ इस मत का खण्डन करती हैं। उसका इतिहास मनमाने ढंग से प्रतिवाद करने के उद्देश्य से लिखा गया है। वह केवल ऐसी घटनाओं को स्वीकार करता है जो उसकी निर्वाचित धारणाओं को व्यक्त करने में सहायक होती हैं। वह इस सम्बन्ध में मानता था कि अतीत किसी न किसी रूप में वर्तमान को प्रभावित करता है। वह उस दृष्टि की भी निन्दा और भर्त्सना करता है, जो वर्तमान की सीमाओं से ऊपर उठकर, किसी भी ऐतिहासिक घटना को, उसके विस्तृत संदर्भ में

देख सकने में असमर्थ होती है। किन्तु इन सब मान्यताओं के बावजूद जो इतिहास उसने लिखा है उससे ये धारणाएँ और सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं होते। इसके विपरीत वह कृति ऐसी मनोवृत्ति का परिचय देती है जिसमें घटनाओं को एक निश्चित गन्तव्य को सिद्ध करने के लिए कृत्रिम रूप में चुना गया है। उसके लेखन में देश, काल की सीमाओं की कोई मर्यादा नहीं स्वीकार की गई है। क्रान्ति (Revolution) के कारणों को ढूँढ़ने के लिए वह जेम्स प्रथम (James I) के शासन काल तक का अध्ययन और विवेचन तो कर सकता है, किन्तु उसकी दृष्टि में पकड़ नहीं मिलती। वह रिफार्मेशन (Reformation) के आन्दोलन को पादरियो के संचित कोष और संग्रहीत वस्तुओ का अपहरण करने वाली राजसत्ता की लालच से द्रवित रूप में चित्रित करने का प्रयास करता है। केवल वे घटनाएँ ही उसे प्रभावित करती हैं जो उसके व्यथित जीवन और दृष्टि के अनुकूल हैं। वह षड़यंत्र, सहसा घटित हो जाने वाली अरुचि, अफवाह और झूठे प्रकार की किंवदतियों को महान ऐतिहासिक घटनाओं एवम् परिवर्तनों का कारण मानता है। यही नहीं जब वह स्कैलिगर (Scaliger) और पेटाविम जैसे इतिहासकारों की उपलब्धियों को घृणास्पद दृष्टि से चित्रित करता है, तो उसमें उसकी उस ज्ञानाभाव का पता चलता है, जिसके अभाव में कोई भी सिद्धान्त अपना व्यापक महत्व स्थापित करने में असफल सिद्ध होता है।

हाँ, उसके पास दृष्टि की स्पष्टता अवश्य थी। वह विशेषाधिकार (Prerogative) के महानतम नारों से प्रभावित भी नहीं हो सका था। वह ईश्वरप्रदत्त अधिकार (Divine Right Theory) के सिद्धान्त को इतना हेय समझता था कि उसका खण्डन करने में भी उसे रुचि नहीं थी। उसके मतानुसार किसी भी सम्राट को जो वस्तु महानता प्रदान करती है वह उसकी अपनी सत्ता को प्रयोग कर सकने की सामर्थ्य है। चर्च के सम्बन्ध में भी उसका यही मत है। ख्यातभाव एक ईश्वरवादी (Deist) के रूप में यदि देखा जाय तो बोलिंगब्रूक का विश्वास शिष्यगत परम्परा के उत्तराधिकार (Apostalic Succession) में नहीं था। वह प्रत्येक शासन सत्ता का लक्ष्य स्वाधीनता

(Liberty) स्थापित करना मानता है। इसीलिए उस स्वाधीनता के प्रति उसका मोह भी प्रकट है। वह बार-बार बड़ी चेतावनी के शब्दों में स्वाधीनता (Liberty) के चारों ओर व्याप्त खतरों के प्रति जागरूक कराने की चेष्टा करता है। वह देश-प्रेम का चरम लक्ष्य भी स्वाधीनता की रक्षा करना ही मानता है। इन सब धारणाओं के होते हुए उसने न तो कहीं यह बताने का प्रयास किया है कि स्वाधीनता कहते किसे हैं और न उन साधनों का उल्लेख किया है जिससे वह सुरक्षित की जा सकती है। उसकी समस्त कल्पनाशक्ति सामाजिक समस्याओं से ही ओत-प्रोत थी। इसीलिये जो विशेष बात उसने स्थापित की वह ब्रिटिश विधान (British Constitution) की वह अन्तरभूत धारणा है जिसमें शक्ति संतुलन (Balance of Power) और पारस्परिक स्वतन्त्रता के पक्ष आज भी वर्तमान हैं। किन्तु उसके कृतियों से यह नहीं पता चलता कि यह शक्तियाँ क्या हैं, और इन शक्तियों की स्वाधीनता कैसे सुरक्षित रखी जा सकती है। उसने केवल यही स्थापित किया है कि योरप की रक्षा इसी में है कि वह कभी फ्रांस (France) और कभी आस्ट्रिया (Austria) को एक-दूसरे के प्रति, उनकी महत्वाकांक्षाओं के अनुकूल संघर्षशील बनाये रहे। उनकी सन्तुलन शक्ति इसी प्रमाण पर आधारित है। किन्तु वह यह नहीं समझ पाया था कि ब्रिटिश संविधान (British Constitution) ने इस सिद्धान्त का बहुत पहले ही तिरस्कार कर दिया था। वह अपने निबन्धों एवं कृतियों में यह बताने की चेष्टा करता है कि स्थायी सेना और सत-साला पार्लियामेन्ट से क्या-क्या हानि पहुँचती है। उसने यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि दलगत नीति केवल सत्ता ग्रहण करके बड़े बड़े पदों को भोगने एवम् संरक्षण कर सकने की इच्छा से ही चलती है। अपने समय के कुछ आलोचकों की निन्दा करते हुए उसने भ्रष्टाचार का खण्डन इतने सशक्त ढङ्ग से इसलिये किया है, ताकि उसके विरोधी भी उसकी ईमानदारी और अद्वितीय बौद्धिक चेतना को बिना स्वीकार किये नहीं रह सकते। उसके मतानुसार उस काल की विभिन्न पार्टियाँ केवल स्वार्थ के आधार पर ही बनी थीं। उसने इसी प्रसंग में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि क्रान्ति के सिद्धान्त (Principles of the

Revolution) नष्ट प्राय हो चुके हैं और अब उनका कोई महत्व नहीं है। वह चुनाव सम्बन्धी व्याप्त भ्रष्टाचार को रोकने के लिए कठोर से कठोर दंड देने के पक्ष में था। वह सड़े-गले मतदाताओं से मत देने का अधिकार छीन लेना चाहता था। साथ ही वह जीर्ण-शीर्ण स्थायी प्रशासन को समाप्त करके उसके स्थान पर पार्लियामेंट द्वारा नियुक्त सत्ता को प्रतिष्ठित करने का हामी था। प्रेस को वह पूर्ण स्वतंत्र प्रदान करने के पक्ष में था। उपनिवेशों के सम्बन्ध में वह और अधिक उदार नीति को लागू करना चाहता था। यही उसकी उदार दृष्टि का सबसे बड़ा प्रभाव था। उसके इन सब विचारों का वास्तविक मन्तव्य संरक्षण का अधिकार अपने हाथ में लेना था। समुदाय के अधिकांश को मत सम्बन्धी भ्रष्टाचार का लांछन लगाकर उनको अनुशासन करने का अधिकार भी वह स्वयम् लेना चाहता था। वह प्रेस की स्वतंत्रता का समर्थन भी इसलिये करता था क्योंकि वह वालपोल की कटु आलोचना खुले रूप में करना चाहता था। उसका वास्तविक उद्देश्य वालपोल के खडन में सभी स्वतंत्र साधनों का प्रयोग करता था। वालपोल विधि कर सकने के लिए ही प्रेस की स्वतंत्रता का समर्थक था और ऐसा इसलिए करता था कि ताकि पिछले देश विद्रोह के समान वालपोल (Walpole) की विधि करने में उसके ऊपर कोई नया अभियोग द्रोह और विद्रोह के रूप में न आरोपित किया जा सके।

उसका मूल्यांकन एक दूसरे प्रकार से भी किया जा सकता है। उसकी 'आइडिया आफ ए पेट्रियाट किंग' (Idea of A Patriot King) नामक पुस्तक में उन समस्त त्रुटियों को निराकरण करने के लिए उसके बताये हुए उल्लिखित साधन किये गये हैं। यह पुस्तक जब प्रकाश में आई तो वह साठ साल की आयु का हो चुका था। पिछले पैंतालिस वर्ष से उसे राजनैतिक क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने का अनुभव भी प्राप्त हो चुका था। पुस्तक को हम उसके इन्हीं वर्षों की अनुभव गाथा के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। उसका यह दृढ़ विश्वास था कि संविधान एक प्रकार का सौदा था। वह शर्तनामा है जिसके आधार पर सम्राट और जनता के बीच का आपसी समझौता सम्पन्न होता है। वह उस युक्ति के माध्यम से सम्राट के अधिकार को पुनः स्थापित करना चाहता था। उसका सारा

सिद्धान्तवाद सम्राट के व्यक्तित्व की क्षमता पर ही आधारित है। किन्तु वह यह भी मानता है कि सम्राट की कोई भी सत्ता जनता की स्वाधीनता से असम्प्रक्त नहीं होनी चाहिए। क्योंकि यदि इस प्रतिबन्धन का प्रयोग किया जायगा तो सम्राट अपने गुणों का दुरुपयोग नहीं कर पायेगा। जनशक्ति बुरे से बुरे सम्राट की बुद्धित्सर्त मनोवृत्तियों को नियन्त्रित करने में उपयोगी सिद्ध होगी। इसके लिए वह एक देश भक्त सम्राट (Patriot King) की कल्पना करता है जो भ्रष्टाचार (Corruption) का विनाश करके स्वाधीनता (Liberty) की भावना को जाग्रत कर सके। उसके मतानुसार जब ऐसी सशक्त शासन सत्ता एक निश्चित शासन विधि की प्रतिरूप होगी तो सम्राट् भी अपने पुराने एवम् धूर्त मंत्रियों को हटाकर ऐसे मंत्री नियुक्त कर सकेगा जो सच्चे सेवक होने के साथ योग्य और बुद्धिमान भी होंगे। ऐसा सम्राट राजनैतिक दलों पर आश्रित न होकर राज्य पर आश्रित होगा। उसमें अपनी एक योजना के अनुसार योग्य मंत्रियों को एकत्र एवं संगठित कर सकने की क्षमता भी होगी। जनता की शिकायतों का उत्तर दिया जा सकेगा और कुकृत्य करने वाले अपराधी को दण्ड भी मिल सकेगा। व्यवसाय बिना किसी गतिरोध के पूर्ण रूप से गतिशील हो सकेगा और देश की नौका शक्ति (Navy Power) को उचित प्रोत्साहन मिल पायेगा। सम्राट का आचरण भी तब स्वाभिमानपूर्ण और सुन्दर हो सकेगा और उसका प्रभाव उसके राजसत्व की नीति न होकर जनता के स्नेह के कारण हो सकेगा। इस सम्बन्ध में आगे चलकर बोलिंगब्रोक (Bolingbroke) ने कहा है कि—'यह सदाशयता हर दिशा में शान्ति और समृद्धि विकसित कर सकेगा।' इस विचार के अनुसार उसने बड़ी दूरदर्शिता के साथ इस बात की आशा की है कि आने वाला युग अपने अतीत को बड़े स्नेह की दृष्टि से देखते हुए इस बात का प्रयास करेगा कि संसार के सामने ग्रेट ब्रिटेन (Great Britain) का सम्राट देश का सर्वशक्तिमान व्यक्तित्व होने के साथ-साथ देशभक्त नायक के रूप में प्रतिष्ठित होकर राष्ट्र का गौरव बढ़ाये।

बोलिंगब्रोक (Bolingbroke) ने स्वयम् इस व्याख्या के साथ यह स्वीकार किया है कि उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न सम्राट एक प्रकार की ऐसी

चमत्कारिक शक्ति का परिचायक होगा कि उसकी कोई भी आलोचना या व्याख्या करना संभव नहीं हो सकेगा। इस विलक्षण कल्पना के साथ-साथ प्लेटो (Plato) द्वारा निर्धारित दार्शनिक सम्राट की कल्पना पर व्यंग्य किया जा सकता है किन्तु यह व्यग्यं भी क्षम्य है। यहाँ केवल इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि प्रस्तुत कल्पना को प्रस्तुत करते समय जिस सम्राट के व्यक्तित्व की कल्पना बोलिंगब्रोक के दिमाग में थी वह फ्रेडरिक प्रिन्स आफ वेल्स था। वास्तव में फ्रेडरिक एक दुर्बल पीढ़ी का प्रतिनिधि था किन्तु बोलिंगब्रोक (Bolingbroke) उससे इतना अधिक प्रभावित था कि वह उसे समस्त मानवता में सबसे महान् एवं वैभवशाली व्यक्ति मानता था। यह बोलिंगब्रोक का दुर्भाग्य था कि उसने सम्राट सम्बन्धी यह यशगान उस समय गाया जबकि सम्राट से सम्बन्धित भक्ति भावनाएँ नित्य प्रति क्षीण होती जा रही थीं। उसके कृतित्व के प्रत्येक पृष्ठ पर उसके व्यक्तिगत द्वेषों का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है। उसकी कृति निश्चय ही दलगत कार्य-क्रम की ऐसी स्पष्ट व्याख्या है जिसके गंभीर अर्थ लगाये जा सकते हैं। वे मंत्री जिनको कि वह दंडनीय मानता था, वे मंत्री जिन्हें वह योग्य सेवक के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहता था उन सबके प्रति उसने एक दलगत दृष्टि से आलोचनाएँ और प्रशंसाएँ की थीं। बस उसका समस्त मतवाद दलगत मंच का प्रतीक था न कि किसी उच्च दर्शन-शास्त्र का। जैसे भ्रष्टाचार की आलोचना एक चरित्रहीन जुआड़ी के मुख से शोभा नहीं देती उसी प्रकार बोलिंगब्रोक की आलोचना भी उसके मुख से शोभा नहीं देती।। इस मत की पुष्टि इससे भी होती है क्योंकि उसने राजनीति के साथ वित्त(Financial) के सम्बन्ध को बहुत खतरनाक घोषित किया है। इसका कारण यह था कि टोरी दल में सिवा बर्नर्ड (Barnard) के जो कि वालपोल (Walpole) से प्रभावित था कोई भी अन्य व्यक्ति वालपोल (Walpole) की वित्त नीति को ठीक-ठीक नहीं समझता था। चूँकि वह योजना वालपोल (Walpole) की योजना थी इसलिए उसके पूर्ण शैतानियत एवं धूर्तता भी होना स्वाभाविक था। केवल जमींदारों को पुनः सशक्त बनाने का अर्थ था राजनीति में सरलता और सुगमता को स्थापित करना। कोई भी सरलता से यह

समझ सकता है कि देश के ये जमींदार और उनका चर्च एवं सम्राट के प्रति उत्साह का क्या अर्थ है। साथ ही उससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि बोलिंगब्रोक ने क्यों उसे सत्ता के खतरे पर विशेष बल दिया है जिनकी शक्ति स्वतः धीरे-धीरे विघटित होती जा रही थी। वस्तुतः बोलिंगब्रोक ने यह पुस्तिका फ्रेडरिक के पुत्र को इन दिशाओं में शिक्षित करने की दृष्टि से लिखी थी। यही कारण था जब कि जार्ज तृतीय राजगद्दी पर बैठा तो उसने अपने गुरु की समस्त कल्पनाओं को अधिक संभव रूप में साकार करने का प्रयास किया किन्तु यह सब होते हुए ए० एल० स्मिथ (A. L. Smith) के शब्दों में बोलिंगब्रोक (Bolingbroke) को उन आदर्शों के अनुकूल देखना जिन्हें जार्ज तृतीय ने स्थापित करने की चेष्टा की थी, सर्वथा अन्याय होगा। फिर भी बोलिंगब्रोक के विचार और जार्ज तृतीय के कार्य का पारस्परिक सम्बन्ध इसलिये आवश्यक है क्योंकि वे दोनों एक दूसरे के अर्थ स्पष्ट करने में सहायक होते हैं। चैथम (Chatham) भी इस शब्दजाल में और राष्ट्रीय दल के चमत्कार में फँस गया था। यही नहीं देशभक्त सम्राट् (Patriot King) की अकथ प्रशंसा और उसके चमत्कार का यशोगान इतना हुआ था कि डिज़रैली (Disraeli) को भी यह अनुभव नहीं हो सका कि इंगलैंड को किसी भी प्रकार की सम्मिलित (Coalition) शासनसत्ता प्रिय नहीं है। चैथम (Chatham) एक प्रकार का आवारा प्रतिभावान था जिसे दलगत शासन व्यवस्था की मूलभूत सहयोग नीति के प्रति कोई. भी अनुभूति नहीं थी। इसीलिये प्रस्तुत स्थिति में डिज़रैली का मूल्यांकन करते समय डिज़रैली (Disraeli) द्वारा पद ग्रहण के पूर्व और उसके बाद के आचरण और विचारों के बीच व्याप्त भिन्नता को समझ लेना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि बोलिंगब्रोक से प्रभावित होकर उसने जो आचरण किये उनका बड़ा घातक परिणाम हुआ। इस विषय पर उसने अपने बाद के विचारों में स्वतः अपनी अल्पज्ञता पर खीझ प्रकट की है। वह इन विचारों के चमत्कार में इतना फँस गया था कि वह प्रत्येक होने वाली घटना को स्वर्णयुग के अधिष्ठाता के रूप में देखने लगा था।

(२)

वालपोल के पतन के बाद राजदर्शन के क्षेत्र में किसी नयी शक्ति का विकास नहीं हुआ। केवल व्यक्ति बदलते रहे, व्यवस्था वैसी ही रही। जो बात इस युग में विशेष महत्व की थी वह यह कि हाउस आफ कामन्स (House of Commons) के बाहर एक प्रजातांत्रिक जनमत (Democratic Opinion) का विकास हुआ। इसी जनमत की यह शक्ति आगे चलकर इतनी विकसित हुई कि उसने सम्राट् के न चाहने पर भी, उसकी अनिच्छा के बावजूद, पिट (Pitt) को उससे स्वीकार करा लिया। उस काल की एक सुन्दर पुस्तिका (Pamphlet) से यह स्पष्ट हो जाता है कि जनमत की अप्रत्याशित भावना-शक्ति का विकसित होना बड़ा महत्वपूर्ण था। फैकशन डिटेक्टेड बाई दि एवीडेन्स फैक्ट (Faction detected by the Evidence Fact) (१७४२) नामक पुस्तिका यद्यपि अनामक* रूप से प्रकाशित हुई थी फिर भी उसका लिखने वाला अवश्य ही कोई ऐसा व्यक्ति था जो उस समय की नीति के अन्तरतम घटनाओं से पूर्णतया परिचित था। उसके लेखक ने वालपोल (Walpole) के पतन की संभावना स्पष्टतया देख ली थी। उसे ऐसा लगने भी लगा था कि यदि वालपोल का पतन हुआ तो शासन-व्यवस्था में एक भयकर प्रकार की अराजकता आ उपस्थित होगी। उसने कहा है कि "गण-तंत्रीय (Republican) भावना सहसा विकसित हो गई है।" उसने यह भी घोषित किया है कि कैसे गणतंत्र में विश्वास होने के नाते वेस्टमिनस्टर के मतदाताओं में यह विश्वास बढ़ रहा है कि उनके प्रतिनिधि आदेशों पर कार्य करने लगेंगे। यह सब देखकर ही उस अनाम व्यक्ति ने यह लिखा है कि— "एक विकृतिपूर्ण व्यक्तियों का दल विकास पा रहा है—ऐसा दल जो बड़े गलत ढंग से अपने को जनता (People) कह कर घोषित करने में प्रयत्नशील है।" उसने अपनी पुस्तिका में यह भी लिखा है कि "ऐसे लोग अपने को

---

*शायद यह पुस्तिका लार्ड एगमन्ट (Lord Egmont) द्वारा लिखी गई है।

विधायकों से महान् सिद्ध करना चाहते हैं। यह इस बात की भी चेष्टा में है कि वह जनता में विकृतपूर्ण भावना भर दे ताकि जो भी अस्पष्ट और अनियंत्रित शक्ति संसार के लोगों से भिन्न और विलक्षण रूप में उनके पास है वह उस वर्ग के हाथ में आ जाय। इस हस्तांतरण के फलस्वरूप वे यह भी चाहते हैं कि जनता उन समस्त असुविधाओं को स्वीकार कर ले। समाज की जागरूक शक्ति से पलायन करके वह अपनी प्राप्त शक्ति को सदा-सर्वदा के लिये उस तथाकथित दल को समर्पित करके शान्त हो जायँ।" लेखक ने उस पुस्तिका में उन समस्त संभावनाओं को पूर्वांकित कर दिया है जो आगे चलकर विल्कीज् (Willkies) आन्दोलन के रूप में विकसित हुई और जिन्होंने हार्नटक (Horntock), कार्टराईट (Cartwright) और टामस होल्स (Thomas Holes) जैसे व्यक्तियों को इंगलिश रैडिकलइज्म (English Radicalism) को संगठित करने के लिये बाध्य कर दिया।

इस मनोभाव (temper) का प्रभाव इस पीढ़ी के बाद आने वाली पीढ़ी पर भी काफी पड़ा। इस सम्बन्ध में दूसरा विचार एक ऐसे व्यक्ति द्वारा व्यक्त हुआ जो यों तो उन समस्त व्यक्तियों से अधिक शक्तिवान था जो अँग्रेजी राज-दर्शन (Political Philosophy) के गणमान्य माने जाते हैं किन्तु जो मात्र अपनी शंकावादी (sceptic) प्रवृत्ति के कारण कोई भी रचनात्मक कार्य करने में सफल नहीं हो सका। डैविड ह्यूम (David Hume) मात्र ३१ वर्ष ही का था जब उसने १७४१ में अपने निबन्धों की प्रथम श्रृङ्खला प्रकाशित किया था। उसकी प्रथम कृति ट्रीटाईज़ आफ ह्यूमन नेचर (Treatise of Human Nature) जो कि प्रेस से प्रकाशित होते ही मर गई थी, की क्षति पूर्ति उस समय हुई जब उसकी दूसरी नयी कृति प्रकाशित होते ही बड़े जोर के साथ ख्याति पाकर सामने आई। दूसरा भाग जिसका कि नाम 'पोलिटिकल डिस्कोर्सेज' (Political Discourses) था जो १७५१ में प्रकाशित हुआ। उसी के साथ ही एक और कृति इन्क्वायरी कन्सर्निङ्ग दि प्रिन्सपल्स आफ़ मौरेल्स (Inquiry Concerning the Principles of Morals) के नाम से लगभग साथ ही प्रकाशित हुई। जहाँ तक कि ह्यूम (Hume) के तत्व ज्ञान (Metaphysi-

cal) सम्बन्धी विचार थे वे उस शताब्दी के सबसे अधिक शक्तिवान एवम् प्रभावित करने वाले सिद्ध हुए थे। फिर भी जितने शान्तिपूर्ण ढग से उसके विचार मृतप्राय हो गये उतना शायद ही किसी अन्य इगलिश राज-चिन्तक के हुए हो।

यह सत्य है कि ह्यूम के विचारों में विश्लेषणात्मकता और व्यजनात्मकता समान रूप से हैं। यद्यपि इनका स्पष्ट महत्व यो नहीं दीख पड़ता किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उसके विचार-दर्शन ने अंग्रेजी भावधारा की कल्पना को सर्वथा नयी दिशा प्रदान किया है। उसकी लेखन शैली में एक विभिन्न प्रकार का सरल चमत्कार है जिसका साक्षात्कार हमें उन अंशों में स्पष्ट रूप से होता है जहाँ वह ईश्वरप्रदत्त अधिकार (Divine Rights) और सामाजिक अनुबन्धन (Social Contract) के सिद्धान्तों का खंडन करता है। प्रथम तो वह आस्तिकवादी (Theism) विचारधारा से लिया गया मत मानता है जो अधिकारो पर डाका डालने की प्रवृत्ति का पृष्ठपेषण उसी प्रकार करता है जिस प्रकार कि वह पैतृक (Hereditary) आधार पर किसी राज्य की रक्षा करता है। यही नही वह अधिकारो के अपहरण करने वालों की "दैविक शक्ति" (Divine Commission) की एक ऐसी सत्ता तो हस्तांतरित करता ही है साथ ही वह विचारधारा राजसी वैभव की प्रतिरक्षा (Constable) भी करती है। इसी प्रकार वह सामाजिक अनुबन्धन (Social Contract) वाले दार्शनिको को दैविक शक्ति का प्रलाप करने वालों से कम नहीं मानता। इस सम्बन्ध में प्रश्नात्मक रूप से वह पूछता है—"क्या इस सिद्धान्त का लक्ष्य यह था कि संसार के अधिकांश भाग में इस बात का प्रयास किया जाय कि राजनैतिक सम्बन्धो की स्थापना केवल स्वेच्छा से ही होती है? अथवा इसका मानना यह है कि उसकी स्थापना मात्र ऐसा वचन दे देने से ही हो जाती है कि जिसके आधार पर कोई भी शासक तुम्हारे ऊपर अवज्ञा का अपराध लगाकर तुम्हें बन्दी बना सके? क्या यह विजय ऐसी मानसिक विशिष्टता का लक्षण नहीं है कि तुम्हारे मित्र पहले इसके कि इस प्रकार की घटनाएँ हों तुम्हें ऐसे विचारों को प्रचारित करने से रोक दें?" मौलिक अनुबन्धन (Original Contract)

प्रस्तुत नहीं किया जा सकता बशर्ते कि हम यह न मान लें कि वह हमारे पूर्वजों की अनुमति द्वारा आगामी संतानों की सूदूर शृंखला को भी इन अनुबन्धन से बाँधने का प्रयास है। वस्तुतः सत्य यह है कि "वह समस्त शासन सत्ताएँ जो आज वर्तमान हैं या जिनकी कोई भी कथा शेष है वह या तो मात्र अपहरण से हस्तगत की गई हैं, या विजय (conquest) द्वारा प्राप्त की गई हैं। या दोनों प्रकार से बिना जनता की अनुमति और इच्छा के आरोपित की हुई हैं।" यदि कोई यह पूछता है कि ऐसी स्थिति में आज्ञा का बन्धन क्यों लागू किया जाता है तो उसका एक मात्र उत्तर यह है कि "वह इतनी सुपरिचित स्थिति हो गई है कि अब उस सम्बन्ध में अधिकांश लोग न तो कोई पूछताछ करते हैं और न उसके उद्भव और कारण (Origin and Cause) जानने की उतनी ही उत्सुकता रखते हैं जितनी कि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति (Gravitation), प्रतिरोध शक्ति (Resistance) या प्रकृति की मुख्यतम विश्वव्यापक (Universal) सिद्धान्तों को जानने और समझने के लिए उत्सुक हैं।

शासन सत्ता (Government) इस प्रकार मनोवैज्ञानिक यथार्थ पर इस सीमा तक आधारित है कि वह इसकी भूल भावना से पलायन नहीं कर सकता। शासन सत्ता नितान्त अनावश्यक वस्तु के रूप में भी सिद्ध किया जा सकता है यदि मानव मात्र में वह विवेक शक्ति आ जाय कि वह स्वयम् व्यक्तिगत रूप में अपनी उपलब्धियाँ प्राप्त कर सके और अपने बन्धुओं के प्रति उस सदाशयता और उदार भावना का प्रदर्शन कर सके जिसे वह स्वतः अपने लिये सुलभ और आवश्यक समझते हैं। साथ-साथ वह कोमल अनुभूतियों के साथ संवेदनशील होता रहता है। आज इस प्रकार की नितान्त सुखद स्थिति मौजूद नहीं है, इसीलिये जीवन की विभिन्न स्थितियों में सहसा विकसित होने वाली विकृतियों के निराकरण के लिये हमें इस शासन सत्ता की आवश्यकता अनिवार्य जान पड़ती है। एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति बड़ी सरलता से यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि ह्यूम शासन सत्ता का उद्भव पाप (Sin) पर आधारित करता है किन्तु ह्यूम इस पतनवादी व्याख्या को स्वीकार नहीं करता। उसकी समस्ता दृष्टि मात्र इस बात के प्रति आग्रहशील है कि समस्त संस्थाओं की कसौटी उपयोगिता है।

इस प्रकार वह ही ऐसा राजनीति का विचारक माना जा सकता है जिसने समस्त राजनीति शास्त्र के क्षेत्र में इस सिद्धान्त का व्यापक रूप से प्रयोग किया है। वह यह भी जानता था कि समस्त मानवता का एक मात्र प्रभुत्व शक्ति जनमत ही है और इसकी पृष्ठभूमि में मात्र उपयोगिता (Utility) का ही सिद्धान्त पूर्ण रूप से कार्य करता है। वह इस बात से भी इन्कार नहीं करता कि भय (Fear) और अनुमति (Consent) दोनों ही मनुष्य का दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक होते हैं। वह तो मात्र इतना ही स्थापित करना चाहता है कि मनुष्य के निर्णय और विचारों की स्थापना में उपयोगिता (Utility) का भी काफी योग रहता है। हम किसी भी आज्ञा का पालन मात्र इसलिये करते हैं क्योंकि यदि आज्ञा का पालन न करें तो समाज का अस्तित्व ही नहीं रह जायगा। इसके साथ यह भी है कि समाज एक विशिष्ट उपयोग के लिए ही अपना अस्तित्व बनाता है। इस सम्बन्ध में उसका यह मत है कि—"मनुष्य समाज में विशेष-कर सभ्य समाज में बिना एक कानून, प्रशासक और न्यायाधीशों के चल ही नहीं सकता क्योंकि वह दुर्बलों के ऊपर बलात्कार करने से रोकता है और हिंसात्मक (violent) प्रवृत्तियों की अपेक्षा न्याय और समानता को स्थापित करता है।

इस प्रकार उपयोगितावाद (Utilitarianism) समस्त अन्य पद्धत्तियों के सर्वोपरि है और इस सम्बन्ध में ह्यूम (Hume) गलत नहीं कहता कि इस सिद्धान्त के बिना वह आगे बढ़ ही नहीं पाता। वह स्पष्टतया यह देखता था कि कुछ व्यक्तियों द्वारा समस्त जनता को अपने अधिकार अनुशासन में रखने की प्रवृत्ति सदैव रहती है। किन्तु हाब्स या लाक (Hobbes and Locke) की भाँति उसने इस तथ्य के भीतर की भावना का भी विश्लेषण करके वस्तु स्थिति जानने की चेष्टा नहीं की थी। ठीक इसी प्रकार शासन सत्ता के विषय को जानने के लिए यह आवश्यक है कि किसी भी कल्पना को योजना रूप में परिवर्तित करने वाली शक्तियों को जाना जाय और उसके गुण विषयक समस्याओं पर भी काफी प्रकाश डाला जाय। किन्तु जहाँ तक ह्यूम का सम्बन्ध है वह इन समस्याओं से सम्बन्धित नैतिक प्रश्नों (Moral Problems) पर कोई प्रकाश

नहीं डालता। उसका यह विश्वास था कि राजनीति आगे चल कर विज्ञान (Science) का रूप धारण कर लेगी। इसके साथ-साथ वह यह भी मानता था कि वैज्ञानिक अध्ययन और व्यापक सत्य के प्रति दृष्टि के लिए प्रस्तुत युग विकसित करने में काफी सीमा तक शिशुवत स्थिति का परिचायक था। जिन सिद्धान्तों को वह स्थायी मूल्यों के रूप में स्वीकार करता है वे इस प्रकार हैं कि—"एक पैत्रिक (Hereditary) आधार पर आधारित राजा या सामंत जागीर और जनता मत देने के अधिकार से ही उच्चकोटि की एक सत्तात्मकता (Monarchy) मिश्रसात्मक सत्ता (Oligarchgy) और प्रजातन्त्रात्मक सत्ता का निर्माण कर सकते हैं। 'स्वतंत्रशासन सत्ताएँ बड़ी विनष्टकारी और दमनशील रहती हैं।' उसके मतानुसार गणतंत्रात्मक (Republican) व्यवस्था विज्ञान (Science) प्रधान और शास्त्रीय व्यवस्था का परिचायक है और एक सत्तात्मक (Monarchy) व्यवस्था कला (Art) का परिचायक है। यद्यपि आज के विचारक यह मानने के लिए प्रस्तुत नहीं होंगे किन्तु यह नितान्त सत्य है कि आगे चलकर यह राजनैतिक संस्थाएँ नष्ट हो जायँगी क्योंकि इनका विनाश अनिवार्य है। ऐसी स्थिति में इन विचारों के आधार पर जब वह एक आदर्श-वादी (Ideal Constitution) संविधान का निर्माण करता है और उसकी योजना का देश काल (Time and place) से निरपेक्ष स्थिति में आरोपित करता है तो वह उसको अत्यधिक व व्यावहारिक (Practical) रूप में प्रस्तुत करके उसे हॉलैण्ड (Holland) के संविधान के समान बनाने की चेष्टा करता हुआ सा लगता है। उसकी यह चेष्टा प्रमाणित करती है कि ऐतिहासिक पद्धति (Historical Method) उस समय तक पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाई थी।

इन सब के बावजूद ह्यूम (Hume) में गहरी बुद्धिमत्ता के आभास बहुत हैं। यदि उसकी तीव्र आत्मदृष्टि का वास्तविक मूल्यांकन नहीं किया जायगा तो उसके महत्व के साथ न्याय नहीं हो सकेगा। प्रशासन ही को सब कुछ मानने वाले पोप (Pope) जैसे लोगों के निकृष्ट विचारों के प्रति वह बड़ी कटु दृष्टि रखता था। साथ ही वह उनका भी कटु आलोचक था जो शासन सत्ता के रूप को

कुछ भी महत्व नहीं देते थे। वह हैरिंगटन (Harrington) के इस मत से कि शासन-सत्ता (Government) ठीक सम्पत्ति विभाजन (Distribution of Property) के समान बिना राजनैतिक शक्तियों को सर्वेसर्वा माने स्थापित होती है असहमत था। उसके इस विचार से बाद के काफी राजनैतिक चिन्तक सहमत भी हुए थे। वह यह स्पष्ट देखता था कि सम्राट् (Crown) जनता को प्रभावित करने में असफल था। उसमें वर्तमान राज्य के गुणों को संतुलित रखने की क्षमता भी नहीं थी। इस विफल स्थिति का प्रमाण स्वयं जार्ज तृतीय (George III) का शासन ही प्रस्तुत करता है। इस सम्बन्ध में वह कहता है—"प्रत्येक शासन-सत्ता में सत्ता (Authority) और स्वाधीन (Liberty) को लेकर बराबर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आन्तरिक संघर्ष चलाते रहते हैं।" यद्यपि इस सम्बन्ध में उसका यह निर्णय कि सम्पूर्ण स्वाधीनता या सम्पूर्ण सत्ता की स्थिति कभी भी पूरे-पूरे रूप में स्थापित नहीं हो सकती, हमें इस बात का बोध कराती है कि हम लोग इतनी तेजी के साथ लाज़ेज़ फ़ेयर (Laissez-faire) अर्थात् स्वाधीनता (Liberty), समानता (Equality) और भातृ प्रेम (Fraternity) की ओर बढ़ रहे हैं कि उसका ज्ञान स्वयं ह्यूम (Hume) को भी स्वतंत्रता की व्याख्या करते समय नहीं हो पाता। वह यह अनुभव करता था कि हाउस आफ कामन्स (House of Commons) राज्य की धुरी बन गया है। इसीलिए वह लोक सत्ता को बड़ी शंकित दृष्टि से देखने लगा था। पार्टी व्यवस्था या दलगत शासन सत्ता की अनिवार्यता को वह सिद्धान्त पर आधारित नहीं पाता था वरन् उसे वह व्यक्तित्व पर केन्द्रित पाता था। वह विज्ञान और कला के विकास के लिए स्वाधीनता (Liberty) की अनिवार्यता को भली भाँति अनुभव करता था। एडम स्मिथ (Adam Smth) को छोड़ कर ह्यूम की भाँति ही किसी अन्य व्यक्ति ने निरपेक्ष शासन सत्ता (Government) के कारण व्यवसाय पर पड़ने वाले विकृत प्रभावों को इतनी तीव्रता के साथ शायद ही अनुभव किया हो। उसने प्रेस की स्वाधीनता (Freedom of Press) के प्रति भी बलपूर्वक आग्रह किया है। वह अनुभव करता था कि इंगलैण्ड की शासन सत्ता की सफलता का गुरु प्रेस की स्वाधीनता (Freedom

of Press) के साथ ही सम्बद्ध हैं। उसने एक स्थान पर इन्हीं भावों को बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करते हुए कहा है—"यह सिद्ध हो चुका है कि जनता उस प्रकार की भयानक राक्षस प्रवृत्ति की परिचायक नहीं है जैसा कि उसे घोषित किया गया है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि उसे उचित ढंग से विवेकपूर्ण प्राणी के रूप में आगे बढाया जाय न कि उसे हिंसक पशु की भाँति हाँका जाय।" उसकी कृतियों में शायद ही कोई पृष्ठ ऐसा हो जिसमें इस प्रकार के तीव्र बखान हों।

किन्तु यह भी सत्य है कि उसकी कृतियों में एक प्रकार का निश्चित दृष्टि दोष भी है। ह्यूम कुछ अर्थों में अट्ठारहवीं शताब्दी की कुछ प्रवृत्तियों का बड़ा विचित्र प्रतिनिधित्व करता था। जब वह भावुकता की अभ्यर्थना करता था और भावुकता को धर्म के रूप में अवतरित होता हुआ देखता था तो उसकी घृणा उन सबके प्रति और भी अधिक तीव्र हो जाती थी। उसकी समझ में यह बात नहीं आती थी कि लोग धार्मिक स्तर पर एक दूसरे के प्रति सहिष्णु क्यों नहीं होते? क्यों नहीं वे एक दूसरे के साथ चल पाते? धर्म सम्बन्धी समस्त लड़ाइयों को वह इसीलिए एक प्रकार का बहुत ही ओछे सिद्धान्तों की लड़ाई मानता था। इसीलिए उसने कामनवेल्थ (Commonwealth) की कल्पना करते हुए उसके आदर्शों की स्थापना में चर्च को राज्य के एक विभाग के रूप में स्वीकार किया है। उसने ऐसा इसलिए किया है ताकि चर्च सत्ता के हाथ से निकल कर बाहर न जाने पाये। चूँकि वह एक गतिहीन दार्शनिक था और राजनैतिक उथल-पुथल से अत्यधिक चिन्तित होता रहता था इसलिए उसकी कृतियों में ह्विग (Whig) दल की कटु आलोचना और रूढ़िवाद का सनकपूर्ण समर्थन स्पष्ट रूप में उभर कर आया है। वह सदैव इस कल्पना से आतंकित था कि लोक सत्ता पर आधारित शासन का अर्थ भेड़ियाधसान प्रकार की शासन सत्ता (Mol Rule) स्थापित करना होगा। इन्हीं विचारों के कारण वह निरपेक्ष सत्ता (Absolute Government) को ब्रिटिश संविधान (British Constitution) की मूल चेतना मानता था। उसे स्वीडन (Sweden) की शासन सत्ता को देखकर भी इतना ज्ञान नहीं आया कि एक स्थायी सेना (Standing Army) बिना

राजनैतिक स्वाधीनता (Civil Liberty) के अपहरण से भी संभव हो सकती है। शक्ति संतुलन (Balance of Power) सम्बन्धित उस युग की समस्त विद्रूप पूर्ण धारणाएँ वैसी ही उसमें व्याप्त हैं। इन सब बातों के अतिरिक्त राष्ट्रीय चरित्र के समक्ष वह पूर्ण रूप से असहाय और असमर्थ-सा प्रतीत होता है। राष्ट्रीय चरित्र (National Character) को मुख्यतः वह शासन सत्ता के प्रकार पर आधारित करता है और उसको केवल अवसर (Chance) के रूप में ही स्वीकार करता है। मान्टेस्को (Montesque) का मित्र होते हुए भी वह प्रजातीय (Racial) और जलवायु के महत्व को नहीं देख पाया है। उसके राजनैतिक चिन्तन में क्रमिक विकास का महत्व सर्वथा है ही नहीं। राजनैतिक जीवन, मानव जीवन के समान ही मृत्यु में विलुप्त होने वाली है, इसलिए वह उस जीवन को अधिक से अधिक सुखद बनाने पर ही बल देता है, और कहता है कि जीवन के सुख को केवल यह छोटे-छोटे उथल-पुथल भी नष्ट कर देते हैं। इन तर्कों से ही अनुप्राणित होकर आसानी से पता लग जाता है कि वह शान्तिप्रिय प्रकृति-सा क्यों लगता है। ऐसा चिन्तक जिसने मानव आनन्द का लक्ष्य ही आलस्य माना उसके लिये प्रत्येक नये भावों को बिना किसी विक्षिप्त मनोभावना के स्वीकार करना संभव नहीं हो सकता।

ह्यूम (Hume) का स्थान अर्थशास्त्रियों में भी बड़ा महत्वपूर्ण है। उस जैसे व्यक्ति के लिए जिसने आर्थिक समस्याओं पर केवल आकस्मिक रूप में ही विचार किया हो, इतने व्यापक रूप में देख सकना अत्यन्त आश्चर्यजनक ही है। वह व्यवसायवादी (Commercial) मोटी मोटी त्रुटियों से सर्वथा मुक्त है और एडम स्मिथ (Adam Smith) के समय के बीस वर्ष पूर्व ही उसने अंग्रेजी जनता का एक प्रतिनिधि होने के नाते यह अनुभव कर लिया था कि स्वयं ब्रिटेन के विकास के लिए अन्य देशों में सम्पन्नता का वातावरण स्थापित होना नितान्त आवश्यक है। उसके लिए स्वतन्त्र आवागमन और यातायात के साधन और व्यावसायिक आदान-प्रदान एक स्वाभाविक अनिवार्यता थी। इसीलिए वह उन लोगों को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखता है जो व्यवसाय के रास्ते में अनेक प्रकार की असुविधाएँ और अनगिनत रुकावटें डालकर योरप के अन्य राष्ट्रों से व्यापार

करने में बाधा प्रस्तुत करना चाहते हैं। वह यूरोपीय देशों से तो असंतुष्ट था ही साथ ही साथ ही उसने इंगलैंड की व्यवसाय सम्बन्धी रुकावटों और प्रतिबंधनों को दूर करने में प्रोत्साहन दिया था। मुद्रा (Currency) को वह मात्र आदान-प्रदान का माध्यम मानता था। व्यवसाय और कृषि का पारस्परिक विरोध दिखा कर जो लोग उनमें भिन्नता पैदा करना चाहते थे ह्यूम ने केवल दस-बारह पंक्तियों में बड़े सशक्त ढंग से उत्तर देकर उन्हें मौन कर दिया था। वह आर्थिक माँग को देश, काल और दूरी (Space and time) की सापेक्षता में रखकर देखता है। यद्यपि वह व्यापक आर्थिक एकता स्थापित करने की बातें करते हुए उसके प्रति शंकाकुल (sceptic) है किन्तु फिर भी वह उसके महत्व और मूल्य के प्रति उदासीन नहीं है। वह मजदूरी (Wages) की ऊँची दर के आर्थिक मूल्य पर बराबर आग्रह करता है। यद्यपि वह अन्य स्थलों पर आनन्द (Happiness) को प्राप्त करने के लिए सम्पत्ति (Property) के महत्व को काफी छोटा और हेय सिद्ध करने की चेष्टा करता है फिर भी वह उपर्युक्त मजदूरी की ऊँची दर को कहीं-कहीं बड़ा महत्वपूर्ण मानता है। बेन्थम (Bentham) जिसने कि इसी सिद्धान्त के अनुसार एडम स्मिथ जैसे विचारक को अपना समर्थक बना लिया था, यह भली भाँति जानता था, कि सूद की दर, माँग और खपत (Consumption) के अनुसार घटते-बढ़ते रहते हैं। वह इस बात के प्रति भी आग्रहशील है कि किसी भी व्यवसाय के विकास के लिये सर्वथा स्वतंत्र और मुक्त शासन सत्ता का होना नितान्त अनिवार्य है। इस बात की व्याख्या करते हुए अपने फ्रांसीसी अनुभव के आधार पर उसने बड़ी दृढ़ निष्ठा का परिचय दिया है। वह यह भी मानता था कि सर्वथा निरपेक्ष (Absolute) शासन सत्ता व्यावसायिक वर्ग को अपर्याप्त रूप में आदर प्रदान करती है। फ्रांस के ही अनुभव के आधार पर उसका यह मत बना था कि निरपेक्ष अथवा निर्दलीय शासन व्यावसायिक वर्ग को समुचित आदर नहीं दे पाती। इसमें संदेह नहीं कि उसको अपनी इच्छा के विरुद्ध फ्रांस की यह त्रुटि स्वीकार करनी पड़ी थी किन्तु वह यह भी जानता था कि कोई भी निरपेक्ष शासन सत्ता किस प्रकार स्वेच्छाचारी के रूप में टैक्स लगा-लगा कर विकृत स्थितियों को प्रोत्साहित करती है।

अनावश्यक आवेश में वह इसकी कटु आलोचना करते हुए कहता है—"इस प्रकार टैक्स प्रायः उद्योग को प्रताड़ित करने में बदल जाते हैं। अस्वाभाविक रूप में असमान व्यवहार और आचरण करते रहने के कारण वे मात्र एक बोझ ही नहीं बन जाते वरन् वे व्यवसाय के ऊपर एक आतङ्क के समान छा जाते हैं। इसीलिए वह बार-बार टैक्स के सम्बन्ध में मत प्रकट करते हुए इस बात पर बल देता है कि सबसे अच्छे टैक्स वे होते हैं जो विलास की सामग्री पर लगाये जाते हैं और जिनका बोझ गरीबों पर बिल्कुल ही नहीं पड़ता।"

इस प्रकार की अन्तरवेदना और आत्मानुभूति एडम के युग के पूर्व असाधारण रूप में पाई जाती है। किन्तु इस तथ्य के अतिरिक्त उसके इस मनोभावना के महत्व के कुछ मनोवैज्ञानिक कारण हैं जो इन सब की जड़ में कार्य करते हैं। उसका यह मत है कि राज्य का धन जनता का श्रम है और श्रम करना इसलिये आवश्यक और अनिवार्य हो जाता है क्योंकि मनुष्य की आवश्यकताएँ (Wants) स्थिर नहीं हैं, वे सदैव एक के बाद दूसरे रूप में बढ़ती जाती हैं। धन की कल्पना ही आनन्द (Happiness) की भावना से उपजती है। उसने अपनी पुस्तक ट्रीटाइज आन ह्यूमन नेचर (Treatise on Human Nature) में इस बात को बड़े स्पष्ट रूप में व्यक्त करने की चेष्टा की है कि आनन्द (Happiness) की भावना व्यक्ति की तुष्टि (Satisfaction) और संतोष पर केन्द्रित होती है। इसी भावना के आधार पर उस पारस्परिक सहानुभूति का भी जन्म होता है जो वास्तव में समाज के अस्तित्व का मूल कारण है। वह बार-बार श्रम में आनन्द प्राप्त करने के विचार पर बल देता है। एक स्थान पर वह लिखता है कि—"मनुष्य की बुद्धि को इसी श्रमसाध्य आनन्द की भावना के आधार पर नयी शक्ति मिलती है। उसकी सत्ता और क्षमता (Power and Will) को विकसित करने का अवसर भी इसी आधार पर मिलता है। श्रम में ईमानदारी के साथ विश्वास करने के नाते ही मनुष्य प्राकृतिक और स्वाभाविक चेतनाओं को विकसित करने एवम् अप्राकृतिक और अस्वाभाविक बातों को देखने में सफल होता है। ऐसा करने में वह अपने पूर्व विचारक हचिन्सन (Hutchinson) की भाँति बार-बार अतिरिक्त रूप

में यह सिद्ध करने की चेष्टा करता है कि सभ्यता (Civilization) के विकास ने मानव जाति के लिये समस्त सुविधाओं के द्वार खोल दिये हैं और इस सुविधा के नाते समाज के साधारण वर्ग को बड़ा बल मिला है। उसने अपनी व्याख्या में 'आत्म शक्ति' (Will Power) की शक्ति पर विस्तारपूर्वक चिन्तन प्रस्तुत किया है। सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव इस व्याख्या से यह पड़ा कि उसने शासन सत्ता को एक अनिवार्य स्थिति के रूप में स्वीकार किया है। उसके विचारों से देश-काल (Time-Space) के आधार पर विकसित ढंग एवम् उसकी उपयुक्तता को विशेष सहायता मिली है।

चूँकि उसका जीवन नितान्त लोभरहित था इसीलिये वह धन की पिपासा को मनुष्य की प्रेरक शक्तियों का मूलाधार नहीं मानता। सिवा उसके शायद ही कोई अन्य चिन्तक ऐसा मिले जो यह मानता हो कि मनुष्य की धनार्जन एवम् धन संग्रह की पिपासा उस समय तक तुष्टि नहीं पा सकती जब तक वह सहज मित्रों की हित कामना के साथ-साथ न्याय और विवेक द्वारा संतुलित नहीं होती। बिना उपर्युक्त विवेक के धन संग्रह की पिपासा समाज के लिये अहितकर ही रहती है। उसके इस कथन का क्या आशय था यह उसकी समानता (Equality) संबंधी उदार धारणा से दृष्टिगत होता है। एक स्थान पर उसने यह विख्यात घोषणा की है कि—"प्रत्येक व्यक्ति को अपने श्रम द्वारा अर्जित फल का स्वच्छन्द रूप से भोग करना चाहिये और समस्त आवश्यकताओं को अपने अधिकार में रखकर जीवन को अधिक से अधिक सुगम बनाने की चेष्टा करनी चाहिये। इस विषय में किंचित ही किसी को सन्देह हो कि इस प्रकार की समानता प्राप्त कला से ही मनुष्य की प्रकृति के लिये उपयुक्त होता है। ऐसा करने से धनियों के आनन्द में बिना किसी प्रकार का अन्तर उत्पन्न किये धन-हीन को सुखपूर्ण जीवन बिताने का अवसर सुलभ हो जाता है।" उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट हो गया कि ह्यूम के विचारों के साथ हमारी सारी बौद्धिक चेतना गणितपूर्ण राजनीति की संकीर्णता से निकल कर एक व्यापक धरातल ग्रहण कर चुकी थी। उपयोगिता (Utility) का सिद्धान्त ह्यूम को वह दृष्टि प्रदान करता है जिसके कारण वह आर्थिक क्षेत्र की उन संभावनाओं को देखने की

शक्ति पा सका। उसके पूर्व के चिन्तकों में ऐसे विचार शून्य थे। उसने इन समस्याओं एवम् व्यापक परिप्रेक्षा (Perspective) और उदात्त भावनाओं को अपने पूर्व युग की अपेक्षा अधिक सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है। यह कहना तो अतिशयोक्ति होगी कि वह इन समस्त समस्याओं के मनोवैज्ञानिक पक्षों को भलो-भाँति समझता है अथवा वह अपने इन उपलब्धियों के आधार पर प्राचीन धारणाओं पर आधारित राष्ट्रीय समृद्धि (National Prosperity) के सोना-चाँदी (Bullion) सम्बन्धी आर्थिक ज्ञान को एक व्यापक समाज शास्त्रीय आधार पर प्रस्तुत कर सकने में सफल हुआ है किन्तु कम से कम इस सम्बन्ध में इतना तो कहा ही जा सकता है कि उसने अपने तर्क द्वारा यह सिद्ध कर दिया था कि अर्थशास्त्र मानव जीवन की मूलभूत प्रकृति से सम्बद्ध है और उसके उचित ज्ञान में ही मानव ज्ञान की सच्ची एवम् रहस्यात्मक शक्तियाँ जन्म पाती हैं। उसकी पुस्तक दि वेल्थ आफ नेशन्स (The Wealth of Nations) को इतनी ख्याति मिलना असंभव हो जाता यदि ह्यूम (Hume) की अर्न्तदृष्टि ने उसके स्वागत एवम् विकास के लिये मार्ग न प्रशस्त किया होता।

अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसी अवस्था में राजदर्शन के इतिहास में ह्यूम का क्या स्थान है ? स्पष्ट है कि वह किसी दर्शन पद्धति (Philosophical Method) का प्रवर्तक नहीं था। उसकी कृतियाँ मुख्यतः क्रमबद्ध सारगर्भित संकेतों की तुष्टि करती हैं। वह किसकी राजनैतिक तथ्य की शृङ्खलाबद्ध व्याख्या नहीं है ? साथ ही उसकी चिंतन प्रक्रिया में उसके पूर्वजों ने जो विचार में योगदान दिये हैं हम उसकी भी अवहेलना नहीं कर सकते। निश्चय ही उसके विचार अधिकांश रूप में लाक (Locke) के मतवाद से अनुप्राणित हैं। उसकी स्काटिश (Scottish) प्रतिभा मूलतः उसके विचारों से जन्मी है। साथ ही हचिन्सन के विचार ने भी उसे कम प्रभावित नहीं किया था। वह जहाँ हचिन्सन (Hutchinson) के विचारों से इतना प्रभावित था वही शेफ्टसबेरी के विचारों ने भी उसे इतनी ही प्रेरणा दी थी। इन दोनों विचारों के साथ वह स्काटिश सम्प्रदाय (Scottish School) की उस सहज बुद्धि (Common Sense) से भी उतना ही प्रभावित है जो कि नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र और

राजनीतिशास्त्र को एक साथ सम्बद्ध रूप में प्रस्तुत करता है और जो सत्तरहवीं शताब्दी के मध्य में हेचेन्सन (Hutchenson) से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के योग्य किन्तु उपेक्षित दार्शनिक लारीमेर (Lotimer) की परम्परा के साथ विकसित हुआ था। वह उपयोगितावाद (Utilitarianism) का वास्तविक अधिष्ठाता कहलाने का अधिकारी है। वह ही ऐसा व्यक्ति है जिसने सर्वप्रथम यह दिखलाने की चेष्टा की है कि राजनीति में मनुष्य के नैतिक अधिकारों (Moral Rights) और उसकी अपनी भव्य आकांक्षाओं के बीच विभाजन प्रस्तुत करना व्यर्थ है। उसने राजनीति में उस विचार पद्धत्ति को समाप्त कर दिया था जिसे कालरिज (Coleridge) ने 'तत्ववादी राजनैतिक पद्धति' (Metaphysical School) के नाम से प्रतिष्ठित किया था। ह्यूम (Hume) के बाद हम यह भली-माँति देख सकते हैं कि ईश्वर प्रदत्त (Divine) अधिकार (Right) एवम् सामाजिक अनुबन्धन (Social Contract) के सिद्धान्तों ने ऐतिहासिक तथ्यो का कितना दुरुपयोग किया है। ऐसा भास इसलिये होता है क्योंकि ह्यूम के विचारो में हमें ऐतिहासिक पद्धति का वास्तविक प्रयोग भी दिखलाई पड़ता है। उसने उस चिन्तन प्रणाली को भी समाप्त कर दिया जो भ्रांतिपूर्ण तरीकों से ऐसे मान दण्ड प्रस्तुत करना चाहती थी जो सकारात्मक (Positive) विधायकों से मुक्त होकर उचित और अनुचित (Right and Wrong) की व्याख्या प्रस्तुत करती आ रही थीं। उसने तथ्यों को स्वाभाविक गतिविधि के रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। किसी लोकप्रिय सिद्धान्तवाद के आधार पर उसने अपने विचारों को आंशिक रूप में प्रतिपादित करने का प्रयास नहीं किया है। परंपरागत ह्विगदल (Whigism) का महत्व उसके विवेचन के बाद ही समाप्त हो जाता है। उसका उपयोगितावादी सिद्धान्त (Utilitarianism) ही वह पहला विचार था जिसने सामाजिक अनुबन्धन (Social Contracts) का खण्डन करके उसका स्थान स्वयम् ग्रहण कर लिया था। जैसा कि शेफटेसबरी ने कहा है यद्यपि वह पहला व्यक्ति नहीं था जो सामाजिक अनुबन्धन (Social Contracts) की असफलताओं को देख सकने में सफल हुआ था फिर भी वह उस मतवाद के निष्प्रयोजन

आधारों के खोखलेपन को प्रदर्शित करने वालों में निश्चय ही सर्वप्रथम व्यक्ति था। उसने यह स्पष्ट रूप से अनुभव कर लिया था कि इतिहास (History) और मनोविज्ञान (Psychology) के सम्वेत रूप से ही राजदर्शन का उचित तथ्य पाया जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि वह इन आधारों पर कोई नियमित मतवाद स्थापित करने में पूर्णतया सफल नहीं हो सका, किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि उसने ही उन सूक्ष्म सकेतों का सूत्र प्रदान किया है जिनके आधार पर तत्कालीन नयी विचारधारा विकसित हो सकी थी।

उसकी इस संकेतात्मक प्रस्तावना शैली का विवेचन दूसरे ढंग से भी किया जा सकता है। यद्यपि जिस प्रकार का तत्व-दर्शन (Metaphysics) बर्क (Burke) ने अपने मतवाद में प्रतिष्ठित किया है उसका खंडन स्वयं ह्यूम (Hume) यदि जीवित होता तो निश्चय करता फिर भी इसमें संन्देह नहीं है कि बर्क ने अपने तत्व दर्शन को ठीक ह्यूम के विचारों पर ही आधारित किया है। अनुमति (Consent) के साथ स्वभाव (Habits) और सामाजिक प्रवृत्ति (Social Instincts) की महत्त्वपूर्ण स्वीकृति; अनुबोधन (Perception) के साथ-साथ इस राजनैतिक तथ्य का प्रतिष्ठापन कि मात्र विवेक द्वारा ही मानव समस्याएँ नहीं सुलझाई जा सकतीं; इस बात की स्वीकृति कि प्रतिरोध (Resistance) राजनीति का अन्तिम साधन है; इस बात की अस्वीकृति कि मनुष्य की समस्त विनयशीलता (Respect) मात्र ही अनुबन्धन सिद्धान्त पर आधारित है—और उसका प्रतिपादन केवल शान्ति के समर्थन के लिए ही हुआ है—आदि वे विचार स्रोत हैं जिन पर बर्क (Burke) ने अपना विचार दर्शन आधारित किया था। बेन्थम (Bentham) के उपयोगितावाद के समर्थन में व्यक्त किये गये विचारों में भी कुछ ऐसा नहीं जो सर्वथा नया होने के नाते स्वीकार किया जा सके। बाद में बेन्थम (Bentham) पेले (Paley) और मिल (Mill) ने जिस प्रकार नैतिकता को मात्र उपयोगिता (Utility) से अनुप्राणित साधारण मत माना है, वस्तुतः उसका मूल अधिष्ठाता ह्यूम ही रहा है। इस नाते भी वे इस अर्थ में ह्यूम से बड़े नहीं हैं। यही नहीं उसने अपने विचारों द्वारा दो ऐसी राजनैतिक विचारधाराओं को जन्म दिया है

जो आधुनिक राजदर्शन की दो मूल प्रवृत्तियों के रूप में आज भी वर्तमान हैं। उसके द्वारा स्थापित उपयोगितावाद ही वह सिद्धान्त है जिसके आधार पर आगे चलकर क्रांतिकारी विचारों की सर्वथा नयी शक्ति विकसित हो सकी है। बर्क ने जिस प्रकार ऐतिहासिक तथ्यों का प्रयोग किया है, और ऐतिहासिक पद्धति का अनुकरण करते हुए जिस विशिष्टता को प्रतिष्ठित किया है उसकी भाव प्रकृति ह्यूम के विचारों से बहुत मिलती है। यदि उपर्युक्त तथ्य सत्य हैं तो यह जिज्ञासा प्रकट करने में कोई हानि नहीं मानी जानी चाहिए कि उसके विचारों को इससे भी आगे बढ़ने एवं विकसित होने का अवसर क्यों नहीं मिल पाया? इसी से सम्बन्धित दूसरी जिज्ञासा यह है कि यदि यह सत्य मान लिया जाय कि ह्यूम के पास इतनी सामग्री थी, तो फिर वह उसके आधार पर एक विचार पद्धति (Thought-System) को बना सकने में असमर्थ क्यों रहा? इन समस्त स्थितियों के दो कारण हैं। कुछ तो स्वयं ह्यूम के व्यक्तित्व का ही दोष था। उसकी प्रतिभा में खंडन शक्ति अधिक थी। वह ऐसा व्यक्ति था जिसमें शंका-वाद अधिक था। इसलिए वह कोई रचनात्मक विचार सर्वथा नये रूप में स्थापित करने में भी असमर्थ था। दूसरा कारण यह है कि जिस युग में ह्यूम था उसमें नये विचारों को विकसित कर सकने की प्रेरणा शक्ति भी कम थी। वस्तुतः ह्यूम अपनी पीढ़ी की अपेक्षा, आगे आने वाली पीढ़ी का व्यक्ति था। यदि उसने अपने विचारों को उस समय व्यक्त किया होता जिस समय कि जार्ज तृतीय (George III) ने क्रांति (Revolution) की समस्त व्यवस्था और प्रतिष्ठा को नष्ट करना चाहा था, और फ्रांस और अमरीका ने संयुक्त रूप से राज के मूल-प्रश्नों पर शंकाएँ प्रस्तुत की थीं, तो निश्चय ही उसे ठीक वही सफलता मिलती जो एडम स्मिथ (Adam Smith) को मिली है। किन्तु जिस युग में ह्यूम था उसमें यह संभव नहीं था। इसीलिए ह्यूम ने जो कुछ बीज रूप में रोपा था उसका पूर्ण लाभ बाद में बर्क (Burke) जैसे विद्वानों ने ग्रहण किया।



अध्याय ५

परिवर्तन के चिन्ह

(१)

ह्यूम के बाद बर्क द्वारा लिखित प्रेजेन्ट डिसकन्टेन्ट्स (१७७०) (Present Discontents) के बीच कोई भी ऐसी उल्लेखनीय कृति अँग्रेजी राजदर्शन के क्षेत्र में नहीं लिखी गई जिसको महत्वपूर्ण कहा जा सके। १७४१ में वालपोल का पतन हो चुका था। किन्तु उसके बाद भी पन्द्रह वर्ष तक उसकी प्रतिष्ठापित पद्धतियों का ही अनुकरण राजनैतिक क्षेत्र मे समस्त संसदीय (Parliamentary) आचरण को मर्यादित करता रहा। बड़े पिट के अविर्भाव और उसकी शक्ति के विकास के साथ-साथ ही अँग्रेजी राजदर्शन को सर्वथा नया स्वर और नये मनोभाव प्राप्त हो सके। यह स्वर और तीव्र एवम् स्पष्ट रूप में जार्ज तृतीय (Temper) के राजगद्दी पर बैठने के बाद विकसित हुआ। अब तक पूर्व प्रकार की अज्ञानताएँ और जड़ताएं भी अपनी शक्ति खो चुकी थीं। यह जड़ता और अज्ञानता की भावना उस समय तक नहीं विकसित हो पाई जब तक कि फिर फ्रॉस की क्रान्ति के समय बर्क जैसे-व्यक्ति ने लार्ड एल्डन (Lord Eldon) को आदर्श मानकर यह नहीं सिद्ध किया कि समस्त अँग्रेजी राष्ट्र को अपनी पर्याप्त उपलब्धि पर ही संतुष्ट रहना चाहिये। प्रत्येक स्थिति में अलग-अलग तो परिवर्तन की सम्भावनाएँ कम थीं ही किन्तु इनका सम्मिलित (Collectively) प्रभाव निश्चय ही बहुत महत्वपूर्ण था। इस काल में लोगों को शिकवा-शिकायत करने का अवसर कम था क्योंकि वालपोल के शासनकाल में देश की सम्वृद्धि अधिक हुई थी। यही नहीं चेथम के शासनकाल में इङ्गलैण्ड को विजय

प्राप्त हुई थी। इस काल की उदात्त और स्फूर्तिचेतना का भास (Exhiliration) हमें उन पत्रों में भी मिलता है जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि होरेस वालपोल (Horace Walpole) ने उसके लिए कौन-कौन से प्रयास किये थे और कैसे-कैसे उसे अपने प्रयासों में सफलता भी प्राप्त हो गई थी। पार्लियामेंट में भी उस समय तक विल्की का मोक़दमा नहीं आया था। किसी विशेष चेतना का प्रमाण भी नहीं मिल पाता था और न यह ही लगता था कि कोई नया युग सहसा अवतरित हो रहा है। केवल रिचर्डसन (Richardson) और फील्डिंग (Fielding) के नावेल, एवम् ग्रे (Gray) और कोलिन्स की काव्य कृतियों में ही उस 'रोमैन्टिक' 'मनोभाव' •के चिन्ह मिलते हैं जो समस्त नयी राजनैतिक चेतना और नवीनता की संवेदना से ओतप्रोत थे।

यदि किसी भी नई विचारधारा का आदि स्रोत कोई एक कारण हो सकता है तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि प्रस्तुत परिवर्तनों का मुख्य कारण फ्रांस के प्रभाव में विकसित हुए थे। वालपोल (Walpole) के शासन काल में वाल्टेयर (Valtaire) और मान्टेस्क्यू दोनों ने इङ्गलैंड का भ्रमण किया था और उन दोनों पर इंगलैंड की स्थितियों का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था। रूशो (Rousseau) अवश्य काफी दिनों बाद आया। ह्यूम के मतानुसार वह इगलैंड में मात्र उन अभियोगों से बचने के लिए आया था जो उस समय फ्रांस में उसके विरुद्ध आरोपित किये जाते थे। इसके प्रमाण में यह बात तो स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि रूशो को जो कुछ इंगलैंड में अनुभव हुआ वह उसके लिये नितान्त हर्षोत्पादक नहीं था। १७६२ में जब वह इंगलैंड में सोशल कन्ट्रैक्ट (Social contract) के छपवाने के लिये आया तो वह इंगलैंड की विचारधारा से बहुत ज्यादा प्रभावित था। इन सबकी कृतियों का वास्तविक अर्थ इंगलैंड के लोगों के लिए संघ (federation) सम्बन्धी नये परिप्रेक्ष्यों (Prospectives) के क्षेत्र तक ही सीमित रहा। ऐसी अवस्था में एक छत्र शासन सत्ता जिसकी प्रभुत्व शक्ति सम्राट की इच्छा शक्ति से उपजती हो उस शासन सत्ता से सर्वथा भिन्न होगी जिसकी प्रभुत्व शक्ति संघों के जटिल निर्माण, शक्ति विभाजन (Seperation of Power)

और सामान्य स्वतन्त्रता (General Freedom) की सुरक्षा से उद्भूत होकर अवतरित होगी। फ्रांसीसियों को, अँग्रेजी न्याय सम्बन्धी समानता देखकर बड़ा आश्चर्य होता था। अँग्रेजी व्यवस्था में प्रेस की स्वतन्त्रता, (Freedom of press) हेबियस कार्पोस (Habcus Corpus) और पार्लियामेंट में एक दल के बाद दूसरे दल का सत्तारूढ़ होना उन लोगों को बड़ा आश्चर्यजनक लगता था जो इन सुविधाओं के अभाव को ही सर्वमान्य मानते थे। अँग्रेजी विधान (British Constitution) ने फ्रॉस के समक्ष एक ऐसे दार्शनिक तथ्य और विचार का प्रमाण प्रस्तुत कर दिया था जो नई सम्भावनाओं का अछूता भंडार था। इस शक्ति का पूरा-पूरा ज्ञान स्वयं इंगलैंड को भी नहीं था। लाक (Locke) की विचारपद्धति (System) एक विशिष्ट संक्रमण काल की भावना का सुन्दर साधारणीकरण प्रस्तुत करता था। ह्यूम को इस नई शक्ति की आन्तरिक क्षमताओं का आंशिक भास मिलने लगा था। किन्तु उस समय तक यह पद्धति केवल कुछ विशिष्ट त्रुटियो के संशोधन के लिये ही पर्याप्त हो सकी थी। इसके सम्पृक्त विश्लेषण ने राज्य क्रान्ति के बाद संसदीय प्रभुत्व (Parliamentary Sovereignty) सिद्धान्त में कोई भी अन्य विस्तार नहीं प्रस्तुत किया था। इस काल में उल्लेखनीय बात यह है कि मौन्टेस्क्यू (Mantesquieu) के विचार के साथ-साथ जार्ज तृतीय की राज्यसत्ता को पुनः प्रतिष्ठित करने की बात जोर पकड़ने लगी। इस प्रकार मौन्टेस्क्यू (Montesquieu) सर्वथा नई विचार-धारा का अग्रगण्य नेता माना जाने लगा। अभी तक रूशो (Rousseau) का युग नहीं आया था। कुछ ही दिनों बाद बर्क की रूढ़िवादी (Conservative) नीति के विरोध में रूशो का व्यक्तित्व स्पष्टतया उभर कर प्रस्तुत होता हुआ-सा प्रतीत होने लगा।

यहाँ एस्पीरिडे लोय (Espirit des Lois) (१७४८) पर कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। साथ ही उसके अन्तर में प्रवाहित सिद्धान्त को भी जान लेना उचित है। यह बात तो अब प्रायः सभी मानते हैं कि मान्टेस्क्यू (Montesquieu) ऐतिहासिक पद्धति का जनक और संस्थापक था। उसके

मतानुसार वर्तमान का अध्ययन विगत के पूर्वजों के अध्ययन से ही किया जा सकता है। विधायक, शासन सत्तायें और परम्परायें निरपेक्ष (Absolute) और विश्व व्यापक सत्य नहीं हैं। इसके विपरीत वे उस देश के काल और परिस्थितियों के आश्रित होती हैं जहाँ से प्रभावित होकर यह विकसित और प्रतिपादित हुई हैं। यद्यपि ऐसे समय में जब कि एक ओर रूशो जैसा विचारक विकसित हो रहा था मान्टेस्क्यू के मतवाद को महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता। न ही उसके द्वारा नियमित प्रभावों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उसके विचारों ने राजनैतिक सूक्ष्मवादी विचारों को नष्ट किया। ऐसा कहना अयथार्थ और गलत होगा क्योंकि गौडविन (Godwin) की पोलिटिकल जस्टिस (Political Justice) नामक पुस्तक में ये सभी अयथार्थवादी विचार एक साथ मिल जाते हैं। हाँ यह अवश्य है कि इसके बाद से यह स्पष्ट लगने लगता है कि सूक्ष्म राजनैतिक विचारों को केवल आत्म रक्षावादी प्रवृत्ति का अनुकरण करना पड़ा है। मान्टेस्क्यू (Montesquieu) की इस विचार धारा ने राज्य के मशीनवादी रूप का खण्डन करके ऐसे सत्यों को प्रतिष्ठित कर दिया था कि उनके आधार पर बर्क ने मशीनवादी विचार (Mechanical) की त्रुटियों का विश्लेषण करके उसकी सीमाओं को प्रस्तुत करने की प्रेरणा प्रदान किया। साथ ही उसने बर्क को ऐसी दृष्टि प्रदान की जिसके अनुसार उसने प्रस्तावों के प्रति श्रद्धा और विधायकों को पूर्वजों की बुद्धि का प्रतीक-स्वर, मानने की प्रेरणा शक्ति दी। मान्टेस्क्यू के सम्बन्ध में बर्क ने लिखा है—'वह ऐसा महानतम प्रतिभाशाली व्यक्ति था कि उसने अपने युग को अपनी प्रतिभा से प्रकाशित और प्रदीप्त कर दिया था। वस्तुतः बर्क का उसके सम्बन्ध में इतनी कुशल प्रशस्ति गान करना बड़ा स्वाभाविक था। यदि देखा जाय तो मान्टेस्क्यू (Montesquieu) इससे भी अधिक महान व्यक्ति था। उसने विधायकों (Legislation) को सामाजिक क्रान्ति का मूल यंत्र माना था। इस प्रकार मान्टेस्क्यू ही वह पहला व्यक्ति है जो उन प्राचीन पद्धतियों के उन्नयन का अधिष्ठाता माना जा सकता है जिनके महत्व को बेन्थम (Bentham) ने बाद में बड़े जोर-शोर से दर्शाने की चेष्टा की थी।

मान्टेस्क्यू के पूर्व किसी भी अन्य विचारक ने शासन के वास्तविक लक्ष्य के रूप में स्वाधीनता (Liberty) की महत्ता को स्वीकार नहीं किया था। स्वयम् ब्लेक स्टोन (Blackstone) जैसे विचारक ने विनेरियन (Vinerian) में अपने उद्‌घाटन भाषण में मान्टेस्क्यू (Montesquieu) के विचारों को ही उद्धरित करते हुए अपने मत का प्रतिपादन किया था। मान्टेस्क्यू (Montesquieu) ने उस खतरे के प्रति भी सूचित कर दिया था जो मात्र प्रतिक्रियावादी सिद्धान्तों का अनुकरण कर सकते थे और जिनकी अभिव्यक्ति फिलाडेल्फिया कन्वेशन में (Philadelphia Convention) और बेन्थम और जेम्स मिल (Bentham and James Mill) के विचारों में पूर्ण रूप से बाद में हुई थी। सबसे महत्वपूर्ण बात इस सम्बन्ध में यह है कि उसने अँग्रेजी संविधान की बड़ी प्रशंसा की थी। उसने ब्रिटिश संविधान की संभावनाओं की कल्पना के प्रति शंका तो की थी, किन्तु उसमें निहित शक्ति विभाजन (Separation of Power) की क्षमता के मर्म को भी उद्‌घाटित किया था। उसकी छठीं पुस्तक के ग्यारहवें अध्याय का सार तत्व ही ब्लैक स्टोन (Blackstone) और डी लोल्मे (De Lolme) के विचारों के केन्द्र विन्दु हैं। इसी अध्याय के आधार पर उन्होंने अपने मतवाद की वह विशाल रचना की थी जो उन सिद्धान्तों पर आधारित एवम् संदेहास्पद होते हुए भी उक्त समय के पूर्व सम्पूर्णतया प्रतिष्ठित नहीं किये जा सकते थे। इन दोनों व्यक्तियों द्वारा प्रतिपादित मतवाद मूलतः ऐसे कल्वर का ढाँचा प्रतीत होता है जो कि मान्टेस्क्यू के विचारों में निहित संकेतों पर बनाया तो गया था किन्तु जिसमें सैद्धान्तिक दृढ़ता बिल्कुल नहीं के बराबर थी। काक (Coke's) द्वारा प्रतिपादित मतवाद भी उसकी पुस्तक सेकन्ड इनस्टीट्यूट (Second Institute) के बताये हुये संकेतों पर ही आधारित है। इन विभिन्न मतवादों के सम्बन्ध में मात्र यह कह देना कि वे गलत हैं उपयुक्त नहीं है। इसके विपरीत महत्वपूर्ण बात यह है कि मौन्टेस्क्यू के मतानुसार ऐसी बड़ी भव्य विचारधारा उत्तेजित हुई और इस प्रकार के प्रयास कार्यान्वित हुए। जिस प्रकार मनुष्य की कुकृतियाँ उसके मरने के बाद भी जीवित रहती हैं, ठीक

उसी प्रकार मॉन्टेस्क्यू के प्रतिरोध और संतुलन (Checks and Balances) के सिद्धान्त का कुत्सित प्रभाव भी पड़ा था। बात चाहे जो हो, यह ब्लैक्स्टोन (Blackstone) की कमेन्टेरीज (Commenteries) नामक पुस्तक का ही प्रभाव था (१७६५-६) कि बेन्थम ने फ्रेगमेंट आन गवर्नमेंट (Fragment on Government) नामक पुस्तक (१७७६) में लिखी थी। वस्तुतः बेन्थम की इस पुस्तक के आधार पर हमें ब्रिटिश संविधान (British Constitution) के यथार्थवादी पक्ष का अध्ययन करने का अवसर मिलता है।

रूशो (Rousseau) इस विचार के विरोधी परम्परा का नायक है। उसके विचार भी ब्रिटिश संविधान से प्रभावित थे। अपने उन पूर्व विचारकों से रूशो के विचार इसलिये भिन्न थे क्योंकि उसके पूर्व के विचारक ब्रिटिश संविधान से प्रभावित तो थे किन्तु उन्होंने उनका समर्थन करने से इंकार कर दिया था। रूशो वस्तुतः लाक का शिष्य था। उन दोनों के विचारों में सिवा इसके कि लाक शासन सत्ता की सीमाओं को मिटाने के पक्ष में था—और कोई विशेष अन्तर नहीं था। इन सीमाओं को मिटाने में लाक लोकहित की भावना से संचालित होता था। रूशो इसका विरोधी था और उसने यह घोषित किया था कि वर्तमान शक्ति विभाजन (Seperation of Power) यूरोप की राजनीति को पिशाच की भाँति आंतकित किये है! इसीलिये उसने जनता को प्रभुत्व शक्ति (Sovereignty) का अधिकारी माना था। ऐसा करने में उसका एकमात्र उद्देश्य समस्त कृत्रिम स्वार्थों का अन्त करने में जनता को पूर्ण सफलता देना था। जन सत्ता को ही उसने जन अधिकार के रूप में स्वीकार किया था और उन समस्त विभिन्नताओं का समर्थन किया था जो ऐसी स्थिति में स्वाभाविक रूप में उपजती है। अब यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि बर्क ने इन सिद्धान्तों की इतनी कटु भर्त्सना क्यों किया है। रूशो की सहज मानव के प्रति उद्वेलित सहानुभूति और उसकी लोक सत्ता (Popular Power) की तत्कालिक सम्भावनाएँ बर्क को पागलपन एवम् सनकी बातें जैसी लगती थीं। उसने इन्हीं आलोचनाओं के नाते ही उन सिद्धान्तों के समर्थकों को अहंकारवादी और मिथ्यावादी के रूप में स्वीकार किया है और कुछ दिनों तक ठोकर खाता रहा। किन्तु बर्क यह भूल गया था कि

रूशो (Roussaue) की सफलता का कारण अमेरिका की सफल जनक्रान्ति थी। बर्क के सिवा शायद ही कोई ऐसा विचारक हो जिसने अमरीकी क्रान्ति को सफल होने में इतनी सहायता पहुँचाई हो। वस्तुतः अमरीका की उस जन क्रान्ति ने ही उस परम्परा को स्थापित किया जिसे बाद में यूरोप के देशों ने जनतंत्रवाद (Democracy) के नाम से स्वीकार और ग्रहण किया। यूरोप के राजनीतिज्ञों को अमरीका की इस परिपक्व दूरदर्शिता को देखकर थोड़ा-बहुत विस्मय भी होता था। वे अमरीकी पद्धति में नृशासता के विरुद्ध व्याप्त सतर्कता को देखकर उसकी शालीन गम्भीर परम्पराओं के साथ जन प्रभुत्व (People Sovereign) के प्रति व्यक्त सहानुभूति के प्रति भी उदार और उत्सुक थे। अम्रीका ने जिस प्रकार अपने को स्वतन्त्र बना लिया था उसका यूरोप की सम्पर्क सदाशयता ने खुले हृदय से स्वागत किया। अमरीका की स्वाधीनता के बाद ऐसा लगने लगा कि रूशो के बताये आदर्शों को कार्यान्वित करके इतनी सफलता प्राप्त की जा सकती है जितनी कि मात्र मानसिक चिन्तन द्वारा सम्भव नहीं है। रूशो ने इस अमरीकी विद्रोह द्वारा ब्रिटेन को एक नया सन्देश दिया था। बर्क ने अपने मतवाद में प्रत्येक उस सन्देश का खण्डन किया था, जिसे कि रूशो के सिद्धान्तों ने प्रतिपादित किया था। रूशो के सिद्धान्तों ने निश्चय ही उस क्षण सिवा विचारों में उत्तेजना प्रदान करने के, और कोई विशेष योग नहीं दिया था। किन्तु यह भी सत्य है कि रूशो के सिद्धान्त जिस क्षण से प्रकाश में आये ठीक उसी क्षण से उन सिद्धान्तों ने ब्रिटिश विचारधारा के अन्तरंग में बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य किया। यद्यपि रूशो के सिद्धान्तों को तत्वदर्शन (Metaphyicsal) के आधार पर कोई विशेष महत्व नहीं मिल पाया था, फिर भी बेन्थम के हाथों उस सिद्धान्त के बड़े सफल परिणाम निकले। बेन्थम की विचारधारा रूशो के निष्कर्षों से भिन्न नही है, वरन् बेन्थम ने उन्हीं निष्कर्षों को दूसरे शब्दों और पृथक भाषा में प्रस्तुत किया है। ऐसी स्थिति में या तो ह्यूम (Hume) और ब्लैकस्टोन (Blackstone) जैसे चिन्तकों की आशावादिता को समाप्त करके आगे बढ़ा जा सकता है यो अतीत की गौरव गरिमा को स्वीकार करके बर्क के मतवाद का समर्थन करके आगे विकास किया जा सकता है।

यह जानना सरल है कि उपर्युक्त विचारधारा इतनी उत्तेजना प्रदान करने वाली कैसे हो सकी। मौन्टेस्को (Montesquieu) ने ब्रिटिश संविधान की ऐसे समय प्रशंसा की थी जब संसार के अधिकांश लोग उसकी प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति से असंतुष्ट और निराश हो चुके थे। वर्षों तक उन विचारों के कारण कोई भी क्रान्ति संभव नहीं थी। फिर भी एक स्वभाविक असंतुष्टता और नई पद्धति की खोज अनवरत रूप से जारी रही। इस प्रवृत्ति के दो विभिन्न व्यक्तित्व अर्थात् बड़ा पिट (Elder Pitt) और विल्कीज (Willkies) जीते-जागते प्रतीक माने जा सकते हैं। बड़ा पिट (Elder Pitt) की प्रगति जनमत के व्यापक उत्साह को विनष्ट करके व्यक्त हुई थी। इसीलिये उसके लिये व्यापक जनमत का अर्थ केवल सनकपूर्ण उन्माद ही रह गया था। विल्कीस (Willkies) इसके विपरीत उस बढ़ती हुई जनजाग्रति का प्रतीक है जो धीरे-धीरे सम्पूर्ण क्षमताओं के साथ विकसित हो रही थी। फ्रांस की पद्धत्ति यद्यपि नितान्त विदेशी थी फिर भी वह एक तर्कसंगत परिणति के रूप में व्यक्त हुई थी और वह अँग्रेजी जीवन में सामंजस्य स्थापित करना चाहती थी। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिये कि इन समस्त क्रान्तिकारी विचारों के बावजूद भी ब्रिटिश संविधान का ढाँचा कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। वस्तुत: उग्र क्रान्तिकारी भावना को अनुशासित एवम् तिरस्कृत करने में उसने बड़ा योग दिया था। जब तक कि पिट के विरोधों और लड़ाईयों की पृष्ठभूमि में निहित अभिशापों का साक्षात्कार नहीं हुआ था, तब तक मानव अधिकार सम्बन्धी सिद्धान्तों का पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त हो सका था। किन्तु जब बड़े पिट (Pitt the Elder) की अस्वीकृतियों का हवाला वास्तविक रूप में मिला भी तो उस समय तक समस्त संभावनाएँ विलुप्त हो चुकी थीं। बात जो भी हो मोन्टेस्क्यू (Montesquiue) द्वारा प्राप्त दृष्टि ने अपेक्षाकृत औरों से कहीं अधिक प्रोत्साहन और शक्ति प्रदान किया था। प्रस्तुत दृष्टि के विकास में यद्यपि रूशो के बहुत से तर्कों का जवाब देना कठिन है फिर भी उसने विचार के क्षेत्र में निश्चय ही अपना स्थायी रूप प्रस्तुत किया। फ्राँस की क्रांति के पहले यदि देखा जाय तो चालीस वर्ष तक का समय एक प्रकार से बेन्थम के विचारों के निर्माण काल का प्राक्कथन काल बन चुका था।

इस काल में जितने भी मतवाद प्रचलित हुए उनकी प्रकृति को देखकर यह भली-भाँति कहा जा सकता है कि उनमें से प्रायः सभी नितान्त विकृतिपूर्ण और अव्यवहारिक थे। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि यदि फ्राँस के विचारकों का प्रभाव अँग्रेजी विचारकों पर बिल्कुल न पड़ता तो वह ही बहुत अच्छी स्थिति होती।

(२)

वस्तुतः वह पुस्तक जिसमें सर्वप्रथम क्रान्ति और परिवर्तन का आभास मिलता है १७५७ ई० में प्रकाशित हुई थी। आज, जान ब्राऊन (Jhon Brown) द्वारा लिखित एस्टीमेट आव दी मैनर्स एण्ड प्रिंस्पिल्स आव दि टाईम्स (Estimate of the Manners and Principles of the Times) पूर्ण रूप से विस्मृत के गर्भ में लुप्त हो चुकी है। किन्तु सत्य यह है कि जिस समय यह प्रकाशित हुई उस समय इस पुस्तक का एक वर्ष में ही सात संस्करण हो गये थे। उस समय उसका अनुवाद भी तत्काल ही फ्रांसीसी भाषा में भी हो गया था। ब्राऊन एक मामूली पादरी था और वारबर्टनवादी (warburtonian) परम्परा में बहुत छोटे पदवाला व्यक्ति था। इस पुस्तक के पूर्व उसकी शेफटेस्बेरी के ऊपर लिखी गई कैरेक्टरस्टिक्स (Characteristics) नामक पुस्तक का एक अंक भी प्रकाशित हो चुका था। उसकी पुस्तक मॉन्टेस्को की पुस्तक के आधार पर आयोजित की गई थी। उसने अपनी पुस्तक में मॉन्टेस्को के नाम का उल्लेख बड़े आदर के साथ किया है। यही कारण है कि बहुत से लोगों ने उसकी पुस्तक का स्रोत भी मान्टेस्को की पुस्तक से सिद्ध करना चाहा है। इस पुस्तक में भी लीवी और मैकियावेली (Livy) and (Machiavelli) के प्रति उतना ही विश्वास और निष्ठा व्यक्त किया गया है जितना कि मौन्टेस्क्यू (Montesquiue) ने किया है। उसी प्रकार साधारणीकरण और व्यापक सीमाओं का भी उल्लेख किया गया है। ब्राऊन ने अपनी ज्योमितीय शैली और उसकी स्पष्टता पर इतना अधिक विश्वास प्रदर्शित किया है कि उसने अपने निष्कर्षों के मूलभूत तथ्यों पर कहीं कोई प्रकाश नहीं डाला है। ब्राऊन की पुस्तक समकालीन

असंगतियों पर लिखा गया निबन्ध है। उन असंगतियों को मानवतावादी (Humanetrianism) दृष्टि से देखना भी वह उचित समझता है। किन्तु इसके बावजूद भी वह स्वाधीनता के प्रति जिज्ञासा का समर्थक है और यह मानता है कि मानव स्वतन्त्रता उस समय केवल भ्रष्टाचार के गर्त में डूब चुकी है, और वह मात्र व्यसन और आत्मश्लाघा की सीमा तक ही जीवित रह सकी है। उसने विश्वविद्यालयों में व्याप्त निरंकुशता की निन्दा इतने सख्त शब्दों में किया है कि स्वयम् गिबन (Gibbon) और एडमस्मिथ (Adam Smith) ने भी इतनी घोर निन्दा नहीं की है। उसने अभिरुचि और शिक्षा की पतनशीलता की भी घोर निन्दा की है। लोग प्रायः ह्यूम (Hume) की साधारण बातों को केवल चमत्कार के रूप में टाल जाते हैं क्योंकि बिना ऐसा किये वे बिशप वार बर्टन (Bishop Warburton) की महानतम कृतियों का रसास्वादन लेने में असमर्थ रह जाते हैं। उस समय की राजनीति भी केवल निजी स्वार्थों के साधन का माध्यम बन गई थी। चर्च, थियेटर और कला की पूर्ववत् सदाशयता समाप्त हो चुकी थी। उस काल की उन्मादग्रस्त प्रवृत्तियों से प्रायः सभी परिचित हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र—जैसा कि १७४५ की घटना से स्पष्ट है—इतना लचर और कमज़ोर हो चुका थी कि एक मुट्ठी भर पहाड़ियों (Highlanders) ने समूचे राज्य पर आक्रमण कर दिया था और उसके अन्तःपुर तक बिना किसी रोक-टोक के पहुँच गये थे। समाज के उच्चवर्ग की प्रत्येक व्यवस्था में जुआ बुरी तरह फैला हुआ था। फौज के बड़े-बड़े अफसरों का अधिकांश समय फैशन में व्यतीत होता था। नौका विभाग केवल इनाम के रुपयों पर कार्य करने की प्रवृत्ति अपना चुकी थी। यही नहीं उस समय की पारिवारिक प्रीति रीति भी निम्न स्तर पर कार्य कर रही थीं। यात्राओं की सुविधा होने के नाते इंगलैण्ड में एक अच्छा-खासा वर्ग ऐसे अँग्रेजों का बन गया था जो इटेलियन-इंग्लिशमैन के रूप में जाने जाते थे। ब्राऊन ने अपनी पुस्तक में केवल गरीबों चिकित्सा-व्यवसाइयों और निम्न मध्यवर्ग के व्यक्तियों को, इन कुसंस्कारों से युक्त मानकर है। किन्तु इस थोड़े से वर्ग को उन भ्रष्टाचारों से मुक्त होकर रहने को वह महत्वहीन समझता है। इस सम्बन्ध में उसने कहा है कि—'प्रत्येक राज्य के

पतन या उसके समर्थन, उसकी शक्ति का प्रतीक या दुर्बलता का आधार, प्रशासित जनता के सिद्धान्त और शिष्टाचारों द्वारा प्रचालित न होकर शासक वर्ग के आचरण और सिद्धान्तों द्वारा प्रचालित होते हैं।'

उस समय की पतनशीलता और विद्रूपता का उल्लेख करते हुए ब्राऊन ने उसकी तुलना कार्थेज (Carthage) और रोम (Rome) के पतन की पूर्व स्थिति से की है। उसे यह स्पष्ट दिखलाई पड़ता था कि यदि ब्रिटेन को बचाया न जायगा तो निश्चय ही वह फ्रांस से प्रभावित होकर विनाश के गर्त में चला जायगा। जहाँ तक इस पतनशीलता के कारण का सम्बन्ध है उसने उसका सारा दायित्व वालपोल पर डाला है। उसके साथ-साथ उसने फैलती हुई धर्म निरपेक्ष प्रवृत्ति को भी इन विकृतियों का मूल कारण माना है। उसके मतानुसार इस विकृति का निराकरण केवल बोलिंगब्रूक द्वारा प्रतिष्ठित पेट्रियाट किंग (Patriot King) की पद्धति ही कर सकती थी। बोलिंगब्रुक का पेट्रियाट किंग ही का रूप है जो दूसरे प्रकार से बड़े पिट (Elder Pitt) के रूप में शक्ति सम्पन्न होकर व्यक्त हुआ है। जिस वस्तु ने अँग्रेजों को सबसे अधिक उत्तेजित कर दिया था वह क्लास्टर सेवेन (Kloster Seven) के सम्मेलन की संक्रमणात्मक भविष्य वाणी थी। किन्तु वुल्फ (Wolf) और क्लाईव (Clive) ने जब सम्राट की अपमानित प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित कर दिया तो उसका परिणाम यह हुआ कि ऐसा लगने लगा कि जैसे ब्राडन स्वतः स्वाभाविक मृत्यु का ग्रास बन कर समाप्त हो चुका है। इस भविष्यवाणी से भी अधिक रोचक वस्तु का प्रमाण तो इससे लगता है कि लोगों ने पुनः मॉन्टस्को (Montesquieu) का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। अँग्रेजी स्वाधीनता (English Liberty) के विषय में उसका यह मत था कि उक्त स्वाधीनता का रूप वहाँ की जलवायु का परिणाम है। यही कारण है कि उसमें कुहरे का आवरण और ढीला-ढालापन स्वतः स्वाभाविक रूप में वर्तमान है। निश्चय ही राष्ट्रों का पतन होता है किन्तु इंगलैण्ड की व्यापार सम्बन्धी प्रभुता उसके बुढ़ापे का परिचय देती है। उसका निश्चित परिणाम यह हुआ कि प्राकृतिक सादगी की अपेक्षा विलासता की ओर लोग अधिक उन्मुख होने लगे।

प्रकृति ने उनके ओज और पौरुष की हत्या भी कर दी। ब्राउन (Brown) में कोई भावोत्तेजना नहीं है। इसके विपरीत उसकी कृतियों में गाल्सवर्दी कृत आईलैण्ड फोरिस (Island Phorisses) नामक पुस्तक के समान सरलता और सुगमता है। इसीलिये उसके विरोध में पादरियों ने समकालीन विकृतियों की ओर अधिक ध्यान दिलाया है। इस पुस्तक में असंदिग्ध तथ्यों को एकत्रित करने का प्रयास किया गया है और यह दिखलाने की चेष्टा की गई है कि सम्पन्नता एवम् संतुष्टता का युग समाप्त हो गया है। किन्तु ब्राउन में, रूशो (Rousseau) ने सत्य सम्बन्धी जिन जिज्ञासाओं को प्रस्तुत किया था उसका समर्थन मिलता है। न तो वह उन समस्याओं का निदान ही बता सका है और न उनको अवहेलना ही कर सका है। उसे केवल यही दिखाई पड़ा है कि पिट (Pitt) चाहे जैसे भी हो इस समय सर्वशक्तिमान व्यक्ति है इसीलिये उसने उसका समर्थन भी किया है। किन्तु जहाँ वह जनमत को महत्वहीन सिद्ध करने की चेष्टा करता है वहीं वह स्वयम् शक्ति के अर्थ का सार नष्ट कर देता है। परिणामस्वरूप वह पिट की शक्ति स्रोत का भी खण्डन कर देता है। इसीलिये बर्क लिखित प्रेजेन्ट डिस्कन्टेन्ट (Present Descontent) के महत्व को कोई भी अन्य कृति नहीं पा सकी है। इन परिस्थितियों के अतिरिक कोई अन्य आधार नहीं है जिसपर जूनियस (Junius) की घृणापूर्ण विचार पद्धत्ति को उचित सिद्ध किया जा सके।

ह्यूम (Hume) मॉन्टेस्क्यू (Montesquću) का मित्र था। वह उससे बीस वर्ष छोटा था फिर भी उसकी कृति एस्पिरिट डेस ल्वायस (Esprit des Lois) को स्काटलैण्ड में बड़ी ख्याति मिली थी। स्काटलैण्ड में इस पुस्तक की महत्ता पर एडम फर्गूसन (Adam Ferguson) नामक व्यक्ति कि दृष्टि पड़ी जो कि संतुलित व्यवस्था पर एक बहूमूल्य रचना लिख चुका था और एडम स्मिथ (Adam Smith) और ह्यूम (Hume) के विचारों से बहुत प्रभावित था। वह एडिनबरा यूनिवर्सिटी के दर्शन विभाग में प्राध्यापक था और अपने समय में बड़ी ख्याति पा चुका था। उसमें बड़ी ही संभ्रान्त शैली में अपने विचारों को प्रस्तुत करने की अद्वितीय शक्ति थी। इस प्रकार वह दूसरों

के विचारों की बड़ी मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत करता था। उसकी कृति 'ऐन एसे ऑन दि हिस्ट्री आव सिविल सोसायटी (१७६७)—(An Essay on the Hitory of Civil Society) (1767) जो लगभग पचीस वर्षों तक बड़ी विख्यात पुस्तक के रूप में बहुचर्चित रही और जिसके छः संस्करण बड़े धूम से बिक गये—वस्तुतः मॉन्टेस्क्यू (Montesqueu) के विचारों से कहीं महान् विचारक हेल्वीटियस (Helvetius) के विचारों के समर्थक थे। यद्यपि ह्यूम Hume) स्वत: बड़ा ही सहज और उदार प्रकृति का व्यक्ति था किन्तु वह भी उस पुस्तक के विचारों को दबा देने में विशेष योग लेने लगा था। अन्त में हार कर फर्गूसन ने मॉन्टेस्क्यू (Montesqueu) के विचारो का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया और उसकी स्थापनाओ को व्यापक स्तर पर रखने की चेष्टा की। वह यह जानता था कि आदिवासी जीनन के अध्ययन से ही वर्तमान शासन सत्ता के मौलिक स्रोतों का पता लग सकता है। वह यह भी जानता था कि प्राकृतिक स्थिति (State of Nature) के प्रति अनावश्यक रूप में आग्रहशील होने में कौन-कौन-सी त्रुटियाँ हैं। एडम स्मिथ से वार्तालाप करने के बाद वह कर्तव्यों के विभाजन सम्बन्धी सिद्धान्तों में सामाजिक मूल्यों पर विशेष रूप से आग्रहशील है। वह मानव समानता की मूल शक्ति (Original Equality of Man) के प्रति किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं प्रकट करता। वह यह मानता था कि उसके युग का विलास अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है और अब उसकी उपयोगिता भी नष्ट हो चुकी है। सम्पत्ति को वह सन्तान की सुरक्षा सम्बन्धी ऐसी पैतृक भावना मानता है जिसमें कई सहभोक्ता समान रूप से भाग लेकर व्यवस्था स्थापित करते हैं। जलवायु सम्बन्धी नये पक्ष पर भी मोन्टेस्क्यू ने (Montesqueu) विशेष बल दिया है। उसका यह आग्रह तत्सम्बन्धी विचारों को उसी प्रकाप प्रौढ़ता प्रदान करता है जैसे जलवायु के सहयोग से विभिन्न फल पक का रसपूर्ण हो जाते हैं और स्वाद में वृद्धि पैदा करते हैं। ठीक इसी प्रकार शासन सम्बन्धो व्यवस्था में प्रचलित निरंकुशता की परम्परा को उसके विचारों से प्रभावित होकर कुछ सरल और सुगम रूप धारण करना पड़ा। परिणाम स्वरूप—जैसा कि ह्यूम (Hume) के विचारों से

स्पष्ट है—धर्म सम्बन्धी पुरोहित का महत्व भी अन्धविश्वास के रूप में एक अलग संस्था बनकर विकसित होने लगा और राजनीति के क्षेत्र में उसका हस्तक्षेप दिन पर दिन कम होने लगा। स्वाधीनता के सम्बन्ध में उसका यह निश्चित मत था कि उसकी रक्षा सदैव गतिशील विरोध (Continued opposition) और विरोधियों की संख्या पर ही निर्भर करता है। स्वाधीनता (Liberty) सहमत व्यक्तियों के कम से कम विरोधाभास को नहीं कहते क्योंकि ऐसी स्थिति में कोई भी सशक्त शासन पद्धति कार्य करने में सफलता नहीं प्राप्त कर सकती। ऐसी स्थिति में निश्चय ही उसके पास वह शक्ति और क्षमता नहीं थी जो यूलिसेस (Ulysses) के धनुष को खींच सकती। यही कारण है कि मान्टेस्क्यू (Montesquieue) के मत काफी पीछे रह जाते हैं। इस्पिरिटदेस ल्वायस (Espirit Des Lois) के लिखने में बीस वर्ष लग गये थे और उसके महत्व को समझने के लिये यह भी आवश्यक था कि सैविग्नी (Savigny) जैसे विद्वान उसके रहस्यों को ठीक-ठीक जानने के लिये काफी शोध और चिन्तन करते, क्योंकि बिना उसके उस पुस्तक के वास्तविक रहस्य को जानना कठिन था। बाह्य रूप से उसके विचारों को प्रचारित करने वाले कभी भी बन्द कमरों में बैठ कर उसके महत्व को नहीं समझ सकते थे और न वे राजनैतिक चिन्तन द्वारा किसी भी प्रकार की नयी कड़ी जोड़ने में समर्थ ही हो सकते थे।

(३)

इस युग में सबसे उपयोगी खोज वैधानिक कानूनों के शिक्षार्थियों द्वारा किया गया था। ब्लैक स्टोन (Black Stone) द्वारा लिखित कमेन्ट्रीज आन द लाज़ ऑव इङ्गलैण्ड (१७६५-६६) (Commenteries on the Laws of England) नामक पुस्तक के प्रकाशित होते ही उसे ऐसी प्रमाणिकता मिली जैसी कि ब्लैक स्टोन के पहले कोक (Coke) को मिली थी। ब्लैक स्टोन के विषय में बेन्थम ने कहा था कि—"यह वह व्यक्ति है जिसने विभिन्न संस्थाओं के लेखकों को न्याय सम्बन्धी भाषा पढ़ाई है और उन्हें इस योग्य बनाया है कि वह भी संभ्रान्त लोगों एवम् विद्वानों की भाषा में अपने विचार प्रकट करने

का समर्थन प्राप्त कर सकें।" यही नहीं प्रोफेसर डीसी (Diecy) ने इस सम्बन्ध में कहा है कि—"प्रस्तुत पुस्तक हमें शासन सत्ताओं और पद्धतियों के विषय में उचित ज्ञान और रचनात्मक विद्या से प्रबुद्ध करती है।" ब्लैक स्टोन (Black stone) के विषय में उनका परम्परानिष्ठ वकील होना हमारे लिये उतना महत्व नहीं रखता जितना कि यह तथ्य कि वह राजनीति का प्रगाढ़ विद्वान और सचेष्ट दार्शनिक था। ऐसा स्वीकार कर लेने पर उसके मन्तव्यों और लक्ष्यों का हमे पूरा-पूरा परिचय मिल जाता है। यह अँग्रेजी विधान ही का परिणाम था कि वह इस पुस्तक के लिखने के साथ ही आक्सफोर्ड की प्रोफ़ेसरी से सहसा "कोर्ट आफ कामन प्लीज़" (Court of Common Pleas) का जज नियुक्त कर दिया गया। उसने पार्लियामेन्ट की सदस्यता को स्वीकार करना सरकारी वकील (Solicitor General) होने से कहीं महत्वपूर्ण मानकर सरकारी वकील के पद से त्याग पत्र भी दे दिया था। इसलिये उसके लिए अपने समय की परिस्थितियों से असंतुष्ट होना असंभव था। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो उसकी पहली पुस्तक "कमेन्ट्रीज आन दि लाज आफ इङ्गलैंड (Commenteries on the Laws of England) का महत्व मात्र इतना है कि उसने अँग्रेजी विधान सम्बन्धी कानूनों (English Constutional Laws) की व्याख्या करके वैधानिक कानूनों में छिपी विद्वता के रहस्यों का सम्पूर्ण उद्घाटन किया है।

वैधानिक कानून (Constitutional Laws) का वास्तविक रूप निश्चय ही ब्लैक स्टोन (Black stone) की पुस्तक में नहीं प्रस्तुत हो सका है। उसका वास्तविक परिप्रेक्ष्य व्यक्तिगत अधिकारों से सम्बन्धित है और उसका वास्तविक रूप वहाँ देखने को मिलता है जहाँ उसने सम्राट और पार्लियामेंट के अधिकारों और शक्तियों का विवेचन प्रस्तुत किया है। उसने जिस दृष्टि विन्दु से विषय का अध्ययन प्रस्तुत किया है वह अपने में एक सम्पूर्ण दर्शन है। उसने कानून को तीन प्रमुख शीर्षकों में विभाजित किया है। प्रथम तो प्राकृतिक कानून (Natural Laws) दूसरे ईश्वर प्रदत्त (Laws of God) और तीसरे राज्य सम्बन्धी नागरिक कानून (Laws of Civil State)

हैं। नागरिक कानून (Civil Laws)—जिसमें वह विशेष रुचि रखता था—के विषय में उसकी परिभाषा देते हुए उसने लिखा है—"नागरिक कानून वह नियम है जो नागरिक आचरण को नियंत्रित और मर्यादित करने के लिये राज्य की सर्वोच्च सत्ता द्वारा प्राप्त किया जाता है। इसके माध्यम में उचित अनुचित की दृष्टि से क्या वर्जित किया जा सकता है, अथवा क्या नहीं किया जा सकता है, इसका भी निर्णय करने की शक्ति संगठित की जाती है।" इसी विषय के बारे में वह आगे चल कर कहता है कि—"यह नागरिक कानून कोई समझौता (Agreement) या मुचलका (Compact) न होकर नियम ही कहा जाता है क्योंकि वह इन दोनों स्थितियों से पृथक और भिन्न है। इस नियम (Rule) का स्रोत वह सार्वभौमिक राज सत्ता (Sovereign) है जिसका मुख्य कर्तव्य ही विधायक अथवा कानून बनाना है। समाज मानव की आवश्यकताओं (wants) और आशंकाओं के आधार पर बनता है। इसीलिये समाज के विकास में यह चीजें मुख्य जड़ के रूप में कार्य करती हैं। प्राकृतिक स्थिति (State of Nature) का विचार ही इतना पाशविक है कि उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार ही नहीं किया जा सकता। साथ ही यह बात भी सत्य ही है कि यह ऐतिहासिक ज्ञान के भी विरुद्ध है। समाज की भावना में शासन सत्ता का भाव तो निहित है ही, इसलिये समाज के विकास या आदिम स्रोत का चाहे जो रूप रहा हो, उसके हर रूप और प्रकार में एक न एक ऐसी शक्ति होती ही है जो निरपेक्ष सर्वोपरि, अपराजेय और अनियंत्रित सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित रहती है। वस्तुतः इसी सत्ता में सार्वभौमिक राजसत्ता के समस्त अधिकार निहित रहते हैं। शासन पद्धति (Forms of Govt.) के रूपों का वर्गीकरण तो अपनी साधारण गति के साथ स्थापित होता है। ब्रिटिश संविधान की यही विशेषता है क्योंकि इसमें इन दोनों तत्वों का उचित सम्मिश्रण समान रूप से व्याप्त है। ब्लैक स्टोन (Back stone) ने इस रूप का वर्णन करते हुए यह स्थापित किया है कि ब्रिटिश राज्य की विधान सत्ता (The Legislature Kingdom) मुख्यतः तीन विभिन्न शीर्षकों में व्यक्त होती है। इनमें से सर्व प्रथम शीर्ष तो सम्राट (King) है; दूसरा धर्म अथवा राज सम्बन्धी या

सामत हैं जो समाज के सामन्त प्रधान सत्ता के परिचायक हैं। इनका चुनाव केवल कुलशीलता की दृष्टि से किया जाता है जिसका एक मात्र आशय उनकी जन्म सम्बन्धी या बुद्धि सम्बन्धी या शौर्य या सम्पत्ति सम्बन्धी विशिष्टता को सम्मानित करना है। इन दोनों के अतिरिक्त राज सत्ता का तीसरा शीर्षक लोक सभा (House of Commons) के रूप में व्यक्त होता है। इस लोक सभा का चुनाव पूर्ण रूप से स्वतंत्र वातावरण में जनता अपने ही में से प्रतिनिधि चुनकर वास्तविक प्रजातत्र के रूप में स्थापित करती है। अस्तु ऐसी लोक सभा जो इन समस्त हितों का सामूहिक प्रतिनिधित्व करती हैं। अँग्रेजी शासन व्यवस्था का मुख्य अंग अर्थात् ब्रिटिश लोक सभा किसी विषय में अन्तिम निर्णय देने की शक्ति रखती है। अस्तु उपर्युक्त तीनों शीर्षकों में से किसी एक में भी कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो किसी भी विषय में किसी को कोई हानि पहुँचा सके या किसी भी कार्य में बाधा प्रस्तुत कर सके क्योंकि इन तीनों में से शेष दो शक्तियाँ किसी भी अनुचित बाधा को तोड़ने की भी शक्ति रखती हैं। इन तीनो शीर्षकों में से प्रत्येक को नकारात्मक शक्ति (Negative Power) मिली है इसीलिये यह किसी भी ऐसे कार्य पर जिन्हें वह अनावश्यक अथवा अवांछनीय समझती है, पूर्ण रूप से रोक लगा सकती है। ब्रिटिश सार्वभौमिक राज सत्ता (British Sovereignty) केवल लोक सभा के अन्तर्गत सम्राट की सत्ता (King in Parliament) के माध्यम से व्यक्त होती है। इस प्रकार सामाजिक अनुबन्धन (Social Contract) के समस्त दैविक और प्राकृतिक स्थापनाओं का खंडन करते हुए वह यह सिद्ध करता है कि समस्त सामाजिक दायित्व और कर्तव्य मनुष्य संस्कार और परम्परा से ग्रहण करता है। वे बाह्यारोपित नहीं हैं। ब्रिटिश संविधान के विषय में वह कहता है कि "इस महाद्वीप की वैधानिक शासन सत्ता इस प्रकार सुसंस्कृत और ढली हुई है कि सिवा ऐसी स्थिति के जबकि उपर्युक्त तीन शीर्षों का संतुलन नष्ट हो जाय अथवा किसी एक और शेष दो वैधानिक शक्तियों में सत्ता सम्बन्धी विद्वेश उत्पन्न हो जाय, कोई अन्य वस्तु संविधान को हानि नहीं पहुँचा सकती।"

किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। बेन्थम (Bentham) ने स्वयं अपनी पुस्तक फ्रैगमेंट आन गवर्नमेंट (Fragment on Govt.) में इसकी व्याख्या बड़े विस्तार के साथ की है। हाउस आफ लार्ड्स (House of Lords) के विषय में बड़ी दार्शनिक भावुकता के साथ उसने कहा है कि यह "सज्जनों का निवास स्थान" (House of Nobility) है और हमारे मिश्रित एवम् समन्वित संविधान की प्रकृति के अनुसार उसका बहुत बड़ा उपयोग है क्योंकि वह सम्राट और जनता के बीच एक ऐसा मध्यस्थ है जो दोनों की अच्छी योजनाओं को सहायता देता है और उनके क्लिष्ट परिधियों को संतुलित करने का प्रयास करता है। यदि हाउस आफ लार्ड्स (House of Lords) को भी साधारण जन समूह के स्तर पर मत देने का अधिकार दे दिया जायगा और वह भी केवल एक मत के आधार पर मात्र प्रतिनिधि चुनने के अधिकारी हो जायँगे तो उनकी विशेष स्थिति को शीघ्र ही क्षति पहुँचेगी और वे लोकप्रिय (Popular) आन्दोलनों में वह बहुमूल्य योग नहीं दे पायेंगे जो वे आज दे रहे हैं।" हाउस आफ कामन्स के विषय में उसकी व्याख्या करते हुए वह कहता है कि "कामन्स अर्थात लोक सभा ऐसे सम्पत्तिशील वर्ग की प्रतिनिधि सभा है जिनके पास इतनी अधिक सम्पत्ति नहीं है कि वे हाउस आफ लार्ड्स के सदस्य बन सकें।" इस सम्बन्ध में सम्राट के कानूनी (Legal) अनुत्तरदायित्वपूर्ण आचरण की उसने व्यापक व्याख्या प्रस्तुत किया है। इस सम्बन्ध में ब्लैकस्टोन (Blackstone) का यह स्पष्ट मत है कि सम्राट किसी भी रूप में कोई गलत कार्य करने के लिये स्वतंत्र है ही नहीं। यही नहीं उसको तो इतनी भी स्वतत्रता नहीं है कि वह कोई गलत बात सोच भी सके। वह कभी भी कोई कार्य अनुचित रूप में कर सकने की इच्छा भी नहीं कर सकता। उसकी ऐसी स्थिति ही है कि न तो वह कोई मूर्खता ही कर सकता है और न अपनी किसी भी दुर्बलता का ही परिचय दे सकता है।" जहाँ वह सम्राट के विषय में यह सब कहता है वहीं वह यह भी स्पष्ट रूप में कहता है कि संविधान ने इतने प्रतिबन्धों को लागू करने के बाद भी सम्राट की व्यक्ति सम्बन्धी स्वतंत्रता को काफी छूट दे रखी है। वस्तुतः वैधानिक रूप से

सम्राट को स्वतन्त्रता दी गई है वह केवल विलियम द नार्मन (William the Normon) की निरंकुशतापूर्ण प्रकृति के समर्थन में ही अधिक है। उसने जार्ज तृतीय द्वारा लुके-छिपे तरीके से प्रचलित भ्रष्टाचार का उतना खण्डन नहीं किया है जितना कि विलियम के लौहपूर्ण निरंकुश आचरण का पृष्ठपोषण किया है। उसकी पुस्तको मे क्रान्ति के महत्व को केवल नैतिक आधार और धार्मिक आधार पर स्वीकार किया गया है किन्तु उसके भिन्न कानूनी रूपों का समर्थन कही नहीं किया गया।

प्रोफेसर डीसी (Diecy) के अनुसार—जैसा कि उन्होंने अपनी पुस्तक कमेन्ट्रीज मे लिखा भी है—यह सारी परिस्थितियाँ केवल भ्रम उत्पन्न करने के लिये ही विस्तृत की गई हैं। यही नही यदि वास्तविकता की दृष्टि से देखा जाय तो भाषा और विचार पक्षो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस सविधान के प्राय: सभी तत्वो को ब्लैकस्टोन (Blackstone) ने बड़े साधारण रूप में ग्रहण किया है। उसका समस्त ढाँचा देखकर यह भी कहा जा सकता है कि उसमें केवल वकीलो के पक्ष की बात ही दुहराई गई है और समस्त नई सस्थाओं को पुराने मान दण्डों के आधार पर प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई हे।" आज इतनी बात ही काफी आपत्तिजनक है। किन्तु ब्लैक-स्टोन (Blackstone) का अपराध आज यहीं तक सीमित नहीं है। वह इससे भी अधिक गहरा और पापपूर्ण है। उसने ब्रिटिश राज दर्शन में विषय तत्वो की उपेक्षा करके रूप तत्वो को प्रश्रय दिया है जिसके कारण संतुलन सिद्धात (Theory of Checks and Balances) सम्बन्धी बड़े ही विरूप मतवाद को प्रश्रय देने की विकृति शक्ति विकसित हो सकी है। उसने कानूनी आधार पर अनियंत्रित सार्वभौमिकता (Unlimited Sovereignty of Law) और यथार्थ पर आधारित नियत्रित सार्वभौमिकता (Limited Sovereignty of Reality) में जो वास्तविक भेद है उस पर न तो प्रकाश ही डाला है और न उसके भेद को ही समझने की चेष्टा की है। उसे यह ज्ञात होना चाहिये कि विधान सम्बन्धी तीन शीर्षकों के विभाजन को किसी भी रूप में एक-दूसरे से निरपेक्ष भाव में स्वतंत्र मानना—विशेष कर ऐसी स्थिति में

जब कि सम्राट और पीयर्स (Peers) सदैव लोक सभा के चुनाओं को अपने वश में करने के लिये हर प्रकार षड़यंत्र कर रहे थे—सर्वथा मूर्खतापूर्ण था। पीयर्स (Peers) के सम्बन्ध में उसकी मिथ्या कल्पनाओं का कोई मौलिक आधार नहीं था, क्योंकि धार्मिक नेता के रूप में उस समय वास्तविकता आर्कबिशप कार्नवालिस (Arch Bishop Catnwalis) और जायदाद की दृष्टि से ड्यूक आफ बेडफोर्ड (Duke of Bedford) के आचरणों द्वारा एक नन्हें से बच्चे के सामने भी स्पष्ट हो चुकी थी। इसी प्रकार लोक सभा (House of Commons) के सदस्यों के सम्मुख जायदाद का आदर्श रखना और मैन्चेस्टर और शीफील्ड (Manchester and Sheefeild) की जनता को उसके आधार पर मत से वंचित करना त्रुटिपूर्ण और अपमानजनक था। ब्लैकस्टोन ने सम्राट के व्यक्तित्व और उसके प्रभाव का जो चित्र प्रस्तुत किया था वह ऐसा था जिसको साकार करने के प्रयास में पिछली कई शताब्दियों से जन जीवन का बहुमूल्य भाग अपने को उत्सर्गित करता आ रहा था। उसने मंत्रिमण्डल, (Cabinet) मन्त्रियों के दायित्व (Minister Responsibility) को एवम् दलगत पद्धति (Party System) के सम्बन्ध में एक अक्षर भी नहीं लिखा है और न उस पर अपना मत ही प्रकट किया है। उसका केवल यही कार्य रहा है कि उसने एक ऐसी पद्धति का निर्माण करना चाहा जो प्रचलित पद्धति से काफी भिन्न थी। उसे कार्यान्वित करने में उसे सफलता भी मिली है। उसने इस शताब्दीके उत्तरार्द्ध भाग में प्रगति और राजनैतिक शक्ति में बाधा डालने वाली समस्त शक्तियों का घोर विरोध और खण्डन भी किया था। ब्लैकस्टोन (Blackstone) ने मानव जीवन और उसकी वास्तविकता की उपेक्षा करके केवल जनमत और वस्तुस्थिति मान लेने के लिये, संगठन करना चाहा। किन्तु इससे कोई सन्तोष नहीं मिल सका।

उस समय की वर्तमान शासन पद्धति को देखते हुए ब्लैकस्टोन के गिनाये गये तत्त्वों में से एक भी व्यावहारिक नहीं था और न विवेचनात्मक अध्ययन करने से उनमें एक कण भी ऐसा था जो आलोचनात्मक जिज्ञासा को शान्त कर सकता। किन्तु प्रस्तुत बातों के आंतरिक जो बात विशेष रूप से विकृत की

परिचायक थी वह उसके द्वारा प्रतिपादित दर्शन था। यही नहीं यदि बेन्थम के शब्दों में बात कही जाय तो यह निस्संदेह रूप से कहा जा सकता है कि ब्लैकस्टोन (Blackstone) को समाज और शासन सत्ता का अन्तर ही नहीं मालूम था। उसकी व्याख्या में प्राकृतिक राज (State of Nature) धारणा के अस्तित्व सम्बन्धी और अनास्तित्व सम्बन्धी तर्कों में कोई क्रमबद्ध तार्किक योग नहीं है। मूलतः ब्लैकस्टोन (Blackstone) लाक का मतावलम्बी था। इसीलिये वह ह्यूम (Hume) और मान्टेस्क्यू (Montesque) दोनों के मूल स्रोत से भी परिचित था। किन्तु ब्लैकस्टोन (Blackstone) के संविधान सम्बन्धी अध्ययन में कई ऐसी बुनियादी बातें हैं जो आसानी से समझ में नहीं आ सकतीं। ब्लैकस्टोन (Blackstone) मूलतः लाक के विचारों का समर्थक था। उसे यह भी ज्ञात था कि ह्यूम (Hume) और मान्टेस्क्यू (Montesque) दोनों ने लाक के ही दिखाये मार्ग पर अपने विचारों का गठन किया था। किन्तु यह सब होते हुये भी वह यह नहीं समझ सका कि बिना लाक की सहायता लिये वह अपने विचारों का किस तरह मूल सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत कर सकता था। वह स्वतः लाक (Locke) को स्वभावतः, रूढ़िपथी (Conservative) मानता था। इसीलिये वह यह भी मानता था कि प्रस्तुत संदर्भों में लाक के लिये अधिक क्रान्तिकारी होना संभव नहीं था। अस्तु प्रस्तुत विचार के नाते ब्लैकस्टोन (Blackstone) अनुबन्धन सम्बन्धी सिद्धान्त को ऐतिहासिक दृष्टि से आधारहीन मानता था और उसने उसको स्वीकार भी नहीं किया था। यह सब कहते हुए भी उसके विचारों को प्रस्तुत करने और उनको आधारित करने में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि उसने उन्हीं अनुबन्धन सिद्धान्तो (Contractual Notions) को अपना आधार माना है। लाक के अन्य मतावलम्बियों की भाँति ब्लैकस्टोन ने भी सार्वभौमिक राज सत्ता को निर्विवाद माना है। यही कारण है कि सार्वभोमिक राजसत्ता की बात करते-करते अपनी अनिश्चित और स्पष्ट धारणा के अभाव में वह भौतिक स्तर पर कुछ सीमाएँ बाँधना चाहता है। वह बार-बार बिना प्रतिनिधित्व

(Representation) की मूल भावना को समझे इसकी चर्चा लगातार करता रहता है। यही नहीं, उसने कई विभिन्न तरीकों से समाज में व्याप्त असमानता को भी उचित सिद्ध करने की चेष्टा की है। प्रकृति और सार्वभौमिक राजसत्ता की चर्चा करते हुए कहता है—"प्रभुत्व शक्ति के प्राकृतिक और आधारभूत तत्व तीन हैं—प्रथम, बुद्धिमत्ता (wisdom), दूसरा, कल्याणात्मक और तीसरा, शक्ति समानता।" किन्तु यह सब होते हुए भी उसने कहीं भी अपनी पुस्तक में यह नहीं सिद्ध किया है कि ब्रिटिश संविधान ने शक्ति के प्रयोग में कहीं भी इस विचार को प्रदर्शित किया हो। उसने इसका भी कहीं कोई ऐसा उल्लेख नहीं किया है कि जिससे जायदाद (Property) के निर्माण सम्बन्धी कोई भी मौलिक एवम् नैतिक बात उठाई जा सके। सत्रहवीं शताब्दी की प्रचलित प्रथा के अनुसार कम्यूनिज्म के विषय में उसने लिखा है कि यह सर्वहित के लिये बनाई गई ऐसी व्यवस्था है जिसने समस्त पृथ्वी का स्वामी मनुष्य को माना है। इसी प्रकार जायदाद की व्याख्या करते हुये वह कहता है कि जायदाद की उत्पत्ति और विकास उस स्थिति में होती है जब मनुष्य पृथ्वी का कोई भाग लगातार बिना किसी हस्तक्षेप के अपने अधीन रखता चला आता है और अपने श्रम को, हस्तान्तरित हो सकने वाली सम्पत्ति से पूर्णतया मिला देता है। जहाँ तक उसके इन मतों का सम्बन्ध है वह पूर्णतया लाक के मत का समर्थन है। जहाँ तक इन तथ्यों के आधार पर निष्कर्षों का प्रश्न है वहाँ वह अपने निष्कर्षों में बड़ा अस्पष्ट और विवेकहीन भी है।

अस्तु, इसमें सन्देह नहीं कि इन समस्त विषयों में ब्लैकस्टोन का मत नितान्त भ्रामक और अस्पष्ट धारणाओं से ओतप्रोत है। उसके लिये अपनी पुस्तक को किन्हीं दार्शनिक आधारों पर आधारित करना आवश्यक था क्योंकि उस युग की कुछ प्रथा ही ऐसी थी कि बिना दार्शनिक आधार लिये कुछ भी कहना संभव नहीं था। जब उसने प्रस्तुत पुस्तक लिखी थी तो उसकी समस्त प्रेरणाओं का स्रोत ह्यूम (Hume) था लेकिन ब्लैकस्टोन ने कहीं भी अपनी आतंकित विचार पद्धति के सिलसिले में ह्यूम का आभार नहीं स्वीकार किया है। यही कारण है कि जब वह अपने विचारों की चरचा करता है तो उससे यह स्पष्ट पता चलता है

कि उससे आत्म-उपलब्धि के रूप से ग्रहण करने की चेष्टा ही नहीं है। जिस प्रकार उसने मान्टेस्क्यू (Montesque) के विचारों का उल्लेख अपनी कृति में किया है उससे भी यह सिद्ध होता है कि अच्छे से अच्छे मूल्यों और सिद्धान्तों का महत्व जब किसी अयोग्य व्यक्ति के हाथ में पड़ जाता है तो वह भी अपना सशक्त अस्तित्व खो देते हैं। इस प्रकार जिस बात में ब्लैकस्टोन (Blackstone) महान् माना जाता है वह यह है कि वह अपने विषय में बड़ा विद्वान और पढ़ा-लिखा था। अपनी समस्त कमियों के बावजूद उसने ही यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि कानून की शक्ति का वर्गीकरण करना नितान्त आवश्यक है। उसकी स्वानुभूति अस्पष्ट रूप में मान्टेस्क्यू (Montesqueu) के इस मत से सहमत थी। वह किसी भी कानून के वास्तविक तत्वो के जानने के लिये उस समाज के रीति और रिवाज एवम् ऐतिहासिक संदर्भ में उसके रूपों को जानना परम आवश्यक मानता है। इसी आधार पर उसने अपने सिद्धान्तों को भी ऐतिहासिक पद्धति से देखने की चेष्टा की है। विचारक के रूप में वह आवश्यकता से अधिक आशावादी था। वह अपने काल की व्यवस्था से बड़ा संतुष्ट था। वह उसे किसी भी प्रकार खण्डित भी नहीं करना चाहता था।

द लोल्मे (De Lolme) का व्यक्तित्व इससे भी रोचक है। उसके विषय में सबसे अधिक विचित्र बात यह है कि ब्लैकस्टोन की भाँति वह भी अपनी पुस्तक की विशेषता के प्रति उदासीन था, जब कि उसकी पुस्तक निश्चय ही बहुत महत्वपूर्ण थी। द लोल्मे जिनेवा का निवासी था और १७७५ में बारह महीने तक इङ्गलैंड में उपेक्षा और अपमान का जीवन बिताने के बाद उसने कान्स्टिट्यूशन आफ इङ्गलैंड के नाम से अपनी पुस्तक प्रकाशित की। उसकी पुस्तक जैसा कि उसने स्वयं स्वीकार किया है—कम महत्वपूर्ण नहीं थी। लेकिन वह उससे अधिक लाभ नहीं उठा पाया था। ब्लैकस्टोन (Blackstone) की भाँति वह भी वैधानिक संतुलन प्राप्त करना बड़ा आवश्यक समझता था। यही नहीं वह उस संतुलन को ही स्वाधीनता का गुर मानता था। उस जैसे व्यक्ति के लिये जिसका दिमाग मान्टेस्क्यू (Montesqueu) के विचारों से ओत प्रोत हो और जिसने जूनियस (Junius) और सम्राट (King) के संघर्ष को देखा

हो—ऐसा सोचना अवश्यंभावी था। अपने पूर्वजों अर्थात बर्क (Burke) के पूर्व के चिन्तकों की भाँति उसकी भी अपनी सीमायें थीं। उसका यह मत था कि मानव वासनाओं के आधार पर—जो कि समान रूप से सब में हैं और जिनको किसी भी रूप में हटाया नहीं जा सकता—राज्य के बहुत से कार्य उन्हीं विकृत तत्वो पर आधारित होने के लिये विवश होते हैं। मशीन अपने विभिन्न आचरणों से पृथक-पृथक रूप में प्रभावित करती है। किन्तु मशीन का यह भी गुण है कि इन विभिन्न स्तरो पर अभिव्यक्ति में भिन्न होने के बावजूद भी वह अपनी शक्ति स्रोत में अपरिवर्तनशील होती है।" उसी पुस्तक में उसने अन्यत्र शासन सत्ता की तुलना उस नृत्य मण्डली से की है जिसकी सारी सफलता व्यक्ति पर निर्भर करती है। वह मनुष्य को मनुष्य के रूप में नहीं स्वीकार करता। वह मनुष्य को महज मशीन-व्यवस्था का महत्वपूर्ण पुर्जा मानता है जो अदृश्य और सर्वथा भिन्न शक्तियों द्वारा संचालित होता रहता है। उसकी इस दृष्टि में अमूर्त कल्पनाओं की विकृतियाँ होना स्वाभाविक था। वह ऐतिहासिक शक्तियो को मनुष्य से भिन्न मानता है। प्रत्येक जन समूह का अपना 'स्पार्टकस' (Spartecus) होता है और प्रत्येक गणतन्त्र सिद्धान्त कमजोर होता ही है। अँग्रेजी संविधान इन खतरों से बचने के लिये अनियत्रित लोकमत को सम्राट की सत्ता स्वीकार करके उसकी संभावित त्रुटियो पर रोक लगाने की क्षमता रखता है। इसी प्रकार सम्राट का हित भी संसद को दो भागों में विभाजित करके सुरक्षित कर ली गई है। इन दोनों भवनो में से प्रत्येक शासन सत्ता (Executive) की शक्ति को खण्डित करने का विरोध करता है। किन्तु सम्राट की निरंकुशता को भी संविधान ने संसदीय अधिकारों द्वारा नियंत्रित कर दिया है। प्रेस की स्वतन्त्रता और टैक्स लगाने की सम्पूर्ण शक्ति ससद में होने के कारण सम्राट भी निरंकुश नहीं रह पाता। द लाल्मे का यह सैद्धान्तिक विवेचन यद्यपि उस काल की आदर्शवादी प्रवृत्तियों का काफी सत्य उद्घाटित करता था फिर भी उसके सिद्धान्तों में यथार्थ का अभाव और प्रामाणिकता की कमी स्पष्ट दीख पड़ती है।

लेकिन प्रस्तुत आलोचना के आधार पर द लालमे (De Lolme) ने

जिस अंतर्दृष्टि का परिचय दिया है वह घटाया नहीं जा सकता। उसे यह अनुभव हुआ था कि सम्राट के हाथ में राज शक्ति केन्द्रित होने के नाते ही इङ्गलैण्ड में सामंतवाद (Feudalism) का वह विकृत रूप विकसित नहीं हो पाया था जो योरोप के अन्य देशों में उस समय पाया जाता था। इसका स्पष्ट प्रमाण तो हमें वहाँ मिलता है जहाँ हम यह देखते हैं कि जिस समय फ्रांस के समस्त सामंत एक-दूसरे के विद्वेश और झगड़े में पड़कर खून की होली खेल रहे थे, ठीक उसी समय इङ्गलैंड के समस्त सामन्त एक होकर अपने से अधिक अधिकारनिष्ट सम्राट से राज्य शक्ति हस्तांतरित करने की योजनाओं में लगे थे। उसने यह भी अनुभव कर लिया था कि इस प्रथा और शक्ति का मुख्य कारण इङ्गलैंड में स्थापित स्वतंत्र न्याय सत्ता थी। उसे यह विश्वास हो गया था कि पार्टी पद्धति—(यद्यपि उसने इस शब्द का प्रयोग कहीं नहीं किया है) जहाँ साधारण से साधारण मनुष्य को और उसकी महत्वाकांक्षा को बल देती है वहीं वह कोई ऐसा अनिवार्य सिद्धान्त नहीं प्रतिपादित करती जो सबों में समानता और संतुलन स्थापित कर सके। लाल्मे (Lolme) ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि "वह व्यक्ति प्रशंसनीय है जो जनता में यह विश्वास प्रतिपादित कर सके कि केवल एक नागरिक में आस्था के साथ समस्त सद्भावनाओं को सुरक्षित रखने से उनके हित की बात और भाग्य का निर्णय अधिक स्पष्ट और प्रभावपूर्ण रूप में अभिव्यक्ति पा सकता है।" वह सर्वशक्तिमान प्रेस की स्वतंत्रता देख कर बड़ा विश्वस्त हो गया था। पुनर्निर्वाचन की पद्धति ने जनता के हाथ में इतनी शक्ति दे दी है कि उसका उपयोग करके वह सदैव किसी भी संसदीय सदस्य को बदलने और उस पर रोक लगाने की शक्ति का उचित प्रयोग कर सकता है। उसे इस बात में कोई अविश्वास नहीं था कि संघर्ष द्वारा ही शासन सत्ता की निरंकुशता और अधिकारच्युत स्थिति का प्रतिकार किया जा सकता है। उसका कथन है कि—"संघर्ष ही अन्तिम और वैधानिक तरीका है जिसके माध्यम से किसी भी सत्ता की हिंसात्मक प्रवृत्ति का डट कर विरोध किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में वह आगे यह भी कहता है कि स्वाधीनता ब्रिटिश संविधान में सबसे अधिक सुरक्षित है क्योंकि किसी भी अपराध में अपराध की

पुष्टि का दायित्व सरकार या शासन के हाथ में है। इससे बढ़कर व्यक्ति की स्वतंत्रता (Liberty) का समर्थन किसी अन्य पद्धति में नहीं है। नागरिक शक्ति का सेना शक्ति की तुलना में अधिक जागरूक और शक्तिशाली होना भी इस बात का परिचायक है कि सामान्य जनता के नागरिक अधिकार काफी दृढ़ आधार पर सुरक्षित है। उसका ऐसा मत इसलिये और भी था क्योंकि उसने फ्रांस में इसका कटु रूप देखा था। यह पट तो मात्र इस बात पर उसे बड़ा आश्चर्य था कि इङ्गलैंड ने आखिर कैसे बिना राज सत्ता को विशेष शक्ति प्रदान किये, सेना को इतना पृथक और दूर रखने में सफलता प्राप्त कर ली है, जब कि इसके विपरीत फ्रांस को मात्र इस स्पष्टता के अभाव में भयंकर परिणामों का सामना करना पड़ा था। वह इस बात का भी बड़ा प्रशंसक था कि इंगलैंड के संविधान की यह कुशलता है कि वह एक विशिष्ट अन्तर्दृष्टि के साथ लोक-प्रिय (Popular mind) बोध द्वारा लोकप्रिय विद्वानों को किसी भी हिंसात्मक पथ पर न चला कर उन्होंने बड़े सरल और सुगम ढग से समस्त राज्य के विभिन्न परिस्थितियों को देखकर चलने की दृष्टि देता है यही वह स्थल है जहाँ से सहज मानवीयता के परिप्रेक्ष्य से समस्त शिकायतों का कोई विशेष महत्व नहीं होता। ऐसी ही परिस्थिति में लाल्मे को यह बात स्पष्ट हो गई थी कि यह मौलिक एकता ही प्रजातन्त्र का प्राण है।

उस युग के लिये यह बड़ी स्वाभाविक बात थी कि मंत्रिमंडल (Cabinet) और प्रधान मन्त्री के विषय में न कह कर उनकी उपेक्षा की जाय। किन्तु इससे भी अधिक गम्भीर त्रुटि उससे यह हो गई थी कि उसकी दृष्टि में विल्कीस (Wilkies) के चुनाव ने काफी परिवर्तन ला दिया था इसी कारण वह उतनी स्पष्टता के साथ यह नहीं देख पाया था कि सहसा इन्हीं कुछ घटनाओं के आधार पर ही सामान्य मानव व्यक्ति को सहसा महत्व और प्रमुखता भी मिल गई थी। सर्वसाधारण के लिये लाल्मे का उत्साह और उसकी शक्ति समाप्त हो चुकी थी। इसीलिये वह कभी भी जन साधारण के आधार का जो महत्व है उसे कम नहीं किया है। उसे यह भी विश्वास था कि उसकी पुस्तक को जन साधारण जल्दी नहीं पढ़ेगी। इसीलिये उसकी रुचि भी इनसे भिन्न है। उपेक्षित और पीड़ित

व्यक्ति के लिये शान्तिपूर्ण ढंग से व्यवस्था की माँग करने का अधिकार भी कुछ कम महत्वपूर्ण घटना नहीं थी। इस सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए उसने लिखा है कि—"जन साधारण का एक बहुत बड़ा भाग ऐसा है जो अपने दैनिक अस्तित्व के लिये इतना संघर्षशील है कि उसके पास न तो अवकाश (leisure) है; न उनको उचित शिक्षा मिली है और न ही उनके पास अनेक प्रकार की सूचनाओं का स्रोत ही है जिसके बल पर वे जागरूक होकर अपने इस अधिकार की रक्षा कर सकें।" लोल्मे (Lolme) भी इसी मत का बड़ा प्रबल समर्थक था। उसकी इसी प्रवृत्ति ने उसे एक सीमा तक इतना अन्धा बना दिया था कि वह उस समय के अमरीकी संघर्ष के वास्तविक संदर्भ और अर्थ को समझने में असमथ था। नैतिक स्तर पर वह उसकी उपेक्षा करने के लिये मजबूर भी कर दिया गया था। उसका शासन पद्धति की यांत्रिक प्रक्रिया (Mechanism) के प्रति इतना अटूट विश्वास जम गया था कि वह यह नहीं देख पाता था कि जार्ज तृतीय के शासन सम्बन्धी त्रुटियों से ऊब कर जनता अपनी शक्ति और क्षमता के प्रति कितनी जागरूक हो चुकी थी। वास्तव में वस्तु स्थिति यह थी कि वास्तविक सामाजिक शक्तियों को न तो वह अवसर ही मिल पाता था और न कोई ऐसा मार्ग ही दीख पड़ता था जिसके माध्यम से वह अभिव्यक्ति पातीं। यही कारण है कि द लोल्मे (De Lolme) और बेघाट (Beghot) में इतना भेद बढ़ गया था। द लोल्मे (De Lolme) दृष्टि के अभाव में जार्ज तृतीय की शासन पद्धति के पर्दे के पीछे क्या हो रहा है, यह देखने में असमर्थ था, जब कि बेघाट (Beghot) में इतनी क्षमता थी कि वह उस पर्दे के पीछे की घटनाओं को भी भली भाँति देख सकता था।

(४)

१७६२ में जब रूशो (Rousseu) ने कन्ट्रैक्ट सोशल (Contract Social) प्रकाशित किया था उससे भी पहले इङ्गलैण्ड में उसके सभी क्रान्तिकारी तत्व मौजूद थे। लाक (Locke) ने उस समय तक अपनी देश की जनता को उन सभी तत्वों से परिचित करा दिया था। कमी केवल इस बात की

थी कि लाक ने जो कुछ भी शिक्षा दी थी वह केवल वितृष्णा की थी। वह पुनरुत्थान की भावना से प्रेरित नहीं हुई थी। जब कभी भी जनता राज्य के प्रशासन से असंतुष्ट हुई तब किसी न किसी कोने से प्राकृतिक अधिकारों से सम्बन्धित दीक्षा स्वरूप विवेचन प्रस्तुत होता रहा है। यही कारण है कि चैथम (Chatham) और विल्कीज (Wilkies) के चुनाव में जो घटनायें घटित हुई थीं उन्होंने जन साधारण को अपनी राय देने का अवसर ही नहीं प्रदान किया था वरन् उसके साथ ही यह भी सिद्ध कर दिया था कि रूशो से बहुत पूर्व ही जनता उसके विभिन्न पक्षों से पूर्ण रूप से परिचित हो चुकी थी। स्काटलैंड के एक पुराने गिरजा के पादरी राबर्ट वैलेस (Robert Wallece) ने अपनी वेरियस प्रास्पेक्ट्स (Various prospects) नामक पुस्तक (१७६१) में एक शृङ्खलाबद्ध लेख माला लिखी थी। इस लेखमाला में एक ओर तो माल्थ्यूज (Maltheus) के सिद्धान्त की पूर्व कल्पना, और समस्त सामाजिक शक्तियों का एकीकरण, यही दो मानव मुक्ति के एक मात्र साधन बताये गये थे। हो सकता है कुछ दिनों के अध्ययन के बाद वैलेस ने आधुनिकता के नाम पर जो क्रान्तिकारी आक्रमण प्रस्तुत किये थे वे फीके लगने लगे हों और उनमें विशेष प्रभावित करने की शक्ति समाप्त हो चुकी हो, किन्तु अपने समय में उसने निश्चय ही बड़े क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत किये थे। उसने इस बात पर अपना दृढ़ मत प्रकट किया था कि मानव क्षमता (Capacity of men) और उसकी राजनैतिक सफलता की शक्ति (potential achievement) एवम् समाज से वास्तविक रूप में ग्रहण करने की क्षमता में बड़ा ही असंतुलित भेद पैदा हो गया है। अधिकांश मानव समूह को समाज अज्ञानता के अन्धकार और श्रम की जटिलता में तोड़ देता है। दूसरी ओर प्रभुता के मोह में मनुष्य अपने पड़ोसी को भी हानि पहुँचा कर स्वयम् धनी बन जाना चाहता है। वैलेस (Wallece) ने इन सबका एक मात्र कारण व्यक्तिगत सम्पत्ति माना है। साथ ही उसने कार्य करने की व्यक्तिवादी संगठन प्रक्रिया की भी निन्दा की है। उसके मतानुसार इन समस्त कष्टों के निवारण के लिये एक मात्र सामुदायिक अधिकार और संगठित शिक्षा का विकास सिद्धान्त प्रतिपादित करना ही उचित है। यह सब होते हुए

भी उसने कोई भी बात छिपे ढंग से नहीं कही है। उसने स्पष्ट रूप से यह भी कह दिया है कि उपर्युक्त बातो को स्थापित करने और संभावित क्रान्ति से बचने के लिये शासक वर्ग को चाहिये कि इस आन्दोलन को ठीक रास्ते पर ले जाकर होने वाली क्रान्ति की संभावना में विलम्ब न कर, उन्हें शीघ्र कार्यान्वित कर दें अन्यथा यह फैलता हुआ विष स्वयम् उनके लिये हानिकारक सिद्ध होगा। वह यह नहीं मानता कि मनुष्य की उद्धत शक्ति किसी भी अर्थ में बिना उचित संदर्भ के कुछ करने की चेष्टा करेगी। इसीलिये जितने भी नवयुवक हैं उनमें वह एक नयी स्फूर्ति भर देने के प्रयास के प्रति बड़ा आग्रहशील है। यही नहीं, वह सारी जनता, संसद के सदस्य तथा समाज के विभिन्न वर्ग के लोगों में इस नयी शक्ति और स्फूर्ति को कूट-कूट कर भर देना चाहता था। आज हमें उसके विचार और उसकी पुस्तक उतने महत्वपूर्ण भले न लगे किन्तु उस युग की वर्तमान पीढ़ी में तो इस पुस्तक की बड़ी चर्चा हुई थी और औपनिवेशिक विचार-धारा को एक ऐसी परम्परा मिली जिससे ओवेनवादी (Owenite) विचारकों और सुधारको को काफी प्रोत्साहन मिला। किन्तु इसके साथ यह भी सत्य है कि इस पुस्तक के विचार आज के हमारे युग के समकालीन विचारों से अधिक सम्बन्ध रखते हैं और शायद अपने युग के लिये वे इतने महत्वपूर्ण नहीं थे। यही नही यह पुस्तक समकालीन पीढ़ी के विचारों को भी अधिक उत्तेजित नहीं कर सकी।

रूशो (Rousseau) के पाँच वर्ष बाद हमें इङ्गलैण्ड में उसके प्रभाव दृष्टिगोचर हो सके। ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट है कि जिन लोगों में रूशो के विचार सर्वप्रथम फैले वह विद्रोही वर्ग (Non Conformish) ही था। लगभग पिछले सत्तर वर्षों से इनके विचारों को किसी ने स्वीकार नहीं किया था। शायद ही कोई ऐसा वर्ग इतिहास में मिले जिसने नयी पीढ़ी का इतना सबल समर्थन किया हो जितना कि इस वर्ग ने किया था। यह सब होते हुये भी इन को इस सहयोग का कोई भी फल नहीं प्राप्त हो सका था। जो कुछ थोड़ा-बहुत इनके आन्दोलन का परिणाम निकला भी वह मात्र यह कि टेस्ट ऐक्ट के रूप में इनके विचारों को आर्थिक समर्थन प्राप्त हो सका था। इन विद्रोहियों में से प्रायः

सभी ह्विग दल के सदस्य थे और लाक के विचार इनके बिल्कुल समान धर्मा विचार हो गये थे। इस वर्ग में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लोग शामिल थे और वे काफी प्रकाश में भी आ गये थे। जोजेफ प्रीस्टले (Joseph Priestley) जैसा आदमी जिससे कि रसायनिक शास्त्र को बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं, केवल विद्रोही वर्ग का प्रतिनिधि होकर मानवता के विकास में अपना योग्य दे गया। कुछ वर्षों बाद ब्राउन (Brown) नामक प्रतिक्रियावादी विचार वाले ने अपनी पुस्तक इस्टीमेट (Estimate) में राष्ट्रीय शिक्षा का एक नया ढाँचा प्रस्तुत किया था जिसमें उसने शिक्षा को केवल चर्च (Church) के अन्तर्गत देने का बड़ा जबर्दस्त आन्दोलन उठाया था। प्रीस्टले (Prestley) ने उसके प्रत्येक विचार की खुलकर आलोचना की थी और उसकी समस्त योजना का जमकर खण्डन किया था। यही नहीं उसकी आलोचना इतनी बढ़िया थी कि बाद में उसके मित्रों ने उसे इस बात के लिये उत्साहित किया था कि वह अपने इन विचारों को एक प्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत करे। उसकी प्रथम पुस्तक एसे आन फर्स्ट प्रिन्सपल्स आफ गवर्नमेंट (Essay on First Principles of Government) के नाम से १७६२ में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक का कोई और मूल्य भले हो न हो फिर भी इस पुस्तक ने विशेषकर "सर्वाधिक आनन्द के सिद्धान्त" (Greatest Happiness Principle) को सर्वप्रथम सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करके उसका विवेचन किया। यद्यपि यह विचार सर्वप्रथम बेन्थम (Bentham) के दिमाग में सूझा था फिर भी उसको स्वीकार करने वाला प्रीस्टले ही था। किन्तु उस पुस्तक का महत्व इससे भी अधिक है। प्रीस्टले (Priestley) ने स्वयम् अपने इस विचार के समर्थन में यह कहा है कि— "मैंने कुछ मूल्यवान बातों को मानव जाति के संदर्भ में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। निश्चय ही मेरी यह चेष्टा कई अर्थों में लाक द्वारा प्रतिपादित विचारों से भी आगे की बात है।" अस्तु, रूसो के विचारों का प्रकाश में आ जाने के कारण उसके इन विचारों को काफी समर्थन और प्रोत्साहन भी मिला।

यही वह स्थल है जहाँ हमें अँग्रेजी राजदर्शन में नये तत्वों का साक्षात्कार होता है। पुस्तक की भूमिका में ही इस व्यक्ति के विचारों और मान्यताओं के

सबल समर्थन का प्रमाण मिल जाता है। प्रीस्टले (Priestley) ने बड़े ही सशक्त शब्दों में कहा है—"इस संसार का प्रारम्भ चाहे जैसे हुआ हो, यह बात निश्चित है कि इसका अन्त स्वर्गीय आत्मीयता से ओतप्रोत है क्योंकि हमारी दृष्टि में ही वह सामर्थ्य है जिससे हम वर्तमान स्थितियों के परे स्थिर होकर देख सकने में सफल हो सके हैं। उस सुन्दर राज्य (Glorious State) को प्राप्त करने का मार्ग और माध्यम शासन व्यवस्था (Government) ही है। किन्तु कुछ काल के बाद हमें वह रास्ता भी मिल जायगा और हम प्रगति की ऐसी स्थिति पर पहुँच चुके होंगे जहाँ हम शासन व्यवस्था को अपनी स्वाधीनता में हस्तक्षेप करने का रंच मात्र भी अधिकार देना पसन्द नहीं करेंगे। सब मनुष्य समान हैं और उनके प्राकृतिक अधिकार (Natural Rights) किसी भी प्रकार से मिटाये या हटाये नहीं जा सकते। किसी भी मनुष्य पर बिना उसकी सहमति और अनुमति के शासन नहीं किया जा सकता। क्योंकि प्रत्येक शासन-व्यवस्था उस अनुबन्धन से जन्मती है जिसमें नागरिक स्वाधीनता को केवल इसलिये समर्पित किया जाता है ताकि जनमत और जन शक्ति के निर्णय में हम समान रूप से भाग ले सकें। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वस्तु स्थिति में जनता को ही अन्ततोगत्वा समस्त सार्वभौमिक शक्ति (Sovereignty) ग्रहण करनी है, इसलिये जनता के प्राकृतिक अधिकारों में हस्तक्षेप करने पर उसका विरोध करना अनिवार्य हो जाता है। प्रीस्टले (Priestley) के मतानुसार प्रत्येक शासन व्यवस्था 'अपने मौलिक एवं सैद्धान्तिक' रूप में अपने वर्तमान प्रारूप में एक गणतन्त्र (Republic) के समान होती है। अस्तु इससे यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि हमें मनुष्य को उसकी वह समानता लौटानी है जिसे उसने समर्पित करके खो दिया है। ठीक इसी प्रकार विद्रोहियों (Non-Conformist) को भी अपने निजी नागरिक अधिकार मिलने चाहिये।" प्रीस्टले (Priestley) ने यह तर्क इसलिये प्रस्तुत किया था क्योंकि वारबर्टन (Warburton) ने अपनी पुस्तक एलायन्स (Alliance) में जो तर्क दिये थे, उनका उसे प्रबल रूप में खण्डन करना अनिवार्य था। उसने उसके खण्डन में अपनी बुद्धिमता का पूर्ण परिचय भी दे

डाला था। वस्तुतः यदि देखा जाय तो यही प्रवृत्ति एक कारण थी जिसने इन विद्रोहियों को काफी नीचे उतार दिया था। "धर्म सम्बन्धी अनियंत्रित स्वतंत्रता" जिसके कि अर्थ यह होते हैं कि व्यवस्था (Establishment) का अन्त कर दिया जाय, उन समस्त मार्गों का प्रशस्त करता है "जो कि मानव जाति की हित के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध होंगे।"

कुछ हद तक प्रीस्टले (Priestley) की इस पुस्तक को रूसो (Rousseu) की पुस्तक का ऐसा प्रतिरूप कहा जा सकता है जो कि अँग्रेजी विद्रोहियों के लिये परम आवश्यक था। किन्तु इस पुस्तक के उद्देश्यों में बड़ा अन्तर था। राजनीतिक विचारों के क्षेत्र में यह कभी भी नहीं भुलाया जा सकता कि इन विद्रोहियों द्वारा शासन सम्बन्धी शंकायें इसलिये प्रस्तुत की गई थीं क्योंकि चर्च और राज्य दोनों के गठबन्धन से इनको यह पूरा विश्वास हो गया था कि शासन सत्ता व्यक्ति स्वातंत्र्य में अनावश्यक हस्तक्षेप अवश्य करेगी। उनकी मौलिक धारणा जिसके अनुसार वह अपनी स्वाधीनता को सुरक्षित रखना चाहते थे, अब तक एक निश्चित सिद्धान्त के रूप में ढल चुकी थी। चूँकि राजनीतिक स्थितियाँ उस समय व्यवसाय से अधिक प्रभावित थीं, इसलिये कोई भी यह नहीं अनुभव कर पा रहा था कि शासन सत्ता किस प्रकार व्यक्ति स्वातंत्र्य में हस्तक्षेप कर सकती है। इन सबका परिणाम यह हुआ कि इङ्गलैंड में काफी समय तक उदार नीति का विकास और उसका समर्थन संभव नहीं हो पाया। यह स्थिति केवल उस समय संभव हो सकी जब १८७० में राज्य का रूप एक अंग बन कर विकसित हो सका। उनके लिये राज्य की व्यवस्था केवल एक पुलिस की व्यवस्था मात्र बन कर रह गई थी। इस पुलिस की व्यवस्था का अर्थ यह था कि राज्य का मुख्य कर्तव्य यह है कि वह व्यक्ति को उसके अधिकारों की उपलब्धि करा दे। किन्तु इसी से सम्बन्धित उसका एक दूसरा भी अर्थ था—और वह यह कि राज्य कुछ ऐसे कर्तव्यों को भी ओढ़ लेती है जिसे व्यक्ति राज्य की अपेक्षा अधिक सुचारु ढंग से कर सकता है। सामुदायिक भावना का कोई अर्थ नहीं है। इस भावना के नाम पर जो वस्तु जीवित रहती है वह व्यक्तिगत भावनाओं का एक पुञ्ज मात्र है। नागरिक स्वतंत्रता के विषय पर प्रीस्टले ने स्पष्ट कहा है कि—

"नागरिक स्वतंत्रता की धारणा गलत आधार पर आधारित कर दी गई है और राज्य के सदस्यों की सह-सम्मति (Joint Understanding) के सिद्धांत का ग़लत अर्थ लगा कर यह सिद्ध किया गया है कि राज्य का हस्तक्षेप और उसकी व्यवस्था हर हालत में व्यक्ति अधिकार की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है—अर्थात् मानव समाज में सामुदायिक रूप में प्रकाशित होने की भावना को अधिक स्थापित करना चाहिये और यह सिद्ध करना चाहिये कि सामुदायिक विवेक व्यक्ति विवेक से कहीं अधिक मूल्यवान है। किन्तु वास्तव में मानव प्रकृति ऐसी है कि यदि उनको सामुदायिक कानूनों और नियमों में बाँधा जायगा तो वे निश्चय ही अधिक संकट और परेशानियों को जन्म देंगे। इसलिये उनके प्रत्येक कार्य को उनकी स्वतत्र निर्णय-शक्ति पर छोड़ देना अधिक उचित और सुन्दर होगा।" इस सम्बन्ध में प्रमाण देते हुये उसने कहा है कि—"यदि मेरा पड़ोसी मुझ पर आक्रमण करता है तो मैं आत्मरक्षा के लिये पुलिस बुला सकता हूँ। किन्तु जहाँ सत्य का अन्वेषण करना है वहाँ पुलिस की अपेक्षा 'शिक्षा का माध्यम', धार्मिक विश्वासों का पद्धति और व्यक्तिगत सक्रियता ही अधिक महत्व-पूर्ण हैं और वे राज्य हस्तक्षेप से कहीं अधिक मूल्यवान हैं। यह सत्य है कि राज्य के हस्तक्षेप से एक समान फल आसानी से मिल सकता है किन्तु इस फल की ओर अन्वेषण की मूल भावना की समकक्षता संभव नहीं हो सकती। आगामी सन्तान के हित में भी ऐसी समानता पर आग्रह करना उचित नहीं है क्योंकि भविष्य के बारे में कोई भी निर्णय करने का प्राकृतिक अधिकार मनुष्य को नहीं प्राप्त है। वस्तुतः मनुष्य इतना अल्पज्ञ है कि वह स्वयम् अपने विचारों के अनुकूल आचरण करने की क्षमता नहीं रखता।" ...

इन धारणाओं के होते हुये भी प्रीस्टले अतीत की स्थापित परम्परा से मुक्ति नहीं पा सका था। स्वयम् उसकी पुस्तक में प्रायः सभी पृष्ठों पर बेन्थम के विचार दर्शन का प्रचार स्पष्ट रूप से मिलता है। यहाँ तक कि प्रीस्टले की पुस्तक शायद ही किसी प्रकार बेन्थम के विचारों से कम हो क्योंकि प्रीस्टले ने उपयोगितावाद का ठीक उसी प्रकार पक्ष लिया है जिस प्रकार बेन्थम ने उसे क्रान्ति का जबर्दस्त माध्यम मानकर उसका प्रतिष्ठापन किया था। प्रीस्टले कहता

है कि—"सामान्य हित की भावना और उसके प्रति विचारशील रहकर एवम् मात्र उसी विधि से ही प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा की जा सकती है। सदस्यों का हित और उनकी सम्पन्नता के साथ-साथ राज्य के बहुसंख्यक सदस्यों के हित और उनकी सम्पन्नता वह महान् मानदण्ड है जिसकी सापेक्षता में ही राज्य से सम्बन्धित समस्त विषयों को जाना और समझा जा सकता है।" इस प्रकार सारांश में इन सबका अध्ययन करने के बाद पूर्ण रूप से इसका विवेचन न करके, मात्र सिद्धान्त पक्ष पर इतना विचार कर लेने के पश्चात्, हम प्रीस्टले (Priestley) द्वारा प्रतिपादित अधिकार सम्बन्धी बातों को यहीं छोड़ कर उसके अन्य पक्षों पर भी विचार करेंगे। वह धर्म सम्बन्धी कानूनों को संसद द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा का घोर विरोध करता है। उसका मत है कि कानून सदैव सरकार की नीति पर आधारित होकर बनते हैं। इसीलिये वह व्यक्ति को अनन्त शक्तियों से ओतप्रोत, कभी न चुकने वाली शक्ति मानता है। इसी आधार पर वह बेन्थमवादी (Benthamite) विचारकों के मत का समर्थन करते हुये यह स्थापित करता है कि व्यक्ति और वैयक्तिक शक्ति ऐसा स्रोत है जिसे बाँधा नहीं जा सकता। प्रीस्टले की हस्तक्षेप और गतिरोध सम्बन्धी दोनो धारणाएँ एडम स्मिथ (Adam Smith) और उसके अनुयाइयों के विचारों के इतने सम निकट हैं कि ठीक उन्हीं के समान प्रीस्टले ने भी इन दोनों तत्वों को एक वर्ग में रख कर विचार प्रकट किया है। प्रीस्टले के विचारों में और भी असंगतिआँ प्रकट हुई हैं जिनमें से एक यह है कि उसने शासन सत्ता को प्रगति का मूल यत्र माना है। ऐसा मानने में उसका मूल ध्येय यह नहीं है कि मानव जाति का भविष्य शासन सत्ता के हाथ में दे दिया जाय, वरन् उसका मूल भाव यह है कि शासन सत्ता अच्छे और बुरे के बारे में तेज, क्रियाशील और शीघ्र निर्णय लेती है, इसलिये वह अच्छे की स्थापना में सफलता के साथ योगदान दे सकती है। ठीक इसी प्रकार बेन्थमवादियों (Benthamites) की भाँति उसने भी विवेक शक्ति को बहुत ही बढ़ा-चढ़ा कर रखने का प्रयास किया है और यह सिद्ध करना चाहा है कि विवेक ही वह चाभी है जिससे जटिल से जटिल समस्याओं का निराकरण संभव हो सकता है। निश्चय ही ऐसे वैज्ञानिक

के लिये जिसने विज्ञान में स्वयम् कई नये अन्वेषण किये हों—इस प्रकार सोचना कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं है। किन्तु इससे भी अधिक प्रीस्टले उस विशेष भाव चिन्तन की प्रवृत्ति का प्रतीक है जिसका यह दृढ़ विश्वास था कि मानव जाति का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है और उसकी स्वतन्त्रता के साथ-साथ उसके विकास के अनगिनत क्षितिज स्वयम् ही उभरने लगते हैं। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि प्रीस्टले मे विवेकवादी समस्त त्रुटियाँ ठीक उसी प्रकार से विद्यमान थीं जिस प्रकार कि बेन्थम (Bentham) मे थीं, और यह कि प्रीस्टले ठीक उसी प्रकार से प्रत्येक विरोधी विचार को सरल करके देखता है जिस प्रकार कि बेन्थम देखा करता था; फिर भी प्रीस्टले में व्याप्त-मानव-क्षमता और उसकी शक्ति पर अटूट विश्वास था और निश्चय ही उन समस्त गतिरोधात्मक एवम् अनभिज्ञ विवेकहीन स्थिर स्थितियों से उसकी स्थिति कहीं श्रेयस्कर है।

इस बात का उचित मूल्यांकन करना कि प्रीस्टले का कितना या किस सीमा तक अँग्रेजी विचारधारा पर प्रभाव पड़ा, बड़ा कठिन है। फिर भी यह निश्चय है विद्रोहियों (Non-Conformists) और उनके विचारकों में उसका प्रभाव कम नहीं पड़ा होगा। डा० रिचर्ड प्राइस (Dr. Richard Price) जो बुद्धिमता एवम् प्रतिभा में प्रीस्टले से कहीं निम्न स्तर के थे, उनकी ख्याति और उनका नाम अधिक रूप से चर्चा में इसलिये नहीं आ सका क्योंकि उनके साथ दुर्भाग्यवश दो दुर्घटनाएँ हो गईं। पहली बात तो यह कि उसके द्वारा चलाया गया 'सिंकिंग फण्ड' (Sinking Fund) आन्दोलन का नेतृत्व आगे बढ़कर छोटे पिट (Pitt the Younger) ने ले लिया था और यद्यपि वह उस पर अन्तिम साँस की कड़ी तक डटा रहा, लेकिन 'रोयल सोसाइटी' (Royal Society) वालों ने उसे भी स्वीकार नहीं किया। ठीक उसी प्रकार से रिचर्ड प्राइस द्वारा फ्रांसीसी क्रान्ति पर प्रचारित उपदेश भी बर्क (Burke) द्वारा निन्दा का विषय बन गया और उसने उस समस्या पर रेफ्लेक्शन्स नाम की पुस्तक लिखकर उसे भी समाप्त कर दिया। यद्यपि यह सत्य है कि प्राइस के तर्कों और विचारों में सत्य का अंश आवश्यकता से अधिक था, फिर भी बर्क ने उसके उठाये गये विचारों की बड़ी आसानी से ऐसी हत्या की कि फिर वह उसके

ऊपर उठने में आजीवन असमर्थ ही रहा। फिर भी वह अपने समय का एक बहुत बड़ा व्यक्ति था। प्रीस्टले की भाँति काफी उसकी गहरी क्रान्तिकारी प्रकृति थी। हाँ यह बात अवश्य थी कि उसमें प्रीस्टले की भाँति इतनी उदात्त आशा-वादिता नहीं थी। इसका मुख्य कारण यह था कि प्राइस किसी न किसी स्तर पर नैतिकता के रूढ़ि रूप का पोषक था। वह इस परम्परावादी नीति को विवेक से सम्बद्ध करके कुछ अपना नया निष्कर्ष निकालना चाहता था। जान ब्राउन (John Brown) की भाँति कहीं उसके दिमाग में यह बात घर कर गई थी कि अँग्रेजी समाज के पतन का मुख्य कारण प्रचलित अमीरी और व्यसन है। इसका प्रमाण उसके इस बात से मिलता था क्योंकि उसके काल में इङ्गलैंड की जनसंख्या घटती जाती थी। किन्तु उसके पास जो आँकड़े थे वे ठीक नहीं थे लेकिन फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता जो साधारण विवेचन उसने प्रस्तुत किया था। उसमें इन आँकड़ों के गलत होने के बावजूद भी वह एक महत्वपूर्ण अध्ययन है।

प्रीस्टले की भाँति प्राइस भी एक बड़ा ही कट्टर क्रान्तिकारी विद्रोही (Non-Conformist) था। यही नहीं उसने उस काल में अमरीकी क्रान्ति का पक्ष लेकर एक पुस्तक ही "आब्जरवेशन्स आन दि नेचर आफ सिविललिबर्टी (१७७६)" (Observations on the Nature of Civil Liberty) लिख डाली जो दस साल के भीतर आठ संस्करणों में प्रकाशित हुई। इसके साथ-साथ आबजर्वेशन्स (१७७७) में (Additional Observations) प्रकाशित हुआ जिससे कि एक क्रमबद्ध रूप में अपने सिद्धान्त को भली भाँति.प्रतिपादित कर दिया था। पूर्वजों की परम्परा भी उन्होने नहीं छिपाया क्योंकि वह लाक (Locke) का अनुयायी था। लाक में और इनमें अन्तर केवल इतना अवश्य था कि रूसो (Rousseu) से प्रभावित होकर इसने लाक के विचारों में भी आधुनिकतम संशोधन कर लिया था। वस्तुतः प्राइस (Price) प्रीस्टले (Priestley) और ह्यूम (Hume) का बहुत ऋणी है। यही नहीं उसने अपने मत समर्थन में मौन्टेस्क्यू (Montesquieu) की पुस्तक से पंक्ति की पंक्ति उद्धृत कर दी थीं। किन्तु उसमें प्रीस्टले (Priestley) की भाँति

वह उपयोगितावादी दृष्टि नहीं थी। उसने अपने तर्क केवल अधिकार की अमूर्त भावना पर आधारित किये थे। उसने स्वाधीनता का अर्थ स्वायत् शासन (Self Govt.) के रूप में ग्रहण किया था और स्वयम् शासन का उसका अर्थ था कि प्रत्येक मनुष्य स्वयम् ही अपना विधायक भी है।

प्राइस (Price) ने इस सिद्धान्त की तार्किक परिणति को अन्तिम सीमा तक पहुँचाया। टैक्स का मतलब हो गया सरकारी नौकरों को पुरस्कृत करने के लिए दिया गया दान। इसी के अनुसार कानून का अर्थ हो गया "ऐसे विधायक और नियम जो कि सर्वसम्मति से रक्षा और आश्रय के लिए बनाए जाएँ!" ऐसे ही मजिस्ट्रेट का मतलब हो गया ऐसे संरक्षक जो उपयुक्त विधायकों और नियमों को कार्यान्वित करने में सहयोग देते हैं। अस्तु लगभग रूसो के ही शब्दों में प्राइस (Price) ने स्वाधीनता का वही अर्थ लगाया जो कि रूसो ने लगाया था अर्थात् "स्वाधीनता का पूर्ण लाभ उसी समय उठाया जा सकता है जब कि वह छोटे-छोटे राज्यों में सीमित करके परिचारित किया जाय और जहाँ उस क्षेत्र का प्रत्येक सदस्य अपना मत स्वतन्त्र और सीधे रूप देकर यह अनुभव कर सके कि वह स्वयं भी उस पद पर उसी तरह चुना जा सकता है जैसे कि वह चुन रहा है!" प्राइस (Price) यह जानता था कि कालान्तर में बड़े-बड़े राज्यों का विकास पाना अनिवार्य है! यद्यपि वह यह भी जानता था कि ऐसी अवस्था में एक बड़े राज्य की विकृतियों का सामना करने के लिए एकमात्र साधन प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ा देना है और इस प्रकार से वह यह मानता है कि वह स्वाधीनता की सुरक्षा कर लेगा।

लेकिन उसने अपनी पुस्तक में प्रत्येक स्थान पर शासन-व्यवस्था पर नियन्त्रण रखने की जबरदस्त माँग की है। उसका मत है कि "शासन-व्यवस्था अपनी मूल प्रकृति में संरक्षक समिति (Trust) और इसको जितनी भी शक्तियाँ दान की गई हैं वह एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही की गई है।" वह संसदीय सर्वभौमिकता (Parliamentary Sovereignty) को स्वायत्त शासन से किसी भी प्रकार विरोध करता हुआ नहीं पाता। वह यह मानता है कि यदि किन्हीं कारणों से बिना नए चुनाव के संसदीय सत्ता कुछ

दिनों के लिए स्थाई हो जाय तो उससे निश्चय ही जनसत्ता को क्षति पहुँचेगी। उसने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि यदि कोई भी शक्ति सर्वशक्तिमान के रूप में मानी जा सकती है तो वह वही शक्ति हो सकती है जो सीधे जनता से उपज कर विकसित हो सके ! मात्र ऐसी ही शक्ति शासन के उद्देश्यों की उचित पूर्ति कर सकती है क्योंकि उसके विषय में यह नहीं कहा जा सकेगा कि वह शासनीय संस्थाओं एवं समुदायों से किसी भी प्रकार समझौता कर चुकी है, अथवा उसने अपने को दासता के हाथ बेच दिया है ! इस पद्धति के अतिरिक्त कोई भी अन्य पद्धति ऐसी नहीं है जो मनुष्य की प्राकृतिक समानता (Natural Equality) के साथ मेल खा सके ! वस्तुतः उपर्युक्त वक्तव्य से प्राइस (Price) का यह स्पष्ट मत है कि कोई भी मनुष्य प्रकृति द्वारा दूसरे मनुष्य के अधीन नहीं रक्खा गया है। यही नहीं किसी भी मनुष्य को यह अधिकार भी नहीं है कि वह बिना दूसरे की इच्छा के उस पर कोई भी कानून लाद दे या यह कि उसकी सम्पत्ति का अपहरण कर ले अथवा उसकी स्वाधानता को काट-छाँट कर संक्षिप्त कर दे। इन सब बातों से एक मात्र निष्कर्ष यह निकलता है कि स्वाधीनता एक ऐसी शक्ति है जो किसी दूसरे को हस्तांरित नहीं की जा सकती। जो लोग कि किसी भी कारण अपनी यह स्वाधीनता नष्ट कर चुके होते हैं उनको यह अधिकार है कि वह अपने को उस बन्धन से मुक्त कर देने का प्रयास करें। इस विचार की सार्थकता हमें उस समय स्पष्ट होती है जब हम उसके इस सिद्धान्त को तत्कालीन अमरीकन स्थिति पर लागू करके देखते हैं। हमें प्राइस (Price) की आन्तरिक उत्फुल्लता का चित्रण ठीक उस समय प्रतीत होता है जब हम उसको अपने सिद्धान्तों के आधार पर सम्राट जार्ज द्वारा दृढ़तापूर्वक साम्राज्य की एकता "और साम्राज्य की लाज" जैसे प्रयुक्त शब्दावलियों के विवेचना में संलग्न पाते हैं !

ऐसे अवसर पर एक अन्य अंग्रेजी विचारक विलियम आगिलवी (Ogilvie) के विचारों एवं उसकी पुस्तक "The essay on right of property in land 1781" पर भी विचार कर लेना परमावश्यक है। विलियम आगिलवी ने अपनी यह पुस्तक गुप्त नाम से छपाया था। वह ऐबरडीन विश्वविद्यालय में लैटिन भाषा का प्रोफेसर था और एक सफल किसान भी था, वह

सर जेम्स मैकिनटाश (Sir James Mackintosh) का गुरु था और प्राचीन साहित्य का बहुत बड़ा मर्मज्ञ विद्वान् माना जाता था। उसकी महत्ता इसलिए भी काफी स्वीकार की जाती है क्योंकि उसने एक कालेज का जीर्णोद्धार किया था और उसमें पुनः ऊँचे स्तर की पढ़ाई-लिखाई शुरू कराई थी! उसकी पुस्तक का मुख्य विषय यह है किस प्रकार मनुष्य के प्राकृतिक अधिकार जमीन से सम्बन्ध रखते हैं। वह यह नहीं मानता कि समाज की विषमता जमीन के ऊपर किसी एकाधिपत्य अधिकार के नाते जन्मती है, उसका मत था कि मनुष्य को अपने परिश्रम का पूर्ण लाभ उठाने का अधिकार है लेकिन जमीन के मालिकों के कारण प्रत्येक व्यक्ति को इस अधिकार से लाभ उठाने का अवसर नहीं प्राप्त हो पाता, प्रत्येक राज्य का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक जनता की सम्पन्नता बढ़ाना है और सबसे सम्पन्न राष्ट्र वह है जिसमें अधिक से अधिक लोग स्वतन्त्र रूप से खेती करने के अधिकारी हों! लेकिन ऐसा नहीं होता है! प्रत्येक शासन-सत्ता उच्चवर्ग के लोगों के हित की रक्षा करती है और यहाँ तक कि जब वह इस बात का अभिनय करती है कि वह अधिक से अधिक जनहित की रक्षा कर रही है तब भी वह अपनी शक्ति को अधिक से अधिक निश्शंस रूप में लागू करने के लिए ही इसकी दोहाई देती है। इसका परिणाम यह होता है कि वे व्यवस्थायिक विकास के पथ में बाधा पहुँचा कर जमीन पर भी सत्ता कायम रखना चाहते हैं। जनसंख्या की वृद्धि में रुकावट पैदा करते हैं और धनी लोगों को जनता रक्ताहुति देकर और धनवान बनाती है। इन सब का परिणाम यह होता है कि इससे दमन नीति और अलपज्ञता बढ़ती है जिसके परिणामस्वरूप वातावरण दूषित है और व्यक्ति की कर्मठता नष्ट होती है। आगे चल करके उसने यह भी स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है कि किस प्रकार बड़े-बड़े जमीन्दारों का ही आधिपत्य रहता है और यह जमीन्दार भी कैसे-कैसे बहाने बनाकर स्वयं तो राज्य के धार्मिक दायित्व से बच जाते हैं किन्तु साधारण जनता को यह सारी विषमतायें ढोने के लिए मजबूर कर देते हैं। इस प्रकार आगिलवी के मतानुसार राष्ट्र की सम्पन्नता में वृद्धि तभी हो सकती है जब अधिक से अधिक लोगों के पास जमीन हो और उन्हें उस जमीन से लाभ उठाने का पूर्ण अवसर प्राप्त हो।

इस प्रकार की आलोचना नितान्त क्रान्तिकारी कही जा सकती है किन्तु जब आगिलवी इस सिद्धान्त को कार्यरूप में परिणत करने की चेष्टा करता है तो वह अपने प्रतिपादित सिद्धान्त से संतुष्ट नहीं हो पाता और किसानो के अधिकार को प्रतिष्ठित करने की बात तक ही सीमित न रहकर वह कुछ अधिक की माँग करने लगता है। प्रस्तुत पुस्तक की विशेषता यह है कि उसमें लेखक की जागरूक बुद्धिमत्ता से यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक को सम्पूर्ण व्यवस्था में अवतरित होने वाले सिद्धान्तों का सम्पूर्ण ज्ञान है और वह उसकी उपयोगिता को काफी प्रौढ़ता के साथ समझता है। साथ ही साथ इस बात का भी बोध होता है कि भूमि सम्बन्धी सुधारो के लिए समाज के उपेक्षित मानव को स्वाभिमान और निष्ठा प्रदान करना आवश्यक है। उसके लेखन से यह भी पता चलता है कि उसकी दृष्टि सम्पूर्ण रूप से यह ग्रहण करने में समर्थ है कि समस्त राज्य में केवल उन्ही का अधिकार है जिनके पास पैसा और द्रव्य काफी है। इसीलिए उसने इतिहास की जो भी व्याख्या प्रस्तुत की है उसका आधार आर्थिक सिद्धान्त है। आगिलवी कृषि समाजवादी विचारको में से वह प्रथम व्यक्ति है जो स्पेन्स (Spencc) और पेन (Paine) जैसे विचारको के माध्यम से इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि समाज के श्रमिक वर्ग की स्थिति बड़ी ही न्याय-विहीन और संकटाकीर्ण है अर्थात् इस विषमता के प्रति विरोध प्रकट करना आवश्यक है। स्पेन्स (Spence) और पेन की भाँति आगिलवी ने भी अपने सिद्धान्त को प्राकृतिक अधिकारो पर आधारित किया था किन्तु उसने इन अधिकारों को एक नितान्त स्पष्ट और तार्किक शैली में उनकी समस्त अवच्छित्त और युक्तिसिद्धता के साथ प्रतिष्ठित करना चाहा है। जब यह पुस्तक सर्वप्रथम प्रकाशित हुई तो किसी का भी ध्यान उसकी उपादेयता पर नही गया यद्यपि वह मात्र पुस्तक ही नहीं थी वरन् उसमें इतिहास का सर्वथा नए और विचित्र पहलू से अध्ययन किया गया था। केवल मैकिनटाश को ही इस किताब के लिखे जाने का ज्ञान था। उसने आगिलवी को इस बात की चेतावनी भी दी थी कि उसकी यह कल्पना कि इंगलैण्ड के शासक ईस्ट इन्डिया कम्पनी के विस्तार और विकास को छोड़कर कृषि सम्बन्धी सुधार को प्रश्रय देंगे सर्वथा भ्रामक और

गलत है। जब यह पुस्तक १८३८ में दुबारा छपी और इसको चारटिस्ट आन्दोलन कार्यों को उनके पतन का कारण इस पुस्तक द्वारा बताया गया तो इस किताब का एक विचित्र प्रभाव पड़ा। फीयरगस (Feargus O'Connor) ने एक विचित्र प्रकार का भूमि सम्बन्धी सिद्धान्त निर्धारित किया जो अपने में एक अजीब चों-चों का मुरब्बा सिद्ध हुआ। १८९१ में हेनरी जार्ज ने एक बार पुनः भूमि सम्बन्धी सुधारों को प्रस्तुत किया! एक स्काटलैंड के देशभक्त ने इस पुस्तक को लेखक की जीवनी के साथ प्रकाशित किया था! अंग्रेजी राजनीतिक साहित्य में यह पुस्तक विचित्र प्रकार की जिज्ञासाएँ और समस्याये प्रस्तुत करने वाली पुस्तक मानी जाती है।

(५)

रूसों के अंग्रेज शिष्यों के विरुद्ध अपेक्षाकृत आलोचनाएँ प्रस्तुत करना सरल है, क्योंकि उनके पास ऐतिहासिक दृष्टि का अभाव था। उनके लिए शासन-सत्ता केवल एक ऐसा अस्त्र मात्र था जिसे मनुष्य जब चाहे तब मिटा दे और जब चाहे तब बना दे। वे उन आधारभूत मनोवैज्ञानिक जटिलताओं को समझने में असमर्थ थे जिनसे कि शासनसत्ता स्थापित की जाती है। वे केवल अनुमति (Consent) के आधार पर किसी भी शासनसत्ता के ढाँचे की व्याख्या प्रस्तुत करते थे किन्तु उसके साथ ऐतिहासिक काल के महत्व को स्वीकार करने में असमर्थ थे। वे अधिकार को तत्वदर्शन के माध्यम से समझने-समझाने की चेष्टा करते थे किन्तु उसके कानूनी पक्ष को समस्त राजनीतिक सम्भावना के साथ समझने में असमर्थ थे। वे रूसो के सिद्धान्त को अविवेकपूर्ण ढंग से लागू करते थे! किन्तु वे कभी भी जागरूक होकर इस तथ्य का अन्वेषण नहीं कर पाते थे कि उनकी अन्धी तर्क प्रक्रिया उन्हें किस रूढ़ि की ओर ले जा रही है। मनुष्य किस सीमा तक राजनीतिक मामलों में अपनी इच्छाशक्ति का हनन अथवा उन्नयन कर सकता है इसकी किंचित मात्र भी दृष्टि उनके पास नहीं थी। यही कारण था कि वे रूसो के मतवाद को सदैव अति रूप में लागू करते थे। वे कभी भी उस आत्मरक्षा के सत्व को स्वीकार नहीं करते थे जो वास्तविक रूप में प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था के पीछे कार्य करती है और जिसको स्वीकार

करना प्रत्येक सामाजिक संस्था की प्रतिभावना को मूल्यवान बनाती है। यही नहीं, वे किसी भी राजनीतिक व्यक्ति को उसकी स्थितियों और परिस्थितियों के लिए अनुत्तरदायी होना क्षमा के योग्य नहीं समझते थे। इसीलिए वे बड़े से बड़े राजनीतिज्ञ को भी उसकी परिस्थितियों की व्यवस्था में स्वीकार नहीं करते थे। वे राज्यसत्ता की इस प्रकार अन्धे होकर आलोचना करते थे कि वे राज्यसत्ता की शक्ति को उचित स्थान देने में सदैव असफल रहते थे। वे एक विश्व-व्यापक अधिकार की धारणा को सैद्धान्तिक स्तर पर स्वीकार करने में असमर्थ थे। और यह भूल जाते थे कि वे सूक्ष्म स्तर पर विश्वव्यापक अधिकार सत्ता को एकांगी रूप में प्रस्तुत करने में असमर्थ थे। यही नहीं वे प्रत्येक अधिकार की व्याख्या को आचरण की मर्यादा में सम्बद्ध करने में असफल रहे हैं।

यह होते हुए और प्रस्तुत कमियों और बुराइयों के देखते हुये हमें रूसो के उन शिष्यों की अन्तःदृष्टि एवम् औचित्य के प्रति आँखें नहीं बन्द करनी चाहिए। वास्तव में वे उस पद्धत्ति का कस कर विरोध कर रहे थे जो वस्तुतः इतने निम्न स्तर के तत्वों पर आधारित थे कि उनको किसी भी प्रकार आज भी उचित नहीं कहा जा सकता। उन दिनों शासन सत्ता एक विशिष्ट वर्ग की व्यक्तिगत चीज बन कर रह गई थी। यही कारण था शेष जनता में उस शासन-व्यवस्था के प्रति भयानक असतोष था किन्तु फिर भी वह उसे शीघ्र से शीघ्र नष्ट करने के लिए उत्सुक नहीं थे। अमरीका की हार, आयरलैण्ड के साथ हृदयदीन व्यवहार, विल्केस (Wilkes) का अवैधानिक आचरण एवम् हेनरी फाक्स और नार्थ (Henry Fox and North) के भ्रष्टाचार का सम्राट द्वारा समर्थन आदि कुछ ऐसी घटनायें थीं जिन्होंने लोगों की दृष्टि को इतना कुण्ठित कर दिया था कि वे यह बात भूल गये थे कि किसी भी नीति का आधार-भूत अंग कुछ सिद्धान्त होते है जिन पर वह नीति आधारित होती है। क्रान्ति-कारियों का मुख्य उद्देश्य शासन सत्ता के मूल तत्वों की व्याख्या करना था। इसीलिए वे मात्र शासन संचालन से तुष्ट नहीं हो पाते थे। ये क्रान्तिकारी वस्तुतः उस उपेक्षित वर्ग की नवचेतना के प्रतीक थे जो शासन सत्ता में विभिन्न प्रकार की दलबन्दियों के कारण उभरने में अब तक असमर्थ था और लगभग

अर्द्धशताब्दी तक पददलित जीवन व्यतीत कर रहा था। इसीलिये जब यह क्रान्तिकारी शासन सत्ता की व्याख्या जनता की ट्रस्ट के रूप में करते थे तो ऐसा करने में उनका मुख्य उद्देश्य इस तथ्य को जागरूक रूप में प्रस्तुत करना था कि प्रत्येक शासन सत्ता को अन्ततोगत्वा प्रशासित वर्ग अर्थात् जनता के प्रतिदायित्व पूर्ण रहना ही पड़ेगा। लगभग बीस वर्ष ह्विग और टोरी दल अपने मतभेद और विवाद इस प्रकार चलाते रहे थे कि जैसे जनमत उन दलों तक ही सीमित है और उनके बाहर न तो कोई जनता है और जनमत ही है। जनता जिसने कि विल्क्स जैसे व्यक्ति को अपना इष्टदेव मान लिया था वस्तुतः उस समय तक इतनी अन्धी और अचेतन हो चुकी थी कि वह स्वयम् उन सिद्धान्तों पर चलने लगी थी जिसका कि निरूपण प्राइस (Price) और प्रीस्टले ने किया था। उस समय तो उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। अधिक से अधिक यही हुआ कि कार्ट राईट (Cartwright) को 'कान्स्टिट्यूशनल सोसाइटीज' के आन्दोलन के फलस्वरूप ड्यूक आफ रिचमण्ड जैसे सनकी व्यक्ति की थोड़ी-बहुत सहायता मिल पाई। शेष जनता का अधिकांश, केवल आक्रोशवत् होकर अनिश्चित ही रहा। वास्तव में वास्तविक जागरण लाने के लिये क्रान्तिकारियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों की आन्तरिक प्रेरणा का साक्षात्कार करना आवश्यक था। बिना इसके वे उन सिद्धान्तों में निहित व्यापक समन्वयवादी दृष्टि को कभी भी नहीं समझ सकते थे और न वह उसकी उस क्षमता का ही अनुभव कर सकते थे जिसने सम्पूर्ण यूरोप और अमरीका में एक उथल-पुथल पैदा करके उनमें एक नयी जीवन शक्ति का संचार किया था। यही कारण था कि क्रान्तिकारियों को सहानभूति और समर्थन की अपेक्षा दमन और भर्त्सना ही का साक्षात्कार करना पड़ा। यह सब होते हुये क्रान्तिकारियों द्वारा दिग्दर्शित सिद्धान्त वैसे ही बने रहे। वे किंचित मात्र भी नहीं मरे क्योंकि कोई भी विचार विवेकपूर्ण प्रतिवाद से ही खण्डित होता है। उसे दमन और भर्त्सना से कभी भी कोई क्षति नहीं पहुँचती। यही कारण है कि जब इस द्वन्द्व और संघर्ष का प्रथम दौर समाप्त हुआ और वातावरण में कुछ शान्ति स्थापित हुई तो क्रान्तिकारियों के विचार और उनके सिद्धान्त समाज के

समस्त वर्ग में व्याप्त हो गये और सभी उससे किसी न किसी रूप में प्रभावित हो गये। केवल वे ही उसे नहीं स्वीकार पाये जो यह निश्चित रूप से जानते थे कि उन सिद्धान्तों को स्वीकार करने में उनको किसी न किसी प्रकार की हानि उठानी ही पड़ेगी।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि प्राइस (Price) और प्रीस्टले (Priestley) के विचार कभी भी कुछ लोगों को छोड़ कर सबको सर्वमान्य हो गये थे। वे केवल एक महत्वपूर्ण विचारधारा के ही प्रतिनिधि थे। उनके विचारो का विरोध भी उतना ही स्पष्ट और व्यापक था जितना कि उनके तर्क जिनके माध्यम से वे अपने सिद्धान्तो की पुष्टि करते थे। कुछ जो बर्क (Burke) के समान थे वे समस्त व्यवस्था का शुद्धिकरण करना चाहते थे। दूसरे जो डाक्टर जान्सन (Johnson) जैसे थे जो किसी भी प्रकार तथाकथित विषाक्त-पूर्ण विचारों से समझौता करने के लिए तैयार नहीं थे। हाँ, इस प्रसंग में एक विचारक का नाम अवश्य उल्लेखनीय है। यद्यपि उसके विचारो में वह आधार-भूत तात्विक मूल्य निष्ठा नहीं है फिर भी उसके दृष्टिकोण और विचारों को प्रस्तुत करने की शक्ति एवम् प्रकृति को देखकर उसका महत्व स्वीकार किये बिना नही रहा जा सकता। वह व्यक्ति जोसिया टकर (Josiah Tucker) नाम का एक अँग्रेज था जो डीन ऑफ ग्लोसेस्टर के पद पर आसीन था और जिसने समकालीन राजनैतिक एवम् आर्थिक विषयों के अध्ययन में काफी ख्याति भी अर्जित कर लिया था। उसमें अरबटनौट (Arbuthnot) द्वारा रचित "जान बुल" के समस्त गुण मौजूद थे और प्रौढ़ राष्ट्रीयता के सम्पूर्ण तत्व भी उसमें प्रतिनिधि रूप में जीवित थे। उसमें बिना सिर-पैर के विदेशियों से ईर्ष्या थी, वह समस्त तत्व दर्शन (Metaphysics) को साधारण ज्ञान (Common Sense) से नीचे स्तर की चीज मानता था। वह यह भी मानता था कि केवल प्रयास द्वारा परिवर्तन लाना समस्त बुराइयों से भी गई गुजरी बुराई है। उसकी स्वरचित पुस्तक ट्रीटाइज आन सिविल गवर्नमेंट (Treatise on Civil Government १७८१) कई दृष्टियों से बड़ी ही मजेदार किताब है। उसमें भूट, कटुता, साधारण ज्ञान और उसके साथ-साथ स्थान-स्थान पर पुराने

ढंग के मजाक आदि ऐसे रूप में आते हैं कि समूची पुस्तक ही कुछ विचित्र प्रभाव डालती है। वास्तव में टकर का दो मुख्य उद्देश्य था, पहला तो यह कि अमरीका की समस्या पर ईमान्दारी से विश्लेषण किया जाय और दूसरा यह कि रूसो (Rousseou) के नये अनुयाइयों का भण्डाफोड़ करना। दूसरे तत्व को प्रदर्शित करने के लिये उसे लाक (Locke) के सिद्धान्तों का विवेचन करना अनिवार्य था, क्योंकि टकर (Tucker) ने इस बात को भली-भाँति जान लिया था कि रूसो के सिद्धान्त मूलतः लाक के सिद्धान्तो से जन्में हैं। उसने अनुमति (Consent) के सिद्धान्त की व्याख्या इस प्रकार किया है कि यदि रूसो का कोई भो अनुयायी उन तर्कों को स्वीकार कर ले तो उसे यह समझने में देरी नहीं लगेगी कि वे सब के सब अराजकतावादी हैं, प्रकृति की स्थिति (State of nature) को वह नितान्त सत्य नहीं मानता था और न उसके पास उसके लिए कोई सहानुभूति ही थी। जिस उद्दात आदि मानव की प्रशंसा हाब्स ,लॉक, रूसों ने किया था उसे टकर ने यह सिद्ध कर दिया कि वह मूलतः बर्बर एवम् वनमानुषी प्रकृति का है ठीक उसी प्रकार का जो गदा और छुरे में अधिक विश्वास करता है तर्क और विवेक में कम। वह इसमें सन्देह नहीं प्रकट करता कि शासन एक ट्रस्ट है जो केवल देखने में ही ट्रस्ट सा लगता है लेकिन इस वाह्य रूप के कारण यह अधिकार किसी भी व्यक्ति और संस्था को नही है कि वह जब चाहे तब अपने मनोनुकूल शासन को बदल दे या उसे उलट पलट दे। वह पार्लियामेंट्री सुधारों में भी विश्वास नहीं रखता। उसका यह निश्चित मत•था कि यदि किसी भीड़ को शासन के अधिकार दे दिया जाय तो सिवा मारकाट और विद्रोह के कुछ अन्य नहीं सम्भव हो सकता। वह संविधान में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं लाना चाहता था और उसे जैसे का तैसा ही रहने देना चाहता था। जो लोग भ्रष्टाचार इत्यादि का नारा लगा कर शासन में परिवर्तन लाना चाहते थे और बिना किसी भ्रष्टाचार के आरोप को सिद्ध किये केवल जनता की आवाज को ईश्वर की आवाज मान कर परिवर्तन लाना चाहते थे, वह उनका कट्टर विरोधी था और कहता था कि मात्र भ्रष्टाचार का नाम ले लेने से बात नहीं बनती। भ्रष्टाचार को सिद्ध करना नितान्त आवश्यक है।

अमेरिका के सम्बन्ध में टकर (Tucker) का अपना स्वयं का सिद्धांत है। उनको इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं था कि अमेरिकन हर निन्दात्मक विशेषण के पात्र होते हैं। जार्ज तृतीय की भाँति टकर भी अमेरिकावासियों को स्वशासन का अधिकार देने का कट्टर विरोधी है। किन्तु वह एक बार भी अमेरिका वासियों को पुनः ब्रिटिश-अधीनता में लाने का स्वर न उठायेगा। उसके अनुसार यदि अमेरिकी उपनिवेश अलग होना चाहते हैं तो अलग हो जाने देना चाहिए। ये उपनिवेश एकमात्र व्यय के ही अनुपयोगी साधन हैं। उनका व्यापार अधीनता पर नहीं बल्कि उनकी जरूरतो पर निर्भर करता है जिनकी पूर्ति इंगलैंड यदि उसकी दूकान पूर्ण सुव्यस्थित है तो कर सकता है। यदि इन उपनिवेशों के लिये इंगलैंड से सामान खरीदना हितकर होगा तो वे वैसा ही करेंगे। वास्तव में इंगलैंड के सभी उपनिवेश उसके लिये निरर्थक तथा अनुपयोगी हैं। ये उपनिवेश मातृभूमि पर हमेशा से भार-स्वरूप रहे हैं और अभी भी हैं। शैशवावस्था में इनका लालन-पालन बड़ा खर्चीला पड़ता है और बाद में प्रौढ़ तथा सशक्त होने पर इन पर शासन कर सकना कठिन हो जाता है। पारस्परिक सद्-सम्बन्धों के लिये किसी भी प्रकार के जोर या दबाव नहीं बल्कि दोनों के स्वार्थ आवश्यक होते हैं। यदि जिब्राल्टर या पोर्ट महोन तथा अन्य स्थान हाथ से निकल जायँ, कुछ जगहें खत्म हो जायँ या कुछ चल रहे कार्य बन्द हो जायँ तो बहुत-सा रुपया जो इन पर व्यय होता है बच जायगा। इस बचत से उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। इंगलैंड की सरकार का प्रभुत्व भी उस सामान्य सीमा पर आ जायगा जहाँ कि उसको होना चाहिए। टकर (Tucker) का यह सिद्धान्त समय से सम्भवतः ५० वर्ष पूर्व ही आविर्भूत हो गया। टकर महोदय का यह उपदेश उसी प्रकार है जैसे कि ब्रिस्टल के अनुदार व्यापारियों को, जिन्होंने आयरलैण्ड से मुक्त-व्यापार करने के बर्क के प्रस्ताव को ठुकरा दिया, कोई उदारता का सिद्धान्त सिखाया जाय।

टोरीवाद (Toryism) के सम्बन्ध में चाहे जितना भी कहा जाय किन्तु यदि उसके साथ डाक्टर जानसन का नाम न जोड़ा जाय तो वह अधूरा ही रहेगा। इस दिशा में हमें धारणाओं या मतों के बजाय धुँधली ईर्ष्याएँ तथा

प्रतिस्पर्धाएँ अधिक मिलती हैं। इन ईर्ष्याओं व पतिस्पर्धाओं को स्वीकार भी इसलिये करना पड़ता है कि इनके स्रोत या सूत्र बड़े ही दृढ़ तथा विश्वसनीय होते हैं। वे जीवन को हमेशा तुच्छ समझते रहे हैं तथा मानव स्वभाव के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण ऊँचा नहीं था। वे अपने विश्वासपात्र बाजवेल से कहा करते थे कि स्वतन्त्रता के ख्याल से इंगलैंड के लोग अपना मनोरंजन करते तथा थकावट दूर करते हैं। डाक्टर जानसन विभिन्न श्रेणियों में संगठित व व्यवस्थित समाज के सिद्धान्त का पूर्ण आदर करते थे। वे कहते थे 'मैं मातहती का दोस्त हूँ क्योंकि यह समाज के सुख और सन्तोष को बढ़ाने वाली होती है। वे इंगलैंड के राजा जेम्स द्वितीय के अनुयायी तथा टोरी सिद्धान्त के समर्थक थे। उनके अनुसार प्रजातन्त्रवाद या ह्निगिज्म (Whiggism) शैतान का बच्चा है। यह सभी सद्-सिद्धान्तों को अस्वीकार करता है। कदाचित उनकी धारणा थी कि यह सिद्धान्त (Whiggism) समाज को नास्तिकता की ओर ले जाता है। नास्तिकता को वह सभी अपराधों से बढ़कर मानते थे। वे रिपब्लिकनों की ईमानदारी पर तनिक भी विश्वास नहीं करते थे। रिपब्लिकन सामान्य स्तर से नीचे को ही जाते हैं ऊपर की ओर नहीं। उनके विचार से समाज में कुछ काम करना मनुष्य का कर्त्तव्य है तथा उसे उस निश्चित काम को पूरा करना चाहिए। उनके विचार से रूसो एक बुरा आदमी था। उनका कहना था कि वे रूसो को आजीवन दंड देने के फैसले पर सबसे पहले हस्ताक्षर करेंगे। उनकी दृष्टि में राजनीतिक स्वतंत्रता निरर्थक होती है। स्वतन्त्रता केवल निजी संस्थाओं (औद्योगिक या व्यावसायिक) के लिये कुछ अर्थ रखती है। वे खतरे या संकट के अवसरों पर सरकार को बहुत अधिकार सम्पन्न देखना चाहते थे और कहते थे कि शासन के अधिकार बहुत ही सीमित हैं। उनके विचार-स्वातन्त्र्य तथा वाक-स्वातन्त्र्य में भेद के फलस्वरूप ही सहिष्णुता की उपादेयता स्वीकार करनी होती है। यदि मजिस्ट्रेट कुछ सही चीज सोचता है तो उसे इसको कार्यान्वित करने का अधिकार भी होना चाहिए। डाक्टर जानसन के अनुसार अमेरिकी विद्रोह कुछ स्वार्थपूर्ण गुटबन्दियों का ही नतीजा था। अपनी पुस्तक टैक्सेशन नो टिरनी (Taxation no Tyranny) में उन्होंने 'मातहती की आवश्यकता' के अपने सिद्धान्त के

ही आधार पर ब्रिटिश सरकार का समर्थन किया था। वे कहते थे कि वे सिर्फ अमेरिकन को छोड़ कर बाकी मानव जाति के हर प्राणी से प्रेम करने को तैयार हैं।

फिर भी डाक्टर जानसन बर्क के मित्र थे और विल्कीज से परिचित होकर भी खुश थे। पदलिप्सा या धन की इच्छा कोई तुच्छता नहीं है। जो आदमी कोई चेस्टरफील्ड से पत्रव्यवहार करता है उसे मानहानि का क्या भय। वे जानते थे कि हर प्रकार की सरकार से आदमी को बचाने के लिये मानवी-स्वभाव में कोई न कोई औषधि होती है। अपनी 'आइडलर' (Idler) पुस्तक में उन्होंने प्रेमी की परिभाषा करते हुए कहा है कि 'प्रेमी वही है जो अपनी ही तरह के अन्य कमजोर तथा बेवकूफ की निगाह देखता रहता है।' उनके विचारों में अधिकांश का उद्देश्य तो तत्कालीन उदारता-वादी नीति के भावनात्मक पक्ष का विरोध करना था। वे भ्रष्टाचार के उस शोर के भी विरुद्ध थे जो ब्राउन जैसे लोगों ने मचा रखा था। उनकी धारणाओं से इस बात का भी बोध होता है कि राजनीति के किसी मौलिक सिद्धान्त को सरकार का आधार मानना एक मात्र हवाई ख्याल है। डाक्टर जानसन बुनियादी सवाल खड़ा करने वाली अटकल बाजियों से भी चिढ़ते थे। वे इस महत्वपूर्ण सत्य को नहीं समझ सके कि किसी भी युग में जब भी राजनीतिक सत्ता दूषित हुई है, उठाये गये बुनियादी प्रश्न उसे नहीं बचा पाये। रूसो और वाल्टेयर, यहाँ तक कि प्रीस्टले और प्राइस भी इसके उत्तर में केवल कतिपय तर्कहीन प्रतिस्पर्धाएँ या विचारधाराएँ ही नहीं चाहते। केवल विवादहीन प्रश्नों पर ही डाक्टर जानसन का विचार कुछ काम का हो सकता है किन्तु पेल्हम, ग्रीनविल तथा नार्थ के सामने वह व्यर्थ पड़ जाता है। कुछ भी हो। हर विचार या सिद्धान्त की कुछ न कुछ उपयोगिता होती ही है और जब युग उस सिद्धान्त की उपेक्षा करने लगता है तो स्वतः विद्रोह को आमन्त्रण मिलता है।



अध्याय ६

बर्क

(१)

ब्रिटिश वैधानिक व्यवस्था का यह विशेष गुण है कि राजा राजनीतिक मत-भेदों से परे होता है। वह देश में प्रचलित दो विरोधी सिद्धान्तों के पारस्परिक संघर्षों को मुलायम करने के मसाले के सदृश है। संविधान में यह गुण संयोग-वश ही पैदा हो गया। हम जब तक संविधान के उत्थान-पतन का समुचित अध्ययन न करेंगे तब तक यह न जान सकेंगे कि विधान में यह गुण आया कैसे। राजा को प्रभाव-हीन करने में किसी प्रकार की सुनिश्चित या सुनियोजित दूर-दूर्शिता का उतना हाथ नहीं है जितना कि महारानी विक्टोरिया का अनवरत् वैधव्य। फिर भी जार्ज तृतीय के शासनकाल के प्रथम २५ वर्षों में इस बात की पूरी कोशिश की गई कि पिछले ५० वर्षों की प्रगति पर एक रोक लगा दी जाय तथा सत्ता-सन्तुलन कायम किया जाय। इन कोशिशों को विफल करने के हेतु भी एक संघर्ष चला जो बाद में एक संवैधानिक सिद्धान्त के रूप में बदल गया।

जार्ज तृतीय ने उपरोक्त प्रयास उस समय किया जब कि उनकी अभिलाषा पूरी होने का सबसे उपयुक्त समय था। वालपोल के प्रशासन से दलीय सरकार बहुत बदनाम हो चुकी थी। बोलिंगब्रुक, कार्टरेट तथा पिट जैसे लोग भी इस प्रशासन से असन्तुष्ट थे क्योंकि इसका अस्तित्व तभी संभव था जब कि शासन-सत्ता से वे लोग हट जायँ जो कि योग्य तथा कुशल हैं। निरन्तर भ्रष्टाचार तथा स्टुअर्ट की आशाओं के विफल हो जाने से ह्विग लोग अपने पुराने आदर्शों से हट गये थे। ये लोग विभिन्न गुटों में बँट गये थे तथा प्रत्येक कुर्सी और पैसे के पीछे दीवाना था। सरकार ऐसी हो चुकी थी कि उसे अच्छी सरकार के

रूप में स्वयं को बदलना नामंजूर था। इससे यह भी सिद्ध हो गया कि एक बार भ्रष्टाचार सशक्त हो जाता है तो उसके प्रभाव की सीमाएँ नहीं होतीं और कोई सवाल करने वाला नहीं रह जाता। यद्यपि सफलता की बहुत थोड़ी ही आशा थी किन्तु फिर भी जार्ज तृतीय ने एक बार शासनसत्ता को मिनिस्टर के हाथ से अपने अन्तर्गत कर लिया था। लगभग चालीस वर्ष तक टोरी लोग सरकार से बाहर रहे। इस दौरान वे किसी के हाथ अपना समर्थन बेंचने को तैयार थे। चर्च राज्य के हाथों का खिलौना बन गया था। समूचे योरुप महाद्वीप की विचार-धाराएँ उदार-राजतन्त्र के पक्ष में होती जा रही थीं। जार्ज संकुचित, जिद्दी तथा अनुदार दृष्टिकोण के साथ सत्ता का अंधाधुन्ध प्रयोग कर रहे थे। वे बोलिंगब्रुक की राजतन्त्र की कल्पना तथा ब्लैकस्टन की पुस्तक के आदर्शों से विशेष प्रभावित थे। ऐसी बात नहीं थी कि सीमित और वास्तविक राजतन्त्र कतिपय ह्विग-परिवारों की सामन्तशाही से भी बदतर सिद्ध होता।

बाद में यह बदतर तथा असम्भव कैसे हो गया, इसके मूल में राजा का व्यक्तिगत व्यवहार था। उसकी वृद्धावस्था की दयनीय परिस्थितियो ने उसकी प्रौढ़ावस्था की मनमानियों को धुन्धला कर दिया था। वह जितना ही जिद्दी और स्वेच्छाचारी था उतना ही अनभिज्ञ भी। वह अपने अलावा किसी अन्य पर विश्वास नहीं करता था। अपने पद को उसने हमेशा गलत समझा। उसके शासनकाल के प्रथम ४० वर्षों में जब कि वह भूलें करता था और उन पर गर्व भी करता था तो उसे कोई भी पूछने वाला न था। वह विल्कीज, अमेरिका, आयरलैंड तथा फ्रांस के बारे में गलतफहमी रखता था। शासन संचालन के हेतु उसे मन्त्रियो की नहीं वरन् कर्मचारियों या नौकरो की आवश्यकता रहती थी। वह राजनीतिक व्यवस्था के सुधार के हर विचार या प्रयास पर चिढ़ता और उसे बुरा कहता था। वह गुलामो की बिक्री का समर्थक तथा टेस्ट एक्ट के उन्मूलन का विरोधी था। वह कैथोलिक स्वतंत्रता में भी बाधा डाला करता था। यदि वह ऐसा न करता तो उसकी नीति से आयरलैंड को भी कुछ राहत मिलती। हाउस आफ लार्ड्स की महत्ता को भी उसने अपने कुकृत्यों से नष्ट कर डाला था। वह इस बात के लिये दृढ़-प्रतिज्ञ था कि उसकी इच्छा ही सरकार की नीति रहेगी। यदि उसकी योग्यता

और उसकी व्यक्तिगत विचारधारा असन्तुलित न रही होती तो सम्भव था कि उसकी योजनायें कुछ दीर्घकालीन भी होतीं। तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार यदि राजनीति से कतिपय अभिजात्य परिवारों का प्रभाव समाप्त कर दिया जाता तो जनता को तनिक भी खेद न होता। ऐसे समय राजनीतिज्ञ पिट लोकप्रियता को आधार मानकर एक मन्त्रिमंडल भी बना सकते थे और हाउस आफ कामन्स स्वयं को राजा का उतना ही मातहत समझता जितना कि वह अपने को मंत्री के अधीन मानता।

फिर भी जार्ज की योजनाएँ असफल रहीं। यह असफलता बेवकूफी के कारण हुई। राजा को अपनी योजना के कार्यान्वयन का सही ढंग नहीं मालूम था। उन्होंने जिस चीज को भी छुआ उसे अव्यवस्थित कर दिया। उन्होंने वयोवृद्ध पिट के इस्तीफे को लागू करके जनता के दिमाग में एक आशंका पैदा कर दी थी। विल्कीज के सम्बन्ध में उन्होंने हाउस आफ कामन्स के सही स्वभाव पर प्रकाश डाला था। उनकी बहिष्कार-नीति से ह्विग पार्टी को कोई लाभ नहीं हुआ। ह्विग लाग अपने खोये आदर्श को पुनः प्राप्त नहीं कर सके। बर्क उन्हें एक नया दर्शन देने के लिए सामने आ गये। चैथम अपनी धारणाओं के बावजूद जनता के सामने उसके आदर के पात्र बने रहे। बर्क ने विल्कीज को प्रतिनिधि सरकार तथा व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य के सिद्धान्त का समर्थक नेता स्वीकार किया। अमेरिका हाथ से निकल गया और यह उसका दोष नहीं था कि आयरलैंड रह गया था। शुरू में उसने पर्याप्त लोकप्रियता अवश्य अर्जित की किन्तु बाद में वृद्धावस्था तथा मानसिक उत्पीड़न ने उसे इतना असमर्थ और दया का पात्र बना दिया था कि उससे नफरत भी नहीं की जा सकती थी। उनके प्रयासों का एक मात्र परिणाम यही रहा कि देश में राजनीति की पुनर्स्थापना की ओर अनिवार्यतः ध्यान आकर्षित हो गया। तत्कालीन परिस्थितियों तथा जार्ज की विफलताओं के फलस्वरूप उसने जो प्रयास किये वे कामयाब न हो सके।

यह बात नहीं थी कि जार्ज तृतीय के पास हिमायतियों या समर्थकों की कमी थी। सन् १७६१ में वालपोल के प्रतिद्वन्द्वी पुल्टने की प्रकाशित पुस्तक 'नये शासन के प्रति ईमानदार आदमी के विचार' (Seasonable Hints from an

Honest Man on the New Reign) पर उसे हाउस आफ लार्ड्स ने प्रयोग से हटने का दोषी कहा था। पुल्टने ने राजा से 'बादशाहत की छाया' मात्र से सन्तुष्ट न होने का अनुरोध किया था। गुटबन्दी ग्रस्त अभिजात्य-वर्ग के अनुचित अधिकारों पर नियंत्रण के लिये राजा से विशेषाधिकारों के प्रयोग की माँग की गई थी। सरकार कुछ प्रभावशाली लोगों की व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गई थी। राजा कुछ प्रभावशाली लोगों के हाथ की कठपुतली बन गया था। सरकार के आधारों के और व्यापक किये जाने की आवश्यकता थी क्योंकि अब प्रत्येक ईमानदार आदमी समझ गया था कि राजनीतिक भिन्नतायें केवल नाम मात्र की ही रह गई थीं। टोरियों को भी जगहें मिलनी चाहिए थीं। टोरी लोग भी अब राजतंत्र के प्रति मैत्रीपूर्ण विचार रखते थे और कम से कम अपने विरोध को असहमति का रूप कभी भी देने को नहीं तैयार थे। वे जान गये थे कि सहिष्णुता और स्थायित्व संविधान के दो मूलतत्व हैं। यदि इसके पूर्व एक बार भी ह्विग-अभिजात्य शासन को समाप्त कर दिया गया होता तो भ्रष्टाचार खत्म हो जाता और फिर उसके बाद पार्लियामेन्ट राज-पद को कभी भी न दबा सकती। वह कहता था कि मंत्रि-मंडल की इच्छा पर जार्ज अपने युवाकाल से ही यह पाठ अच्छी तरह पढ़ चुका था। यह कितनी गलत सलाह थी किन्तु लोगों को तब तक नहीं समझ पड़ा जब तक कि वयोवृद्ध पिट निष्कासित नहीं कर दिये गये। इसके बाद तो समस्त सनातन स्वतंत्रताओं के लिये खतरा ही खतरा दिखाई पड़ने लगा है।

सर्वप्रथम समूची नयी व्यवस्था की ओर जूनियस नामक लेखक ने उँगली उठायी। जूनियस को राजनीतिक विचारधाराओं के इतिहास में कोई स्थान नहीं दिया जा सकता। लेखक की इस स्थिति के फलस्वरूप ही सर फिलिप फ्रांसिस की कुटिल प्रतिभा का भी पर्दाफाश न हो सका जो बाद में आकर स्पष्ट हो सकी है। उसकी बुद्धि की पटुता किसी सिद्धान्त की व्याख्या करने में नहीं बल्कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को काटने-छाँटने या उसको छिन्न-भिन्न करने में अधिक सक्रिय होती थी। उसकी शैली ही उसकी ताकत थी। उसकी जानकारी ऐसी थी कि वह राजनीतिक क्षेत्रों के अन्दरूनी से अन्दरूनी रहस्यों को जनता तक पहुँ-

चाता था। उसका मस्तिष्क संकुचित होते हुए भी बड़ा ही पांडित्य-सूचक था। अमेरिकी टैक्सेशन के सम्बन्ध में वह ग्रेनविल का समर्थन करता था। संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र को पार्लियामेंट नहीं खत्म कर सकती, बिना इस तथ्य को सोचे-समझे हुए वह अपने पक्ष पर डटा रहता था। वह कभी भी उदार नहीं था। सदैव आलोचनापूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत करता था। उसके अनुमानों के मूल में सत्य भी नहीं होता था। वह किसी भी प्रश्न को बड़ी स्पष्टता के साथ समझता था तथा राजा की पराजय का एक बहुत बड़ा कारण बना हुआ था। वह राजनीतिक मतभेदों को हमेशा जनता के सामने ला देता था यह बात दूसरी है कि उस जनता को मताधिकार न प्राप्त हो। उसके पत्र जो दैनिक अखबारों में छपते थे उनसे उनका राजनीतिक महत्व बढ़ जाता था और वह महत्व चिरस्थायी हो जाता था। उस समय जब कि देश की राजनीतिक स्थिति की जानकारी दुर्लभ थी वह जार्ज द्वारा की जा रही कोशिशों को खुले आम जनता के सामने रख देता था। विरोध पक्ष गुटों में बँट गया था और राजा के समर्थकों की संख्या भी कम न थी। विविध प्रश्नों पर हुई बहस का प्रकाशन तो सर्वथा असम्भव सा था। तत्कालीन ब्रिटिश सरकार एक रहस्य-पूर्ण संघर्ष का रूप ले चुकी थी। यद्यपि यह गभीर प्रश्न बहस का विषय था किन्तु बाहरी दर्शक इस संघर्ष की झलक तक नहीं पाते थे। यह जूनियस का ही दिमाग था, उसकी ही प्रतिभा थी कि उसने इन सब गड़बड़ियों का अन्त किया। हाउस आफ कामन्स तथा राजा की पूरी ताकत या लार्ड मैन्सफील्ड के मानहानि के सिद्धान्त से भी जूनियस की आलोचना करने की शक्ति कुण्ठित न की जा सकी। कभी-कभी बुरे आदमी भी अच्छे गन्तव्य तक पहुँचने में सहायक हो जाते हैं। इसी प्रकार ब्रिटिश इतिहास में अनेक ऐसे प्रसंग है जो इस प्रतिकारपूर्ण घृणा तथा उद्दण्ड लालसा के गठबन्धन से भी अधिक उत्सुकता-मूलक हैं।

२

फिर भी आगे चल कर, एडमण्ड बर्क के विचारों से जार्ज को मात खानी पड़ी क्योंकि बर्क ने राजनीति के दर्शन में राजनीतिक मतभेदों को समुचित स्थान

दिया है। यद्यपि कोई भी विचार या सिद्धान्त चिरस्थायी नहीं होता किन्तु यह श्रेय बर्क को ही है कि उन्होंने महत्वपूर्ण प्रश्नों पर बहस की प्रथा को स्थायी रूप दिया और सदैव बहस में प्रधान व्यक्ति के रूप में भाग लिया। उनका जीवन १८वीं शताब्दी के इंगलैंड के राजनीतिक गुणों और दुर्गुणों का एक सम्मिश्रण कहा जा सकता है। बर्क के पिता प्रोटेस्टेन्ट मतानुयायी आयरलैंड के वकील थे तथा माता कैथोलिक थी। डब्लिन के ट्रिनिटी कालेज में पढ़ने के बाद वे ग्रब-स्ट्रीट में राजनीतिक जीवन बिताने लगे। ग्रबस्ट्रीट में ही उन्हें विविध क्षेत्रों का स्वस्थ ज्ञान प्राप्त हुआ जिसने उन्हें हाउस आफ कामन्स में अपने समय का अद्वितीय प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति सिद्ध कर दिया। उनकी सबसे पहली रचना 'ए विन्डिकेशन आफ नेचुरल सोसायटी' (A Vindication of Natural Society) थी। यह रचना बोलिंगब्रुक की रचनाओं की टक्कर की हास्य-प्रधान रचना थी। इस रचना से जनता ही नहीं प्रभावित हुई वरन् यह गाडविन (Godwin) की 'पोलिटिकल जस्टिस' (Political Justice) की आधार-शिला बन गई। वे आयरलैंड में काम करने के इरादे से गये थे। उनके एक भाषण को सुनकर लार्ड राकिंघम ने उन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया। लार्ड राकिंघम ह्विग पार्टी के नेता थे। इनके सेक्रेटरी के रूप में काम करते समय ही ३६ वर्ष की आयु में बर्क पार्लियामेंट के सदस्य चुन लिए गये और फिर अपनी मृत्यु के समय तक (१७९७) संसद के सदस्य बने रहे। उसके पूर्व उनकी प्रतिभा की ख्याति चतुर्दिक फैल चुकी थी। उन्होंने पे-मास्टर जनरल के पद पर भी काम किया था। समूचे इंगलैण्ड ने जिस व्यक्ति का राजनीतिक शिष्यत्व स्वीकार किया है उसे कौन्सिल बोर्ड की सदस्यता न मिल सकी। फिर भी फ़ाक्स और पिट की भाँति बर्क भी अपनी विशेष प्रतिभा के लिए विख्यात हो गये। वे राजनीतिक अक्ल-मन्दी के स्रोत माने जाने लगे। कोई भी राजनीतिक जो बगैर उनके द्वारा सुझाई गई तरकीबों व युक्तियों के साथ राजनीति में नहीं चलता था उसकी तुलना उस माझी या मल्लाह से की जाती थी जो अथाह और अज्ञात समुद्र में अपनी नौका छोड़ चुका हो।

इसे बर्क का सौभाग्य ही कहा जायगा कि उन्हें अनुदार राजनीतिक दर्शन

का पैगम्बर माना जाता था और साथ ही साथ उनकी कृतियाँ उदार दलीय लोगों को भी प्रसन्न किये रहती थी। वे बड़े ही लोकप्रिय व्यक्ति हो गये थे। जानसन कहा करते थे कि 'बर्क अविरल बुद्धि-प्रवाह के मनुष्य हैं।' गोल्डस्मिथ के अनुसार 'बर्क साँप की तरह गहन से गहन विषय के तह मे भी प्रविष्ट हो जाते थे।' लार्ड मेकाले बर्क के सम्बन्ध में कहते थे कि मिल्टन के बाद वही सबसे महान व्यक्ति हो सके थे। लार्ड मार्ले के अनुसार बर्क अग्रेज जाति में राजनीतिक बुद्धि के सबसे बड़े व्यक्ति थे। सर लेजली स्टीफेन के अनुसार बर्क ऊँची प्रशसा के पात्र थे। बाद में भी बर्क के सम्बन्ध में जो धारणायें सामने आई उनमे भी इसी प्रकार के विचार निहित थे। उनका स्वभाव बड़ा खरा और तेज था। वे अपने निर्णयों पर दलगत भावनाओं को कितना हावी होने देते थे इसका भी समुचित प्रमाण है। लार्ड चैथम से भी उनका सम्बन्ध था। वे अपनी विरोधी विचारधाराओ के कट्टर आलोचक थे। बर्क कुशल वक्ता भी थे। उनके भाषण बड़े हा विस्तृत तथा आत्म-नियत्रण रहित हाते थे। ग्लैडस्टन के अनुसार बर्क के भाषण कभी-कभी इतने दाये-बायें या भटके हुए होते थे कि उनके सिद्धान्त बिल्कुल अस्पष्ट हो जाते थे। फिर भी उत्तेजना मे भी वे अपने मित्रो के प्रति सदैव वफादार बने रहे। अपेक्षाकृत गरीबी के दिनों में भी वे अपने जीवन-यापन मे बैरी तथा क्रैबे को शामिल किये रहते थे। राजनीति के क्षेत्र में फाक्स से उनका सधि थी जो बाद में समाप्त हो गइ थी। उन पर तुच्छ लालसाओं का लाछन नही लगाया जा सकता। जनता के हित के विरुद्ध वे कभी कुछ भी नहीं सोचते थे। किसी भी आदमी ने कभी भी इस प्रकार निस्वार्थ-भाव होकर देश की सेवा में अपने को नही लगाया। बर्क के मुकाबले किसी भी अन्य ब्रिटिश राजनीतिज्ञ ने छोटे-छोटे तथ्यो को सामने रखकर राजनीतिक सिद्धान्तो का चिन्तन-मनन नहीं किया।

बर्क राजनीति की किसी विशिष्ट विचारधारा के समर्थक नहीं कहे जा सकते। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो मे भी कोई ऐसा प्रभाव नहीं दृष्टिगोचर होता जिससे उन्हें किसी विचारधारा से सम्बन्ध कहा जा सके। उनके राजनीतिक विचारों पर हाउस आफ कामन्स की तत्कालीन समस्याओं की छाया रहती थी।

उन्हीं समस्याओं से ही बर्क अपने राजनीतिक सिद्धान्तों की सृष्टि करते थे। इतना ही नहीं। अपनी नैतिक उदारता के स्वभाववश बर्क दमन के घोर विरोधी थे। ब्राइट तथा कोबन जिसकी आलोचना मात्र करते थे उसे लेकर बर्क खड़े हो जाते थे। उन्हें जो कुछ भी कहना होता था उसे जिन वाक्यों में कहते थे वे वाक्य प्रकाशकीय-पटुता के सिद्धान्त-वाक्य बन जाते थे। बर्क का कार्यक्षेत्र नहीं बल्कि चिन्तन-क्षेत्र लन्दन से लेकर भारत तथा अमेरिका तक फैला हुआ था। बर्क भारत में भारतीय किसानों की समस्या पर जिस गहराई से सोचते थे उसी गहराई और सहानुभूति से वे आयरलैण्ड के प्रति चल रही अन्यायपूर्ण ब्रिटिश नीति पर भी विचार करते थे। यद्यपि ह्यूम तथा ऐडम स्मिथ ने इन प्रश्नों पर गम्भीरता और उदारतापूर्वक सोचा है किन्तु बर्क ने जिस गम्भीरता और उदारता से इन प्रश्नों पर विचार किया उससे उन्हें अपेक्षाकृत अधिक अर्न्तदृष्टि प्राप्त हुई। वे राजनीति के सनातन-सिद्धान्तों पर सदैव अपनी तीक्ष्ण दृष्टि रखते थे। वे जानते थे कि यदि आदर्शों या सिद्धान्तों के प्रभाव को कायम रखना है तो उसे पार्लियामेन्ट का कानून बना दिया जाना चाहिए। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि उनके द्वारा प्रतिपादित राजनीति या उसके सिद्धान्त औचित्य पर निर्भर करते हैं किन्तु वे यह भी कहते थे कि जो कुछ वे ठीक समझते हैं उसे ही औचित्यपूर्ण क्यों कहा जाय। यह उनके राजनीतिक जीवन को बिल्कुल निष्कलंक सिद्ध करता है। इंगलैण्ड में ऐसे भी लोग हुए हैं जिनका राजनीतिक प्रभाव तत्काल से दिखाई पड़ने लगा है। बर्क को हाब्स या लाक जैसा प्रभावशाली नहीं कहा जा सकता। किन्तु जहाँ तक मध्यम मार्ग का प्रश्न है, तथ्यों तथा उससे सम्बन्धित अनुमानों का सम्बन्ध है बर्क निस्सन्देह सर्वोपरि थे। इस सम्बन्ध में उनका जैसा ब्रिटिश राजनीति में कोई नहीं हुआ। योरुप महाद्वीप में रोयर कालार्ड को उनके समकक्ष कहा जा सकता है किन्तु जहाँ तक व्यावहारिक अन्तर्दृष्टि का प्रश्न है वह उनका सरीखा नहीं ठहरता। यद्यपि हैमिल्टन बर्क की राजनीतिक-प्रतिभा के निकट पहुँचा है किन्तु नैतिक धरातल पर वह उनसे कुछ नीचे ही रह जाता है। इस प्रकार बर्क अपने क्षेत्र में अद्वितीय सिद्ध होते हैं। गोल्डस्मिथ के अनुसार बर्क की जो शक्ति पार्टी से

सम्बन्धित मामलों पर खर्च हुई है उससे तो राज्य के सभी व्यापक पहलुओं पर रोशनी बिखर जानी चाहिए थी। ऐसी कोई भी समस्या नहीं जिसमें उन्होंने हाथ लगाया हो और अधिक से अधिक तथ्य न प्राप्त किया हो।

(३)

अपने समय के विविध राजनीतिक प्रश्नों पर उन्होंने जो विचार व्यक्त किये उससे उनका उदारता का सिद्धान्त (Liberalism) स्पष्ट हो जाता है। आयरलैंड, अमेरिका तथा भारत के सम्बन्ध में सोचते समय उन्होंने सदैव भविष्य पर निगाह रखी है। जब कभी संवैधानिक सुधारों पर कुछ वाद-विवाद हुआ है बर्क ने सीधे उस घाव या बुराई पर उँगली रखी है जिसकी कि दवा की जानी चाहिए। फिर भी बर्क की बाद की पीढ़ी के लोगों को उनकी योजनाओं व उनके विचारों में अनुदारता दिखाई पड़ती थी। अपने जीवन की अन्तिम दशाब्दी में बर्क ने योरुप महाद्वीप पर रिफार्मेशन के युग से छाए बौद्धिक धुएँ का विरोध किया और यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि उन्होंने ऐसा करने में प्रायः उसकी उपादेयता तथा उसके अर्थ को भी नहीं समझा। फिर भी जहाँ तक ब्रिटिश तथा फ्रांसीसी संविधान का प्रश्न है बर्क तत्सम्बन्धी सभी व्यावहारिक जानकारियों से पूर्ण थे। यदि उनकी चेतावनी को नफरत की निगाह से न देखा गया होता और उसकी ओर समुचित ध्यान दिया जाता तो फ्रेंच-क्रान्ति की शक्तियों का ऐसा उपयोग किया जा सकता था कि देश में फौजी तानाशाही कदापि न स्थापित हो पाती। यहाँ पर वे कुशल भविष्य-द्रष्टा सिद्ध हुए। यदि अभिजात्य-वर्गीय शासन की बुराई को वे देख सकते होते जिसकी कि उन्होंने ४० वर्षों तक तीखी आलोचना की थी तो निश्चित रूप से बुद्धिमानी और सुधारों का युग शुरू हो गया होता। लेकिन बर्क लोकतंत्रवादी नहीं थे यह बात दूसरी है कि मौका आने पर वे उसकी प्रशंसा भी किया करते थे। वे मुख्यतः इस बात से प्रभावित थे कि संविधान में अपेक्षाकृत बुराइयाँ कम होती हैं बशर्ते कि उनके दोषों को सावधानी से छाँट दिया जाय। कभी-कभी बर्क अपने विचारों पर गहराई से मनन करते थे और यह भी असत्य नहीं है कि यदि उन्हीं की

कृतियों का अध्ययन किया जाय तो उसके अनुदारता के सिद्धान्त का उत्तर भी उनसे प्राप्त हो सकता है। किन्तु वे शांति के प्रतीक तथा शांतिपूर्वक प्रतीक्षा करने के समर्थक थे। विशेष अधिकारों (Privileges) के उन्मूलन का जो आन्दोलन चल रहा था वे उसके परिणाम की सब्र के साथ प्रतीक्षा करना चाहते थे। वे जनकल्याण के प्रश्न पर सोचते समय दैवी शक्ति का बड़ा ध्यान रखते थे और इसे दैव के विधान में हस्तक्षेप मानते थे। अपने उदार से उदार क्षणों में भी वे सदैव सावधानी को महत्व देते थे। यदि बड़ी से बड़ी बुराई भी परिवर्तन लाने में खतरनाक मालूम होती तो वे उस बुराई को बरदाश्त या सहन कर लेना ही ठीक समझते थे।

उनके अमेरिका सम्बन्धी भाषण उपनिवेशीय-प्रशासन के हेतु पाठ्य-पुस्तक के ही समान थे। ग्रेनविल जैसे विद्वानों को अधिकार की दलील बड़ी प्रिय थी किन्तु बर्क उसकी भी कभी-कभी उपेक्षा करते थे। वे इस बात से बहुत चिन्तित या प्रभावित थे कि लोग सत्ता की छाया में सब कुछ भूल जाते हैं और स्वतन्त्रता के मूल की खोज छोड़ देते हैं। वे यह भी अच्छी तरह जानते थे कि ब्रिटिश-स्वतन्त्रता के साथ ही साथ अमेरिकी सफलता भी अवश्यम्भावी है। वे कहते थे कि ब्रिटिश संवैधानिक अधिकारों तथा विशेषाधिकारों की लड़ाई में जो शक्ति विजयी सिद्ध हुई अब वही अँग्रेज जाति को अधीनता में रखने की आदी हो गई है। यह बाद में ब्रिटिश स्वतन्त्रता के लिए भी घातक सिद्ध हो सकती है। बर्क इस अन्दरूनी खतरे के प्रति बड़े सजग थे जो कि कतिपय इच्छाओं के दमन के हेतु स्वतन्त्रता को सीमित करता है। उन्होंने अपने एक भाषण में (Speech on Conciliation with America) कहा था कि 'यह सिद्ध करने के लिए कि अमेरिका वासियों को किसी भी प्रकार की स्वतन्त्रता का अधिकार नहीं है हम अपने सिद्धान्तों को भी निम्न कोटि की ओर खींच रहे हैं जब कि हमारे ये सिद्धान्त हमारी सही अन्तरात्मा का प्रतिनिधित्व करते हैं।' बर्क के अनुसार ऐसे लोग जो निम्नकोटि के लोगों को अमेरिकनों से मुकाबले के लिए तैयार कर रहे हैं वे अप्रत्यक्ष रूप से पिट के एकतंत्र के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर रहे हैं। अमेरिकन टैक्सेशन (American Taxation) से सम्बन्धित अपने भाषण

में उन्होंने लोगों के इस ख्याल को भ्रमपूर्ण कहा था कि लार्ड नार्थ के वित्तीय-प्रयास कामयाब हो जायँगे। सही तरीका तो शांति का मार्ग मिलने पर ही सम्भव हो सकता है। उन्होंने हाउस आफ कामन्स में कहा था कि जब सबके सब देश-वासी किसी एक मत पर दृढ़ हैं तो मैं यह नहीं मान सकता कि मुलायमियत दिखाने से समझौते का मार्ग प्रशस्त होगा। कुछ दिनों बाद बर्क ने यह भी कहा था कि कभी-कभी राजनीति में उदारता दिखाना बुद्धिमानी नहीं मानी जाती। इतना बड़ा साम्राज्य तथा कुछ बीमार दिमाग इस समय एक साथ निकलते जा रहे हैं। बर्क यह नहीं समझ पाये कि समूचे ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध कोई सिद्धान्त कैसे प्रचलित कर दिया जाय। उनका कहना था कि यदि स्वतन्त्रता की डोर से उपनिवेशों को बाँधा जाय तो ये सदैव के लिए इंगलैण्ड के हो सकते हैं। वे यह जानना चाहते थे कि अपनी प्रजा को पीड़ा पहुँचाना हमारा अधिकार हो गया है या कि उसको सुखी बना सकने में हमारे हितों को खतरा है। यह समस्या एकमात्र अधिकार की ही नहीं है वरन औचित्य तथा अनौचित्य की भी है। यदि हम अमेरिकी इच्छा की पूर्ति कर दें तो हमारा कोई नुकसान नहीं होता। इंगलैण्ड का हर आदमी जानसन और गिब्बन का विशेष ख्याल करता था। फिर भी जिद्दी राजा की बात मानी जाती थी और बर्क के सिद्धान्तों पर केवल इतना ही ख्याल किया जाता था कि वे भविष्य में कानून के रूप में बदले जा सकते हैं। हुआ भी ऐसा ही। ९० वर्षों के बाद ब्रिटिश नार्थ अमेरिका कानून (British North America Act) बना और बर्क का स्वप्न साकार होकर दुनिया के सामने आया।

बर्क के विचारों में, उनके आयरलैंड के प्रति सहज स्नेह के अतिरिक्त उसके लिए एक महत्वपूर्ण स्थान भी था। उनके मस्तिष्क में आयरलैंड की आजादी के हेतु कुछ करने का विशेष इरादा था। वे समझ गये थे कि अमेरिका की तरह आयरलैंड में भी किसी को गुलाम नहीं बनाया जा सकता। यदि सरकार ने जनता की बुनियादी इच्छा को दबाने का प्रयास किया तो उसका अनिष्ट अवश्य-म्भावी है। यदि अपनी प्रजा के बहुमत की इच्छाओं का सरकार अनादर करेगी तो उसे स्थायीत्व कैसे प्राप्त हो सकता है। क्वीबेक के कैथोलिक तथा भारत के

मुसलमानों के मुकाबले आयरलैंड के कैथोलिकों के साथ क्यों कम न्याय किया जाय। उन्होंने अपने एक पत्र में (Letter to Sir Hercules Langrishe) कहा था कि प्रोटेस्टेन्ट शासन सत्ता के अन्तर्गत ब्रिटिश-प्रजा दमन, दरिद्रता तथा हीनता-ग्रस्त होती जा रही है और प्रजा के मानवी-स्वभाव में भी तुच्छ तत्व प्रविष्ट होने का प्रयास कर रहे हैं। कैथोलिकों ने अपने टैक्सों का भुगतान कर दिया, वे फौज तथा नौसेना में जगहें पाने लगे तो उन्हें कामनवेल्थ, कामनसेन्स तथा कामन जस्टिस से क्यों वंचित रखा जाता है। उनको गुलाम रखकर यही तो थोड़ा-सा मुआवजा उन्हें दिया जाता है। ब्रिटिश संविधान कुछ महान् तथा सामान्य मान्यताओं से बना है। यदि विधान मान्यताओं को नष्ट करना चाहता है तो ये मान्यताएँ एक दिन विधान को नष्ट कर सकती हैं। कहा जाता था कि कैथोलिकों में कुछ लोग हमेशा विद्रोहोन्मुख रहते हैं, इसलिए उनके पूरे समाज को दमन की चक्की में पीसा जाय। बर्क कहते थे कि यदि कुछ लोग लड़ाकू प्रवृत्ति के हैं तो उनको इस स्थिति में रक्खा जाय कि वे सदैव किसी न किसी समस्या को लेकर शिकायत करते रहें। प्रजा के हित के सम्बन्ध में वे उसके अधिकार को प्राथमिकता देते थे और कहते थे कि अच्छी सरकार के लिए जरूरी है कि वह प्रजा की इच्छाओं को उनकी माँग के रूप में मान्यता प्रदान करती रहे। प्रजा की इच्छा या उसकी माँगों की उपेक्षा करने का अर्थ है समूचे देश में एक तरह के कोहराम के वातावरण को बनाये रखना। ऐसी स्थिति का अन्तिम परिणाम निश्चित रूप से अनिष्टकारी ही होगा।

बर्क के समस्त राजनीतिक जीवन में इससे बढ़कर सराहनीय कोई दूसरा सिद्धान्त नहीं रहा कि वे भारत में कम्पनी की हुकूमत की बुराइयों को समाप्त करना चाहते थे। वे इस सिद्धान्त को लेकर कहाँ तक आगे भी बढ़े यह अनुसन्धानों से जाना जा सकता है। किन्तु अभी तक कोई ऐसी चीज प्रकाश में नहीं आई कि बर्क के इस सिद्धान्त पर किसी ने सन्देह प्रकट किया हो। बर्क पहले अँगरेज थे जिन्होंने पराधीन जातियों या देशों की समस्या की गम्भीरता को समझा। बर्क ने भारत में अँगरेजी शासन के न रहने की बात कभी नहीं कही। हो सकता है उन्हें अपनी सफलता पर संदेह रहा हो। वे केवल इस बात पर हमेशा जोर देते रहे

कि विजेता देश को चाहिए कि वह विजित या पराधीन जाति के प्रति कतिपय नैतिक सद्भावनाओं का पालन करे। झूठ हमेशा झूठ ही है चाहे उसका शिकार कोई गोरा हो या कोई काला। बर्क का कहना था कि किसी भी योरुपियन को भारत में हिन्दुओं का उतना ही सम्मान करना चाहिए जितना कि किसी योरुपीय देश में एक हिन्दू की इज्जत होनी है। बर्क का कहना था कि यदि भारत में अच्छे शासन प्रबन्ध के लिए कुछ नये तरीके न निकाले गये तो भारत और ब्रिटेन के बिलगाव की पृष्ठभूमि तैयार हो रही है क्योंकि कोई भी आदमी इस बात के लिए नहीं तैयार होगा कि भारत की समूची प्रजा या जनता को ब्रिटिश-सविधान की वेदा पर बलिदान कर दिया जाय। भारत में इङ्गलैण्ड का शासन भारत के फायदे और हितो के रक्षार्थ होना चाहिए अन्यथा भारत में ब्रिटिश प्रभुत्व होना ही न चाहिए। भारत में ईस्ट इडिया कम्पनी के प्रभुत्व तथा व्यापारिक प्रभाव का भी कुछ औचित्य हो सकता है किन्तु जहाॅ तक कम्पनी के अधिकार का प्रश्न है ताकत के बल पर यह भी अनुचित है। ईस्ट इंडिया कम्पनी की व्यवस्था इसके बिल्कुल विपरीत है। भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी की व्यवस्था के बारे में बर्क ने एक जगह कहा है कि भारत के रहने वालों को कम्पनी कुछ भी न दे सकी सिवाय इसके कि भारतवासी भूखे-प्यासे पक्षी के समान सीमाहीन और आशाहीन उड़ानें भरने के लिये स्वतंत्र हैं। उनकी भूख-प्यास बढ़ती जायगी और हर उड़ान निरर्थक सिद्ध होगी। जहाँ तक भारतवासियों की आदतों व उनकी आवश्यकताओं का प्रश्न है कम्पनी के प्रबन्धक व अधिकारीगण उसे समझने में असफल रहे। बर्क ने आगे कहा है कि 'अँग्रेज युवक जो भारत पहुॅंचते है वे सत्ता-मद का पान उस समय से ही करने लगते हैं जब कि उनका सिर वह बोझ सँभाल नहीं सकता। इसके बाद सैद्धान्तिक रूप से परिपक्व होने के पूर्व ही वे काफी पैसा कमा लेते हैं। इस समय तक अपने अधिकार के उचित प्रयोग की बुद्धि भी उनमें नहीं होती। परिणाम यह होता है कि अपने जिस आचरण के प्रति उनको पछतावा होना चाहिए वे उसे महसूस नहीं कर पाते। उनके विरुद्ध शिकायतें या उसकी रिपोर्ट इंगलैण्ड भेजी जाती हैं। बेचारे भारतीयों की चीख-पुकार मानसूनी हवाओं के साथ महासागरों की गरजती लहरों में विलीन हो जाती

है ।' बर्क के विचारों को उनके प्रशंसकों व व्याख्याकारों द्वारा कानून का रूप देने में एक शताब्दी से अधिक लग गया। किन्तु किसी अन्य भाषा में राजतंत्र में निहित खतरों का इतना स्पष्ट संकेत नहीं मिल सकेगा। बर्क कहा करते थे कि मनुष्य अपने कर्त्तव्यों का उपदेशक है । उन्हें यह अच्छी तरह ज्ञात हो गया था कि कोई भी देश दूसरे देशों के दुर्गुणों या बुराइयों से किस प्रकार प्रभावित होकर बुरा या भ्रष्ट हो जाता है। वे यह भी जानते थे कि अपने देश से बाहर कठोरता या निर्दयता दिखाने वाला शासन बाद में अपने देश में भी कठोर या निर्दय हो सकता है। वे यह भी समझते थे कि साम्राज्य के दूसरे भागों में अँग्रेज जो गलतियाँ करते हैं उसकी प्रायः आलोचना की जाती है। वे इस बात को मानने से इनकार करते थे कि इङ्गलैण्ड के बाहर उपनिवेशों की सरकारें एक मात्र व्यापारिक सौदे की तरह हैं। इन सरकारों के सामने अधिक पैसा प्राप्त करना नहीं वरन् अधिक कुछ नैतिक लाभ हासिल करना उद्देश्य होना चाहिए। बर्क राजनीति में प्रतिष्ठा के प्रश्न को सामने रखने के तरीके में सर्वथा अविश्वास करते थे। यद्यपि वे यह समझते थे कि दूरवर्ती उपनिवेशों का प्रशासन कठिन है किन्तु वे हमेशा कहा करते थे कि यद्यपि हम भारत को इङ्गलैंड के सार्वजनिक हितों व राष्ट्रीय-प्रतिष्ठा को देखते हुए अपने से अलग नहीं कर सकते किन्तु फिर भी हम भारत के लिए जो कुछ कर सकते हैं उसे तो करना ही चाहिए। इसी प्रकार चीन और अफ्रीका के ब्रिटिश उपनिवेशों के बारे में भी हमें सोचना चाहिए। बर्क के मस्तिष्क में मुख्य समस्या यह थी कि ये सुदूरवर्ती उपनिवेश कहीं तानाशाही व स्वेच्छाचारी प्रवृत्तियों के उद्‌गम-स्थल न हो जायँ। लेकिन इसके बचाव में करना क्या चाहिए बर्क यह अधिक स्पष्ट नहीं कर सके थे। वे जानते थे कि हर जगह अच्छे शासन की जरूरत है। वे यह नहीं समझ सके कि क्या यह प्रश्न स्व-शासन से भी हल हो सकता है। उनके विचारों में सबसे बाद में दी गई शिक्षा यही थी।

(४)

राजनीतिक कार्यों को नैतिक स्वरूप प्रदान करने के संकल्प के परिणाम

स्वरूप ही बर्क के विचारों से एक नयी विचारधारा तैयार हो गई। जहाँ बर्क ने अपने देश की आन्तरिक व्यवस्था तथा फ्रांस की राज्यक्रान्ति पर विचार व्यक्त करना आरम्भ किया है वहीं उनकी विचारधारा में निहित मूल तत्व अधिक स्पष्ट हुए हैं और इतने स्पष्ट हुए हैं कि अब उन्हें समझने में भूल होना कठिन ही था। बर्क एक उपयोगितावादी दार्शनिक थे और उनका मत था कि जो चीज पुरानी हो गई है वह इसलिए महत्वपूर्ण हो जाती है कि वह प्रौढ़ावस्था को पहुँच चुकी रहती है। उनके विचार से राज्य एक चेतना-युक्त संगठन है और धीरे-धीरे अपने मौजूदा स्वरूप में आया है। वे कहते थे कि विनाश करना आसान है किन्तु निर्माण कठिन होता है। उनके विचार से राजदर्शन व्यक्तिगत अनुभवों को सामान्य रूप देना मात्र है। वे विवेक को भी एक महत्वपूर्ण शक्ति या तत्व मानते थे। वे इस बात से बहुत प्रभावित थे कि नीति-निर्धारण में मन की धारणायें बड़ा उल्लेखनीय पार्ट अदा करती हैं। उन्हें इस बात में तनिक भी सन्देह न था कि सत्ता प्राप्त करने में तोड़-मरोड़ करना भी अव्यवस्था का ही द्वार खोलना है। हमें उनके सिद्धान्तों से धार्मिक तत्व को भी लुप्त नहीं करना चाहिए। वे इस बात में भी कभी सन्देह नहीं करते थे कि धर्म ही अंग्रेजी राज्य की आधारशिला है। अपनी Reflections on French Revolution पुस्तक में बर्क ने लिखा है कि अंगरेज लोग अच्छी तरह जानते हैं और हम इसे अन्दर से महसूस भी करते हैं कि धर्म ही हमारे समाज की आधारशिला है तथा यही सभी अच्छाइयों एवं सुखों का स्रोत है। बर्क के इस कथन का यह अर्थ नहीं कि वे विवेक में विश्वास नहीं करते थे वरन् इससे यह स्पष्ट है कि वे सामाजिक तथ्यों की आध्यात्मिक व्याख्या में विश्वास करते थे। बर्क वियोजक-विधि के (Deductive Method) दार्शनिक थे। वे केवल गलत उप-चारों या दुश्चिकित्सा के प्रति सावधानी करते थे।

अपने आरम्भ के विचारों में वे पृथक्करण के विरोधी थे और उनका यह सिद्धान्त अन्त तक उनके साथ रहा। वे अधिकार को मापदण्ड मानकर अमेरिका के प्रश्न पर विचार करने को तैयार नहीं थे। उन्होंने अपने एक भाषण में (Speech on American Taxation) कहा है कि मैं दैवी विभिन्नताओं

पर नहीं जाता क्योंकि मैं इससे नफरत करता हूँ। उन्होंने अपने Reflections में कहा है कि गलत ढङ्ग से संचालित राज्य का पहला लक्षण यह है कि राज्य के लोग सिद्धान्त का सहारा पाने के लिए आतुर हो जाते हैं। बर्क ने Speech on the Duration of Parliament में कहा है कि संयुक्त समाज की बुनियाद के सम्बन्ध में बहुत अधिक खोज-बीन करने की प्रवृत्ति सर्वथा निन्दनीय है। बर्क ने सामाजिक अनुबन्ध के सिद्धान्त (Social Contract Theory) को कहा हैं कि यह सिद्धान्त सामाजिक व नैयायिक सिद्धान्तों का एकमात्र अस्तव्यस्त सम्मिश्रण है। उन्होंने लोकप्रिय सार्वभौमिकता के सिद्धान्त को सारहीन कहा है। बर्क ने अपनी Appeal from the New to the Old Whigs में कहा है कि नैतिकता के नियम गणित के नियमों की तरह बिल्कुल अकाट्य या आदर्श-स्वरूप नहीं है। नैतिकता के सिद्धान्त गम्भीर, व्यापक तथा विस्तृत होते हैं। ये अपवादों से परे नहीं होते तथा संशोधन की भी अपेक्षा करते हैं। ये अपवाद तथा संशोधन मिले और स्वीकार भी हुए हैं किन्तु ऐसा तर्क के आधार पर नहीं वरन् बुद्धिमानी और विवेक के आधार पर हुआ हैं। बुद्धिमानी राजनीतिक या नैतिक गुणों में प्रथम ही नहीं है वरन् यह राजनीतिक तथा नीति का संचालक या मापदण्ड भी है।

मानवी सिद्धान्तों तथा उनसे सम्बन्धित कार्यों का यह भी एक मापदण्ड है कि कोई सिद्धान्त-विशेष मनुष्य को कहाँ तक उसके अनुकूल पड़ता है या नहीं या वह उसकी संशोधित प्रवृत्तियों के अनुरूप होता है या नहीं।

मनुष्य के सामान्य स्वभाव से सम्बन्धित सत्यों को इनकार करना बड़ा कठिन है। किन्तु ब्रिटिश संविधान पर इस चीज को लागू करते समय बर्क ने दूरदर्शिता के जो नियम बनाये हैं वे बड़े ही संकीर्ण माने गये हैं। उन्हें इस बात में भी कोई सन्देह नहीं रहा कि कानूनों के बनाने का मुख्य उद्देश्य समाज को एक विशिष्ट स्वरूप तथा निर्देश प्रदान करना है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि क्रान्ति राज्य तथा उसकी प्रजा के बीच उत्पन्न विवाद का एक नतीजा होता है तथा प्रायः प्रजा के पक्ष में होता है। उन्होंने ग्रेनविल विधेयक पर विचार व्यक्त करते हुए विवाद-ग्रस्त चुनावों पर किये जाने वाले निर्णयों के तरीके को

सुधारने पर अधिक जोर दिया था। मिडिल्ज सेक्स इलेक्शन में बर्क ने बड़ी खूबी से लोक-हित का समर्थन किया था। वे इस पक्ष में भी थे कि संसद में हुई बहसों तथा चुनाव सूचियों को कई भागों में प्रकाशित किया जाना चाहिए। बर्क ने उस नियम को भी समाप्त करने के लिए बड़ी जोरदार अपील की थी जिसके अनुसार सरकारी माल अधिकारियों (Revenue Officers) को भी मतदान का अधिकार दिया गया था। इस नियम के अनुसार सरकार को अनायास ही वोटो की बड़ी ताकत प्राप्त हो जाती थी। उन्होंने सन् १७८० में आर्थिक सुधारो (Economic Reforms) पर जो विचार व्यक्त किया था वे बड़े ही सफल और प्रशंसनीय माने जाते हैं।

कुछ भी हो बर्क को उनके निजी सिद्धान्तो तथा मापदण्डों से आगे जाने को नहीं कहा जा सकता है। वे अल्पकालीन संसदों के भी खिलाफ थे। उनका कहना था कि अल्पकालीन संसदों के चुनाव और भी भ्रष्टाचारपूर्ण होंगे तथा चुने जाने वाले संसद सदस्य जिम्मेदारी कम महसूस करेंगे। उन्होंने 'प्लेस बिल' (Place Bill) का भी इस आधार पर विरोध किया था कि इस विधेयक के अनुसार कार्यपालिका शक्ति विधायिका से अधिक शक्तिशाली हो जाती है। अपनी ब्रिस्टल की स्पीच (१७७४) में उन्होंने यह भी अस्वीकार किया है कि पालियामेंट का मेम्बर केवल अपने निर्वाचन क्षेत्र का ही प्रतिनिधि है। वे संसद सदस्य को अपने निजी विचारों तथा सिद्धान्तों के प्रतिनिधित्व का अधिकार प्रदान करते थे। उनका कहना था कि सरकार तथा पार्लियामेंट विवेक एवं निर्णय के स्थान हैं। यदि एक बार पालियामेंट के सदस्य ने अपने विवेक से यह तय कर लिया कि अमुक निर्णय समाज के हित में है तो वहीं उसका कर्त्तव्य पूरा हो जाता है। बर्क की ये उक्तियाँ अपवाद-रहित हैं और इनसे यह सिद्ध होता है कि वे आकर्षक सिद्धान्तों को किस प्रकार कार्यरूप में लाने का तरीका प्रयोग में लाते थे। इसके साथ-साथ हम यह भी देखते हैं कि बर्क बुनियादी संवैधानिक परिवर्तनों के कट्टर विरोधी थे। यह बात कुछ सन्देहास्पद लगती है। उनको मौलिकतावादियों से कोई सहानुभूति न थी। बर्क कहते थे कि ह्विग लोगों के पतन का मूल कारण यह है कि उनमें कुछ ऐसे कल्पना-जीवी तत्व पहुँच गये हैं जो देश

के पढ़े-लिखे तथा प्रबुद्ध वर्ग को यह कहकर बहकाते हैं कि उनके पास पूर्वजों की दी हुई कुछ ऐसी चीजें है जो मौजूदा व्यवस्था से मेल नहीं खाती। उन्होने अपने एक पत्र में लिखा था कि यदि देशवासी सभी बुरे सिद्धान्तो तथा बुरे आदमियो का विरोध करना चाहते हैं तो उसके लिए सरकार सर्वोत्तम एजेन्सी है किन्तु यदि लोग अच्छे और देश के प्रबुद्ध तत्वों का भी विरोध करना चाहते हैं तो उसके लिए कोई भी तरीका नहीं निकल सकता। इसी पत्र में उन्होने यह भी इच्छा जाहिर की थी कि चूँकि उनकी पार्टी में मौलिकतावादियों की सख्या बढ़ रही है इसलिये वे संसद की सदस्यता से अवकाश ग्रहण करना चाहते हैं। वे मताधिकार की योग्यता को घटाने के प्रयास के सर्वथा विरोधी रहे। वे जिलों (County) के प्रतिनिधित्व में तनिक भी कमी-बेशी नहीं करना चाहते थे। उन्हें सरकार का संसदीय ढाँचा सबसे अच्छा मालूम होता था। वे संसद की आलोचनाओं का विरोध करते थे। वे कहते थे कि हमारी व्यवस्था उतनी ही पूर्ण है जितनी कि मानव-जाति के कार्यों में पूर्णता आ सकती है। प्रोटेस्टेन्ट के भिन्न मतावलम्बियो को किसी प्रकार राजनीतिक राहत या मदद देने के वे खिलाफ थे। वे यह भी कहते थे कि यदि कच्चा माल दुरुस्त और ठीक है तो मशीन आप से आप अच्छा माल बनाकर तैयार करेगी। वे अपने मत से कभी भी विचलित नहीं हुए।

बर्क पुराने दृष्टिकोण के आदमी थे किन्तु उनकी भूलों से जो संकेत या नसीहतें मिलती हैं उसके फलस्वरूप उनकी पृष्ठभूमि के अध्ययन की आवश्यकता प्रतीत होती है। मोटे तौर से वे औचित्य के नाम पर दी जाने वाली प्राकृतिक अधिकारों (Natural Rights) की दुहाई के वे विरोधी थे। उनके विरोधी-मत वालों का कहना था कि चूँकि प्रकृति की ओर से मनुष्यमात्र एक समान होते हैं इसलिये हर आदमी को स्वशासन का अधिकार मिलना चाहिए। बर्क के कथनानुसार यदि उपरोक्त बात स्वीकार कर ली जाय तो इसका अर्थ है कि ब्रिटिश संविधान की नींव ही उखाड़ दी जाय। आगे चलकर इसका यह भी अर्थ लगाया जा सकता है कि हर संस्था जो व्यापक रूप से सर्वप्रिय न हो उसे बर्बाद कर दिया जाय। बर्क कहा करते थे कि मौलिकतावादी लोग अपने

स्वार्थ-साधन के लिए विवश होकर सार्वजनिक संस्थाओं के अन्याय के विरुद्ध प्रचार करते हैं तथा सरकार के प्रति जनता की आस्था पर चोट करते हैं जिस पर कि समाज की शान्ति एवं सुरक्षा निर्भर करती है। बर्क इस बात के खिलाफ थे कि हर संस्था की उपयोगिता या उपादेयता का निर्णय तर्क के मापदंड से किया जाय। वे कहते थे कि कोई भी बुद्धिमान अपने को विश्वजनीन तथ्यों तथा भावनाओं से नहीं अनुशासित करता। वे किसी सिद्धान्त को उसके औचित्य मात्र से नहीं देखते थे बल्कि यह भी देखते थे कि समूचे समाज को उससे कहाँ तक लाभ पहुँचता है। वे यह नहीं पसन्द करते थे कि किसी ऐसे सिद्धान्त के पक्ष में जिसका कि ऐतिहासिक अनुभव भी नहीं प्राप्त हो सका है हम समाज के बनें बनाये तथा आजमाये ढाँचे को उलट दें। यह समाज के लिये विनाशकारी सिद्ध हो सकता है। उनकी दृष्टि में सरकार अनेक प्रकार के हितों का सामान्य आधार है और तत्कालीन सरकार संशोधनों और परिमार्जनों के बाद तैयार हुआ आधार है। अतः सिद्धान्त अपने व्यवहार की तुलना में अपेक्षाकृत उतने महत्व-पूर्ण नहीं होते। वे कहते थे कि लड़ाई के मैदान में सेनापति तो एक प्रदर्शन मात्र के लिये होता है क्योंकि लड़ाई में जीत तो कभी-कभी छोटे-छोटे कारणों पर भी निर्भर करती है।

बर्क प्राकृतिक अधिकारों को आदर्श रूप प्रदान करने के लिये सामान्य अधिकारों की खिलाफत करते थे। वे अतीत को ही बुद्धिमानी या दूरदर्शिता का आधार मानते थे और कहते थे कि जब हम कोई परिवर्तन करते हैं तो उसे एक खतरा लेकर करते हैं। उनका कहना था कि प्राचीनता केवल धन के लिये ही नहीं वरन् सरकार के लिये भी बड़ा ठोस आधार है। चूँकि वे राज्य को एक चेतना-युक्त संस्था मानते थे इसलिये वे वर्तमान तथा एक व्यक्ति की लघुता के प्रति बहुत सतर्क सकते थे। वे कहते थे कि राज्य अतीत की दूरदर्शिता पर आधारित है, इसलिये इसे हम दूरदर्शी मानते हैं और ऐसी आशा करते हैं कि इसके कार्य भी औचित्यपूर्ण ही होंगे। चूँकि अतीत सभी या समूचे औचित्य को अपने में सँजोये हुए हैं इसलिए हमें सभी प्राचीनताओं की रक्षा करनी चाहिए। ये प्राचीनताएँ कभी भी विवेक या औचित्यहीन नहीं हो सकतीं तथा

इनका औचित्य अतीत के अनुभवों पर आधारित होता है। इस प्रकार प्राचीनता प्रभुता-सम्पन्न हो जाती है। प्राचीनता के ही आधार पर बर्क आयरलैंड के कैथोलिक मत के अस्तित्व का समर्थन करते थे। इसी प्रकार वे ब्रिटिश संविधान की कतिपय कुरूपताओं का भी समर्थन करते थे। 'हर चीज पर व्यापक बहस' की दलील का विरोध करने की लहर में वे नास्तिकता का भी जोरदार विरोध करते थे। वे इस बात को नहीं मानते थे कि हर चीज जिसका अस्तित्व है वह सही ही होती है। लेकिन जिसका अस्तित्व है उस पर शंका करना प्राचीन अनुभवों के आधार पर निर्मित भवन के प्रति शंका करना है जो समाज की आवश्यकता पर बनाया गया है। वे इस बात को मानते थे कि उनकी कही हुई बातें भी कभी-कभी गलत हो सकती हैं। किन्तु उनका कहना था कि कम से कम ये हमें सुरक्षा तो प्रदान करती हैं। वे कहते थे कि यद्यपि सत्य अधिक बेहतर चीज होती है किन्तु हम शान्ति के पक्ष में अधिक हैं क्योंकि उसके साथ दानशीलता की भावना भी सम्बद्ध रहती है।

बर्क ने खतरों से जो बचाव किया है, उनके उस विचार को राजनीतिक-निश्चलता का समर्थन भी कहा जा सकता है। यद्यपि उन्होने अतीत के अनुभवों के महत्व पर बहुत जोर दिया है किन्तु उनका यह मत उस समय संतुलित हो जाता है जब वे कहते हैं कि कभी-कभी शीघ्रता के निर्णय तत्कालीन परिस्थितियों से भी अनुशासित होते हैं। बर्क ने अपनी Speech on Economic Reforms में कहा है कि जब प्राचीन प्रतिष्ठापनाओं का विवेक या औचित्य समाप्त हो जाता है तो उनके भार या बोझ को बचाये रखना बिल्कुल निरर्थक है। उन्होंने अपने Reflections on the French Revolution में कहा है कि मेरे विचार से राजनीति का आदर्श वही है जिसमें संरक्षण की प्रवृत्ति तथा सुधार की क्षमता हो। 'सुधार की क्षमता' शब्दावली के अन्तर्गत भी बर्क के कुछ सिद्धान्त निहित हैं जिसे उन्होंने किसी भी हालत में कभी भी नहीं छोड़ा। उनका कहना था कि अभी तक जितने भी सुधार हुए हैं वे ऐतिहासिक महत्व के सिद्धान्तों के आधार पर हुए हैं। अपनी Appeal from the New to the Old Whigs में बर्क ने अपने दृष्टिकोण को बड़े ही विस्तृत ढंग

से समझाया है। उनका कहना था कि यदि हम धर्म या न्यायपूर्वक सुधार नहीं ला सकते तो सुधार का प्रयास ही न करेंगे। उनके अनुसार यहाँ पर न्याय का अर्थ वर्तमान तथा पिछली भूलों के प्रति वर्तमान के तकाज़े का बलिदान होता था।

बर्क कभी भी वास्तविक लोकतन्त्रवादी नहीं थे और यही उनके राजदर्शन का मूल है। वे दलीय व्यवस्था के शासन की महत्ता को समझते थे और लोकप्रिय प्रतिनिधित्व की आवश्यकता को भी स्वीकार करते थे। वे तत्कालीन ह्विग सिद्धान्तों से पूर्णरूपेण सन्तुष्ट होते बशर्ते कि इन सिद्धान्तों की तत्कालीन कुरूपतायें शुद्ध कर दी गई होतीं। वे यह अच्छी तरह जानते थे कि राजनीतिक धारणाओं के बनने में विवेक क्या पार्ट अदा करता है। वे प्राचीन पद्धति के इतने कायल थे कि हमेशा गुणों के अर्थपूर्ण समीकरण पर बल देते रहे हैं। वे कहते थे कि समृद्धि तथा प्रभाव वाले ऐसे लोग जो औचित्य को मापदण्ड मानकर हर काम करते हो उन्हें ही न्याय के साथ राजसत्ता के संचालन का काम देना चाहिए। उनका कहना था कि सरकार की योग्यता का केवल एक मापदंड है और वह है बुद्धिमानी तथा सद्गुण। किसी भी पेशे, स्थिति तथा स्थान से प्राप्त उपरोक्त गुण सरकार के लिये सर्वथा ग्राह्य होंगे। किन्तु फिर भी वे ऐसे तत्वों से अलग रहना चाहते हैं जो अपने मस्तिष्क में एक अनुचित रूपरेखा पाले रहते हैं। बर्क यह नहीं चाहते कि उनका अभिजात्य वर्ग बिना जनता की इच्छा के शासनारूढ़ रहे। वे सरकार में सार्वजनिक तत्वों तथा उसकी आलोचना से भी नहीं पीछे हटे हैं। उनका कहना है कि जब तक दोनों पक्षों में जनहित की भावना का उदय नहीं होता तब तक समझाने का कोई प्रश्न नहीं उठता। उनका कहना था कि इसी प्रकार ब्रिटिश संविधान की बुराइयों को दबाया जा सकता है। उनके विचार से वह सर्वोत्तम सरकार होती है जिसमें जनता अभिजात्य वर्ग के हाथ कार्य का दायित्व सौंप देती है। इसका अर्थ है कि शासन में धन या सम्पत्ति को अधिक महत्व दिया जाय। यद्यपि सरकार में सब के प्रवेश की गुंजाइश रहे किन्तु वह अधिकांश की पहुँच के बाहर ही रहे। उन्होंने एक जगह लिखा है कि विषमता सम्पत्ति की प्रधान विशेषता है। उनके अनुसार

सम्पत्ति सम्बन्धी पैतृक असमानता के कारण ही समाज में भी असमानता होती है। यद्यपि शासन को कायम रखना कठिन होगा किन्तु इसे सामान्य जनता की लालच से ऊपर ही रखना चाहिए। अपने Present Discontents में बर्क ने लिखा है कि ब्रिटेन का विधान ऐसी धरती पर आधारित है जो एक नाजुक कगार पर स्थित है तथा उसके चतुर्दिक जल ही जल है। वे कहते थे कि ऐसा न हो कि एक ओर खतरा देखकर हम दूसरी ओर खड़े हों और वहाँ भी वैसा ही खतरा नजर आने लगे। यदि हम शुद्धीकरण पर इतना अधिक बल देना चाहेंगे तो इसका अन्त बुरा भी हो सकता है। बर्क इस बात को बड़ा जोर देकर कहते थे कि सम्पत्ति या जायदाद पर आक्रमण न किया जाना चाहिए। वे कहते थे कि जब-जब योग्यता तथा सम्पत्ति के बीच द्वन्द्व हुआ है सम्पत्ति को नुकसान उठाना पड़ा है। इसलिये आवश्यक यही है कि जितना भी सम्भव हो सके सम्पत्ति की रक्षा ही की जाय।

प्रायः सभी विचारक समान रूप से पिछले अनुभवों से प्रभावित होते हैं तथा उस पर जोर देते हैं। जर्मनी का हीगेल, फ्रांस के त्रेने तथा रेनां तथा इंगलैंड के हेनरी मेन और लेकी सब के सब ने उपरोक्त बात पर जोर दिया है। हमें बेजहाट (Bagehot) के इस कथन को नहीं भूलना चाहिए कि आमतौर से लोग दस्तूर या रिवाज की रोटी आसानी से पसन्द कर लेते हैं। यह उन्हें पच जाती है। नये किस्म का भोजन उन्हें कष्टकारक हो जाता है। आखिर कानून या कायदे जनता के ही बनाये हुए तो होते हैं। इसलिए हम साधारण सुधार कर सकते हैं। आमूल-परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए। किसी भी देश या जाति के पिछले अनुभवों में ही राष्ट्रीय विकास निहित होता है तथा इसी अविरल स्रोत से दूरदर्शिता प्राप्त हो सकती है। हम प्रायः प्रयासहीन अचेतनता का ही आज्ञा-पालन करते हैं। यदि पैतृक संस्थाओं के प्रति हमारी यही वफादारी नहीं रहती तो समाज का ताना-बाना ध्वस्त हो जायगा। वास्तव में पहले के सोचे हुए ढंग से कार्य सम्पन्न होने पर ही सभ्यता का अस्तित्व निर्भर करता है। इसके विपरीत यदि हम औचित्य के नये सिद्धान्तों या उसकी नवीन भावनाओं का अनुसरण करेंगे तो इससे हमारी विरासत का विरोध होता है और युगों से चली आ रही

परम्परा समाप्त हो सकती है। फिर परम्परा का पुनस्सृजन असम्भव हो जायगा। अतः वर्तमान इच्छाओं की अपेक्षा भूत के अनुभव से मार्ग-दर्शन प्राप्त करना अधिक उपयुक्त होगा। हमें ऐसी चीजों का भी सम्मान करना चाहिए जिसे कि हम समझ नहीं पा रहे हैं।

यह देखना कुछ सरल है कि फ्रांस की राज्यक्रान्ति के अनुकूल हुआ मस्तिष्क भी उसकी विभीषिकाओं से क्यों ठिठक गया। कदाचित इसके उद्देश्य में कोई ऐसी भयंकरता थी जो बर्क को १८वीं शताब्दी की इस महान् घटना में दीख पड़ी तथा उन्होंने उससे नफरत किया। वे धार्मिक आस्थाओं में भी परिवर्तन नहीं ठीक समझे और फ्रास की राज्यक्रान्ति ने धर्म के स्वरूप को ही ढहाया है। वे प्रतिनिधित्व की प्रणाली के दोषपूर्ण पहलुओं के आमूल-परिवर्तन के लिए भी कभी राजी न थे किन्तु उन्हें फ्रांस के राजतंत्र का अन्त देखना पड़ा जिसे कि वे ब्रिटेन की पार्लियामेंट से भी अधिक सम्माननीय समझते थे। फ्रांस की राज्यक्रान्ति के दौरान रातोरात विशेषाधिकारो का उन्मूलन हो गया। समानता तथा न्याय के सिद्धान्तों के नाम पर शान्ति को तिलांजलि दे दी गई और बर्क ने इसकी बड़ी कड़ी आलोचना की है। कांडोरसेट ने प्रगति के सिद्धान्त का बड़े ज़ोरदार स्वर में समर्थन किया था और सम्भवतः उनका समर्थन इस सिद्धान्त का सबसे बड़ा औचित्य था। राज्यक्रान्ति के बाद आदमी ने अतीत के इतिहास को निरर्थक करार दे दिया और नये समाज के निर्माण की समस्या उसके सामने आ गई। इस महान् घटना के बाद राजनीति को ऐसी व्यवस्था माना जाने लगा जिससे गणित जैसी निश्चयात्मकता के साथ सत्यों की घोषणा की जा सकती थी। बर्क की दृष्टि में हित या अच्छाई के मूल में धार्मिक आस्थाएँ होती हैं किन्तु वे सामान्य अविश्वास के कारण खत्म हो गई थीं। ऐसी अवस्था बर्क के अनुसार सामाजिक व्यवस्था के प्रतिकूल थी। बर्क विशेषाधिकारों को राज्य का काव्य मानते थे। राज्यक्रान्ति के मूल में निहित भावना के अनुसार न्याय ही सामाजिक अधिकार का केन्द्रविन्दु था तथा विशेषाधिकारों को पूर्णरूपेण समाप्त कर देना ही इसकी सच्ची परिभाषा मानी गई थी। फलस्वरूप जिसके हाथ सत्ता की बागडोर आई उसने समझ लिया कि उसकी

विचारधारा ही विश्वजनीन रूप से व्यावहारिक हो सकती है। बर्क के चेले आपस में भी एक अजीब कशमकश का अनुभव करने लगे। यही नहीं। इंगलैंड के सामने एक ऐसा क्षण भी आ गया जब कि लोकप्रिय जनस्वातन्त्र्य के लिए योरूप में प्रसिद्ध इंगलैंड, महाद्वीप के मनचले राजाओं के देशों से थोड़ा ही कम व्यवस्था-रहित राज्य के रूप में देखा जाने लगा। प्राइस, प्रीस्ट तथा बर्क के लिए भी यह स्थिति कोई अस्वाभाविक नहीं थी। इस विरोधाभास को देखकर जब चार्ल्स फाक्स ने अपने बीस वर्ष पुराने अनुभवों को ताख पर रख दिया तो बर्क को भी समझ लेना चाहिए था कि राज्यक्रान्ति की भावनाओं को समाप्त करने के लिए चाहे जो भी कीमत अदा करनी पड़े पर अधिक न होगी।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि फ्रांस की घटनाओं को लेकर बर्क के जो पैम्फलेट प्रकाश में आये वे उनके पहले के सिद्धान्तों से पूर्णरूपेण मेल खाते थे। बर्क पर यह अभियोग लगाना कि उन्होंने अमरीका में तो क्रान्ति का समर्थन किया था किन्तु फ्रांस में उसका विरोध किया बिल्कुल निरर्थक है, क्योंकि अमेरिकी-क्रान्ति में कोई भी ऐसी बात नहीं थी कि उसके सहारे फ्रांसीसी क्रान्ति का भी समर्थन किया जाता। वर्तमान समय जब कि हम अतीत की फ्रांसीसी क्रान्ति को आँखों से देख नहीं सकते तो केवल बर्क की तत्सम्बन्धी आलोचनाएँ ही हमारे पास हैं जो एक ऐसी पीढ़ी से प्राप्त हुई है जिसकी आँखों के सामने से राज्य-क्रान्ति के सजीव दृश्य गुजरे हैं। क्रान्ति के बाद की कृत्रिम समानता जो कि राज्यक्रान्ति की संक्षिप्त परिणाम थी भावी तानाशाही की प्रस्तावना के रूप में आयी। उन्होंने यह महसूस किया कि स्वतंत्रता की उत्पत्ति सदैव उस मौलिकता के गर्भ से होती है जो बड़े-बड़े सिद्धान्तवादियों के सिद्धान्तों में नहीं होती। उन्होंने अपने कुछ वर्षों के संवैधानिक अनुभव को केवल एक वाक्य में भर दिया है कि 'मनुष्य की प्रकृति बड़ी ही दुर्बोध या गंभीर है।' उन्होंने अपने Reflections में लिखा है कि समाज का उद्देश्य बड़ा उलझनमय है। जन साधारण की प्रकृति या उसके कार्यों के लिये सत्ता की दिशा किसी भी रूप में सरल या सुगम नहीं है। यह सम्मति जो उन्होंने उपरोक्त एक-दो पंक्तियों

में व्यक्त की है उनकी समस्त कृतियों में किसी न किसी रूप में मिलती है। उपरोक्त सम्मति की यदि व्यापक रूप से परीक्षा की जाय तो वह बर्क की अन्य अभिव्यक्तियों के सामने नहीं ठहरती। उन्होंने फ्रांस के राजतंत्र तथा इंगलैंड के सविधानतंत्र को एक दूसरे से सम्बद्ध करने का प्रयास किया है। फ्रांस वालों ने भी इगलैंड के संविधान की खूबियों को समझने का प्रयास किया और उन्हें ग्रहण करने की कोशिश की किन्तु आज भी फ्रांस के राष्ट्रीय जीवन में वे खूबियाँ अनुपस्थित हैं।

अपने Reflection के प्रकाशन के एक वर्ष बाद ही बर्क को अपनी इस रचना की संकीर्णता कर आभास हो गया था। अपने Thoughts on French Affairs में उन्होंने कहा है कि फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति का मूलमंत्र यह है कि वह सैद्धान्तिक रूढ़ियों पर आधारित था। यह राज्यक्रान्ति विश्व के इातहास की बेजोड़ घटना थी। इसके मूल में भी आत्म-प्रचार के तत्व निहित थे। अपनी इस रचना में उन्होने जो विचार प्रकट किये दार्शनिक टाकविल ने र्भा उसका समर्थन किया है। बर्क ने विभिन्न राष्ट्रों की विशेषताओं को अलग-अल्ग उल्लेख करते हुए कहा है कि परिवर्तन सदैव खतरनाक होता है तथा प्राचीनता के ताने-बाने में नवीनता को घुसेड़ना बड़ा ही दुष्कर और कठिन है। उन्होंने यह भी कहा कि फ्रांसीसी लोग एक रूप-रेखा-विहीन या निराकार योजना क चक्कर में आकर अपनी राजनीति में मानवी-प्रकृति उपेक्षा की कर रहे हैं। उनका कहना यह भी था कि हमारे विचार संस्थाओं (Institutions) के रूप में तभी साकार हो सकते हैं जब कि वे सहस्रों विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों से होकर गुजरें। बर्क के कथनानुसार फ्रांस की तत्कालीन परिस्थितियों ने विध्वसक प्रवृत्तियों के लोगों को भी जन्म दिया है। फ्रांस ने ऐसे तत्वों की भी उपेक्षा की है जो तत्कालीन प्रयोगों के दौरान वांछनीय थे। फल स्वरूप ऐसे लोग सामने आ गये जो बनाने के बजाय बिगाड़ने के अधिक अभ्यस्त या उत्सुक थे। बर्क के अनुसार फ्रांस की इन सब गड़बड़ियों का फायदा नेपोलियन ने उठाया।

बर्क ने क्रान्ति की मूल-चेतना में अन्तर्निहित अतीत के अविश्वास की भी

निन्दा करके अच्छा ही किया। उन्होंने Reflections में यह भी कहा है। कि हमें जनसाधारण से यह कहते हुए डर लगता है कि वे अपनी बुद्धि तथा अपने विवेक से हर प्रश्न को स्वयं सोचें क्योंकि हमें आशंका है कि उनके पास बुद्धि व विवेक का स्टाक (कोष) भी कम ही है। हमें इसमें भी सन्देह है कि यदि व्यक्तिगत रूप से हर आदमी अपनी बुद्धि से सोचकर काम करे तो वह विभिन्न देशों तथा युगों से कुछ प्राप्त कर सकेगा। बर्क के विचारों में वे तत्व भी प्रभूत मात्रा में मिलते हैं जिनका कि सियेयी समर्थन करता था। मनुष्य अपने लिये भी अपनी कतिपय धारणाओं का जीव होता है। वह पैतृक परम्पराओं की ही पच्चीकारी का एक नमूना होता है। इसलिये कोई नया विचार उसकी संस्थाओं (Institutions) में प्रविष्ट होकर समुचित रूप से रह सकेगा ऐसा कम ही सम्भव है। बर्क के विचार से मनुष्य के विचार उसकी मूल प्रवृत्तियों (Instincts) के पास होते हैं तथा ये राज्य की दूरवर्ती अनुभूतियों में समाहित होते हैं। बर्क का कहना था कि फ्रांस के लोगों की बौद्धिक अटकलों या अनुमानों की भावात्मकता तथा फ्रांस के जनसाधारण की शान और उसकी इच्छा में कोई सम्बन्ध नहीं है। बर्क इस बात की हमेशा तारीफ किया करते थे कि ब्रिटिश क्रान्ति उन विचारों तथा सिद्धान्तों से गुँथी हुई है जिनसे कि हर अंग्रेज उसी तरह परिचित है जिस प्रकार कि वह अपने इर्द-गिर्द की प्रकृति से परिचित होता है। बर्क के मतानुसार फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति ने अपने देशवासियों में सत्ता की भूख पैदा की है। किन्तु इसने मानवी-प्रयासों की निरन्तरता या अविच्छिन्नता की उस भावना की उपेक्षा की है जिनके बगैर नव-निर्माण की कल्पना एक मात्र हवाई महल होगी। फ्रांस की क्रान्ति में जिन शक्तियों का उपयोग हुआ है उनमें अतीत के तत्वों का अभाव है जिसके कारण उद्देश्यों का सही निरूपण नहीं हो सका है।

इसके अनन्तर बर्क द्वारा फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति की आलोचना का दूसरा प्रश्न राजनीतिक दर्शन से सम्बन्धित नहीं है। इंगलैंड जिन भावनाओं के फलस्वरूप लड़ाई में कूदा उनके लिए बर्क ही सबसे अधिक जिम्मेदार हैं। बर्क ने नये विचारों से ओत-प्रोत राजनीतिक विचारक के रूप में नहीं वरन् एक जेहाद (धर्म-युद्ध) शुरू करने के जोश के साथ अपने विचारों को व्यक्त करना आरम्भ किया था।

फिर भी बर्क के Letters on a Regicide Peace के अवलोकन से उनके विचारों की अन्तरात्मा का कुछ दर्शन हो जाता है। इन पत्रों के देखने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने राज्यक्रान्ति की आलोचना में दी गई अपनी दलीलों में कहीं-कहीं जो अतिशयोक्ति कर दी है वह इसलिये नहीं कि उन्हें ऐसा करना बहुत पसन्द था। इसलिये उनके लेखों में शान्ति के सम्बन्ध में जो विचार यत्र-तत्र व्यक्त किये गये हैं उन्हें उनके क्लिष्ट शैलीयुक्त साहित्य के रेगिस्तान में बुद्धि के नखलिस्तान की संज्ञा देना अनुपयुक्त न होगा। बर्क कहा करते थे कि 'जब भी किसी देश में युद्ध प्रवेश कर जाता है तो वहाँ से वह हटता नहीं।' वे यह भी कहते थे कि 'लड़ाई कोई ऐसी चीज नहीं है जो बिना काफी सोचे-समझे ठान ली जाय।' यह नसीहत तो बर्क की पीढ़ी को ही हृदयंगम करना चाहिए था। इसके अतिरिक्त उनकी पीढ़ी ने बर्क के इस उपदेश को भी नहीं ग्रहण किया कि 'रक्तपात को रोकने के अतिरिक्त अन्य किसी की स्थिति में रक्तपात नहीं किया जाना चाहिए। यदि परिवार की रक्षा, मित्रों की रक्षा, धर्म की रक्षा, देश की रक्षा तथा मानव जाति की रक्षा के लिए रक्तपात होता है तो भी यह उचित है। इसके अतिरिक्त रक्तपात अभिमान है, अपराध है।' बर्क की शताब्दी के लिए यह बड़े खेद की बात है कि इन शब्दों द्वारा उन्हीं प्रयासों का समर्थन किया गया है जिनकी कि उस समय निन्दा की गई थी।

(५)

बर्क के सिद्धान्तों की आलोचना दो दृष्टिकोणों से की जा सकती है। उनके मस्तिष्क में ब्रिटिश संविधान की जो कल्पना थी वह इंगलैंड सम्बन्धी तत्कालीन तथ्यों से बहुत दूर की थी। वे जितनी प्रकार की क्रान्तियों के विरोधी थे वे अगली पीढ़ी के रक्षार्थ नितान्त आवश्यक थीं। उन्होंने जिन विनाशकारी दुष्परिणामों की भविष्यवाणी की थी वे भी नहीं घटित हुए। यद्यपि बर्क के सम्बन्ध में की गई आलोचनाएँ हर प्रकार से उचित होंगी किन्तु फिर भी उनसे बर्क के महत्व को आँच न आयेगी। मुख्य आवश्यकता इस बात की है कि उनकी भूलों का विश्लेषण तथा उनकी लिपिबद्ध कल्पनाओं का अध्ययन किया गया।

इंगलैंड की औद्योगिक क्रान्ति के समीप पहुँचकर बर्क के विचारों में प्रौढ़ता आ पाई है। अपने स्वयं के आर्थिक सिद्धान्तों पर उन्हें सन्देह होने लगा था। फिर भी बर्क ने अपने सिद्धान्तों की महत्ता पर कुछ अधिक नहीं कहा। उस समय हुए इंगलैंड के भूमि सुधारों में भी कोई खास बात नहीं रही। बर्क इस बात को स्वीकार करते थे कि जनसाधारण को भी राजनीतिक बहसों के सुनने और जानने की स्वतन्त्रता एवं सुविधा होनी चाहिए किन्तु वे इसके विरोधी थे कि जनता शासन के बारे में जो कुछ जानती या समझती है उसके कार्यान्वयन में उसका भी हाथ होना चाहिए। बर्क यह नहीं समझ पाये कि आध्यात्मिकता के सिद्धान्त जिन पर कि वे अविश्वास करते थे वे भी उनके 'औचित्य' के ही कोई न कोई रूप थे। आदमी के राजनीतिक अधिकार जब तक असफल नहीं हो जाते तब तक वह सामान्य अधिकारों की झलक की ओर नहीं आकृष्ट होता। बर्क राज्य के आधारों की परीक्षा के खतरों पर बड़ा जोर देते थे। इससे यह कहा जा सकता है कि वे इन खतरों से पूर्ण अवगत थे तथा इन्हें कदाचित अपनी आँखों से देख भी चुके थे। किन्तु फिर भी यदि कोई आदमी समय द्वारा राज्य के आधारों के प्रति प्रकट किये गये असन्तोष को मानने से इनकार करता है तो यह तत्कालीन राजनीति का दोष है। इसका अर्थ यह भी है कि ऐसे राज्य का नागरिक जान-बूझकर समस्याओं के सामने अपनी आँख मूँद लेता है। बर्क के मुकाबले किसी और ने इतना साफ-साफ नहीं कहा कि अभिजात्य-तंत्र की बात सोचना दकियानूसीपन है किन्तु वे यह नहीं स्वीकार करते थे कि अभिजात्य-तंत्र के बदले लोकतंत्र ही बेहतर शासन-प्रणाली होती है। वे यह भी नहीं स्वीकार करते थे कि लोकतन्त्र का अभाव ही सभी तत्कालीन परेशानियो तथा आन्तरिक उथल-पुथल का कारण है।

मोटे तौर से बर्क यह मानने को नहीं तैयार थे कि विशेषाधिकारो का युग उनके समय में अन्तिम साँसें गिन रहा था। फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति का मुख्य प्रभाव यह था कि वैसी ही हवा इंगलैंड तथा अन्य आसपास के देशो में भी बहने लगी थी। यह बात जरूर थी कि फ्रांस में इस हवा का रुख साफ जाहिर था। हर देश का जनसाधारण चाहता था कि वह अपने यहाँ की सदियों की

बुराइयों या रूढ़ियों को समाप्त कर दे। बर्क की निगाह में अनुत्तरदायित्वपूर्ण सत्ता, युद्ध, असहिष्णुता, बिना अपराध की गिरफ्तारियाँ तथा दे सकने की क्षमता से परे टैक्स का बोझ आदि अतीत की बुद्धिमानी या दूरदर्शिताएँ हैं तथा तत्कालीन पीढ़ी को इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। अब यह समझना भी कठिन नहीं है कि वारसेलीज् में शपथ ग्रहण करने वालों ने इन निन्दनीय पहलुओं को दूरदर्शिता के रूप में स्वीकार किया। बर्क ने अच्छाइयों की दिशा में जाने के बजाय इन बुराइयों से चिपके रहने वालों को भीरु कहकर चेतावनी दी है। यह बात कुछ कम अशों में इंगलैण्ड के लिए भी सत्य थी। बर्क जनता से ड्यूक बेडफोर्ड द्वारा बनाये गये उस ब्रिटिश संविधान को स्वीकार करवाना चाहते थे जिसमें मैनचेस्टर तथा ओल्ड सरुम तक के प्रतिनिधित्व को कोई स्थान नहीं दिया गया था। उपरोक्त प्रकार के विचार बर्क के अनुसार उच्च विचारों की ग्रन्थियाँ थीं जिन्हें जनसाधारण यदि उनमें सुधार न हो सके तो नष्ट भी करने को तैयार था।

क्रान्ति की भावना जिसके अन्तर्गत प्राचीन संस्थाओं की तीखी आलोचना की गई थी मुख्य रूप से अतीत के ही गर्भ से पैदा भी हुई थी। तत्कालीन नवीनताएँ अतीत के दमन तथा जोर-जुल्म के परिणाम-स्वरूप ही थीं। बर्क चित्र के इस पहलू को देखने से इनकार करते थे। बर्क के अनुसार उस समय के अपराध अतीत की कुछ अनजाने हो गई भूलों के परिणामस्वरूप थीं। बर्क जैसा आदमी जो कि इतिहास से प्राप्त अनुभवों के प्रति पूरी आस्था रखता था अपने इस दृष्टिकोण से सम्बद्ध अन्य तथ्यों को इतिहास मानने से इनकार करता था। वे अपने विरोधियों को आलोचना या अनादर करने की स्वतन्त्रता देने को तैयार थे। वे ऐसी परम्पराओं को भी मान्यता देने को तैयार न थे जिनके फलस्वरूप उनके स्वयं के सिद्धान्त भी स्वार्थी जनों के हाथ पड़ जाते थे। यों तो चैथम को विशेषाधिकार देने से भला कौन इनकार करेगा किन्तु ड्यूक आफ ग्रैफ्टन को विशेषाधिकार प्रदान करना एक दूसरी बात थी। बर्क ग्रैफ्टन जैसे अनगिनत लोगों की वकालत करते थे और आशा करते थे कि कभी संयोगवश उन लोगों में से कोई चैथम जैसा भी पैदा हो सकता है। बर्क धार्मिक कल्याण

के नाम पर चर्च के विशेषाधिकारों के समर्थक थे किन्तु यह समझ सकना कठिन है कि वाटसन तथा आर्कबिशप कार्नवालिस जैसे लोगों का भला धर्म से क्या वास्ता था। यदि बर्क की ही तरह सभी बुद्धिमान होते तब तो उनके प्राचीनता के सिद्धान्त का कुछ अर्थ भी हो सकता था किन्तु कम बुद्धि वालों के हाथ पड़कर उनके सिद्धान्त कतिपय ऐसे निहित स्वार्थों की ढाल का काम करते थे जो उन सिद्धान्तों की नैतिकता की जाँच की बिल्कुल इजाजत नहीं देते।

बर्क के सम्पूर्ण विचारों में सैद्धान्तिक आशंका उनका अभिन्न अंग बनी रहती है। अभी तक इन सैद्धान्तिक आशंकाओं पर जो कुछ भी विचार हो सका है अपर्याप्त है। अभी इस पर और विचार की आवश्यकता है। कुछ अंशों में यह बेन्थम के इस विचार की अस्वीकृति कहा जा सकता है कि मनुष्य एक बुद्धियुक्त या समझदार जानवर है। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य की आदतें उसकी क्रियाओं को मूल-स्रोत होतो हैं। इसे अविश्वसनीय इसलिए कहा जाता है कि मनुष्य का स्वभाव इसकी धाराओं में बहने का अभ्यस्त नहीं है। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य के विचारों से उद्भूत नवीनता सभ्यता की नींव को हिला देने वाली होती है। इसे अशांतिमूलक कहने के साथ-साथ इसके विरोध में यह भी दलील दी जाती है कि नवीनता का विचार मनुष्य को अनजानी दिशा की ओर आमंत्रित करता है। इस सम्बन्ध में दिये जाने वाले जवाब में एक यह भी है कि यदि मनुष्य अपनी आदतों का दास है तो जहाँ आदतें उसका साथ नहीं देतीं वहाँ बुद्धि उसे नहीं बचा सकती। यदि नवीनता का विचार समाज के सुरक्षित कोष में पड़ा रहे तो उसकी शक्ति सामान्य तथा व्यापक मान्यता के अधीन होती है और वह उस समय आगे आ जायगा जब कि मनुष्य अपने को प्राचीनता से असन्तुष्ट अनुभव करने लगेगा।

किन्तु हमें एक मुख्य कठिनाई की ओर ध्यान देना पड़ेगा। कोई भी परम्परा अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकती यदि उसके मूल में जल्दबाजी के परिवर्तनों की समर्थक प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त ऐसी भी परम्परा अधिक दिनों तक नहीं चल सकती जिसके मूल में निहित सामान्य इच्छा को सन्तुष्ट करने की भावनायें न हों। ऐसी परम्परा तभी प्रभावपूर्ण तथा लाभ-

प्रद हो सकती है जब कि उसमें स्वयं के प्रति जागरूकता की भी भावना हो। अतः इस सम्बन्ध में बर्क जिस सिद्धान्त या भावना के प्रवर्तक हैं उससे समाज को कोई लाभ नहीं पहुँचता। फिर भी वर्तमान युगीन सभ्यता में परम्परा की पूरी शक्ति अधिकार की जागरूकता पर निर्भर करती है जिसे कि बर्क अपने अभिजात्य-वर्ग तक ही सीमित किये हुए थे। प्राचीनता के प्रेरक तत्वों के सामाजिक महत्व को जानने के बजाय हमारे लिए जरूरी है कि हम प्राचीन प्रेरणाओं की ओर उन्मुख हों। हमें मूक स्वीकृतियों की अपेक्षा आलोचना की आवश्यकता अधिक है। कोई जरूरी नही कि बर्क ने जिन-जिन सिद्धान्तों की वकालत की हो वे सब के सब हमारी विचार-प्रणाली के अङ्ग बन जायँ। फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति के अल्पकालीन अस्तित्व ने बाद की पीढ़ी के मस्तिष्क में सोचने की आदत पैदा कर दिया। इस राज्यक्रान्ति के बाद से लोग प्रगति की बात समझना अपनी पैतृक-विरासत सी समझने लगे हैं। कभी-कभी यह भी होता है कि दर्शन या सिद्धान्त रहित क्रियाये या अभ्यास सभ्यता के ललित-पक्ष को विकृत कर देते हैं। हो सकता है ये दर्शन रहित अभ्यास ऐसे लोगों के अनुकूल पड़ते हों जिन्हें कि उनका फायदा मिल चुका है किन्तु जनसाधारण इसके फलस्वरूप बिल्कुल निर्जीव सा हो जाता है।

बर्क से अगर पूछा जाता तो वे साफ-साफ कह देते कि वे लोकतंत्रवादी बिल्कुल नहीं हैं। वे जनता पर तनिक भी यकीन नहीं करते थे। उसकी क्षमता पर भी पूरा-पूरा सन्देह करते थे और उसे निम्न कोटि की समझते थे। बर्क के अनुसार जनता या जनसाधारण एक ऐसा तत्व है जो सदैव अशान्ति की ओर उन्मुख रहता है। केवल प्राचीन परम्परा ही एक ऐसी शक्ति है जो जनता को अशान्ति तथा उथल-पुथल की ओर जाने से रोक सकती है। बर्क ने स्वयं अपने उक्त कथन का उत्तर भी दे दिया है। उन्होंने अपनी Speech on the East India Bill में कहा कि जीवन की परम्पराओं तथा मनुष्य की शिक्षा-दीक्षा में कदाचित कोई भी ऐसी चीज नहीं होती जो उसे शासकीय कार्यों के अयोग्य बना देती हो। बर्क का कहना था कि अच्छी सरकार कायम करने की केवल एक ही तरकीब है और वह यह कि जनसाधारण में शासकीय-कार्यों के

प्रति दिलचस्पी पैदा की जाय। हम यह जानते हैं कि जिस राज्य में विभिन्न अनुभव क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व नहीं होता उसमें शान्ति की आशा करना व्यर्थ ही होता है। अठारहवीं शताब्दी की घटनाओं का अध्ययन उक्त तथ्य को प्रमाणित कर देता है। कुछ लोग यह मानने से इनकार कर सकते हैं कि राजनीतिज्ञ लोग ऐसे वर्गों के लिए भी कुछ त्याग कर सकते हैं जिनके आन्तरिक जीवन से वे बिल्कुल ही अनभिज्ञ हैं। फिर भी देश के कानून तथा वहाँ के प्रमुख वर्ग के निजी स्वार्थों के बीच एक निश्चित सम्बन्ध तो होता ही है और वह प्रमुख वर्ग राज्य के कुछ वर्गों को सत्ता या शासन में भाग लेने से वंचित भी रख सकते हैं। इसके अतिरिक्त बर्क को कभी-कभी अपनी कही हुई बात भी भूल जाती थी कि जब कभी भी जनता और उसके शासकों के बीच कोई विवाद खड़ा होता है तो संसद की धारणा सदैव जनता के ही पक्ष में होती है। १८वीं तथा १९वीं शताब्दी में आम जनता को कितना आर्थिक संघर्ष करना पड़ा इसका कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता। जैसा कि बर्क स्वयं भी कहते हैं उनको भी यह नहीं मालूम है या थोड़ा ही मालूम है कि उनके समय में हुए भूमि सुधारों के सिलसिले में जनता को कितनी तकलीफें सहन करनी पड़ीं। देश को हिंसात्मक क्रान्ति से बचाने का तरीका यह नहीं कि हम जनता को सत्ता से दूर रखें वरन् उसे शासन में भाग लेने देना चाहिए। अरस्तू के अनुसार राजनीतिज्ञों की सलाह से भी अधिक बुद्धिमानी को ही अधिकार का सही अर्थ कहना चाहिए। आवश्यक नहीं कि सामान्य-ज्ञान को अनुभूत दूरदर्शिता के साथ इसलिए रखा जाय कि यदि सामान्य-ज्ञान की उपेक्षा की गई तो दूरदर्शिता बिल्कुल निरर्थक ही सिद्ध होगी।

बर्क के अभिजात्य वर्ग के विरोध में प्रस्तुत की जाने वाली दलील का एक नैतिक आधार है किन्तु उन्होंने उस पक्ष को स्पर्श नहीं किया। बर्क ने यह जानने का तनिक भी प्रयास नहीं किया कि केवल मुट्ठी भर लोग किस अधिकार से समूचे देश के शासक बन बैठते हैं। इसके उत्तर में दूरदर्शिता के सिद्धान्त को प्रस्तुत करना निरर्थक है। बेन्थम भी कहते हैं इसे (दूरदर्शिता को) जनता की सहमति का आधार कहना हरगिज ठीक नहीं है। यह एक स्वीकृत बात है कि आदमी का व्यक्तित्व सदैव आदर के योग्य है तथा उसे उसकी अभिव्यक्ति का

अवसर मिलना चाहिए। कहीं-कहीं नैतिकता की आड़ में भी राज्य नागरिकों के व्यक्तित्व को विकास का अवसर नहीं देता। इस प्रश्न पर बर्क ने जो रुख अपनाया उससे उसका दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण साबित होता है। उन्हें ब्रिटेन के House of Commons में यह सिद्ध कर देना चाहिए था कि वे सदन में अद्वितीय थे। यदि जनता अभिजात्य-वर्ग पर नैतिक दृष्टि से दिवालिया होने का आरोप लगाती हैं तो इसका सही उत्तर अभिजात्य-वर्ग का शुद्धीकरण कदापि नहीं है और जब कि जनता की ओर से यह आरोप आ रहा हो। बर्क ने कहीं भी यह संकेत नहीं दिया कि उनके शासक वर्ग का स्तर किस प्रकार स्थिर रखा जाय। उन्होंने इस बात का भी संकेत नहीं दिया कि जनता को किस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाय। जनता की आर्थिक स्थिति का शासन पर क्या असर पड़ सकता है बर्क ने इस बात का भी कहीं जिक्र नहीं किया। यदि बर्क अपनी भावनाओं के नशे में न बहते तो सम्भव था कि वे थोड़ा रुक कर इस सम्बन्ध में सोचते भी। इंगलैंड में बर्क के समय तक ऐसे ही लोग कानून बनाने वाले थे जो बड़े ही संकीर्ण विचारों के रहे और अपने को संकीर्ण प्रश्नों में उलझाए रहते थे। बर्क अपने शासक-वर्ग में भी उपरोक्त लोगों के विचारों की ही अपेक्षा करते थे। बर्क उपरोक्त प्रकार के लोगों के ही वकील या प्रतिनिधि थे।

यह भी स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि बर्क का दूरदर्शिता का सिद्धांत उनके दैवी-सिद्धान्त से ही उत्पन्न हुआ है। यह कहा जा सकता है कि उनके दर्शन में दैवी-सिद्धान्त की स्पष्ट स्वीकृति भी होनी चाहिए। बर्क की राजनीतिक अभिव्यक्तियों में उन भावनाओं या तत्त्वों की भी नितान्त आवश्यकता थी जो जस्टिस होम्स के अनुसार इंगलैंड के अनेक राजनीतिक सिद्धान्तों की जड़ थी। बर्क प्राकृतिक अधिकारों (Natural Rights) के सिद्धान्त को भी बड़ी निन्दा की निगाह से देखते थे। इस सिद्धान्त में अन्य दोषों के अतिरिक्त यह मुख्य दोष था कि इस सिद्धान्त के अनुसार पूरी दुनिया पर लागू होने वाले फार्मूले की बड़ी आवश्यकता कही जाती थी। जहाँ तक अधिकारों का प्रश्न है प्राइस और प्रीस्टले जैसे विद्वानों की तत्सम्बन्धी माँगें बर्क के ही सिद्धान्त से उद्भूत हुई थीं किन्तु इन लोगों ने भूल यह की कि वे अपने विचारों को समय से पूर्व दर्शन का रूप देने

को आतुर हो गये। पेन और मैकिन्टोश जैसे विद्वान सदैव दैवी-सिद्धान्त के कवच से सावधान रहे हैं। सम्भव है कि दूरदर्शिता के सिद्धान्त से, राजनीतिज्ञ को क्या करना चाहिए इसका कुछ संकेत किया जाय किन्तु इस सिद्धान्त से राजनीतिक क्रियाओं के मूल-स्रोत का कुछ भी पता नहीं चलता। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क की अचेतनताएँ भी कभी-कभी अत्यावश्यक की श्रेणी में आ जाती हैं। अतः किसी भी राजनीतिक कार्य से सम्बन्धित सिद्धान्त के निरूपण के हेतु तथ्यों के संकलन से पूर्व हमें ऐसी क्रियाओं की तह में प्रविष्ट होना चाहिए।

यदि इस ढङ्ग से सोचा जाय तो प्राकृतिक अधिकारों (Natural Rights) का पक्ष काफी मजबूत हो जाता है। प्रायः मनुष्य को जिस चीज की आवश्यकता होती है वह उसी की इच्छा भी करता है। प्राकृतिक अधिकार कुछ स्वार्थों के कवचमात्र हैं किन्तु वैधानिक इतिहास के आधार पर यह कवच रक्षा करने के हेतु पर्याप्त नहीं है। इतिहास मानवी-इच्छाओं की विजय नहीं वरन् उनकी पराजय का रेकार्ड मात्र होता है। किन्तु कुछ धारणाओं तथा तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि दमन में निश्चित रूप से अराजकता के तत्व छिपे होते हैं। इस सम्बन्ध में मनुष्यों में वर्ग-भेद नहीं होता। मनुष्य की इच्छाओं की पूर्ति के रूप भिन्न-भिन्न हो सकते हैं किन्तु वे विज्ञान के नये अनुसंधानों पर ही निर्भर करती हैं। चूँकि यह संसार स्थिर नहीं है इसलिए प्राकृतिक अधिकार (Natural Rights) भी परिवर्तनशील ही होते हैं। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि इसमें दूरदर्शिता के तत्व होते ही नहीं जैसा कि बर्क प्रायः कहते थे। ये तत्व प्रायः नागरिकों के उस वर्ग से आते हैं जिसे शासन से बिल्कुल दूर रक्खा जाता है। ये तत्व विभिन्न धर्मों वाले तथा भूमि और पूँजी विहीन श्रमिक वर्ग से अधिक प्राप्त होते हैं। इनके बारे में यह कहना कठिन है कि ये तत्व अपने मूल स्रोतों से भी गये-गुजरे होते हैं। ये तत्व राज्य की सारहीनता की ओर संकेत करते हैं। बर्क इन तत्वों की नींव या तह में जाने में टालमटोल करते थे जिससे सिद्ध है कि उनमें उन समस्त समस्याओं के प्रति नैतिक अन्तर्दृष्टि का अभाव था जो कि उनके सामने आती थीं।

बर्क में नैतिक अन्तर्दृष्टि का अभाव क्यों था? इस प्रश्न के उत्तर में केवल

यही स्पष्टीकरण मिलता है कि वे अध्यात्मवादी दृष्टिकोण के दार्शनिक थे। वे एक धार्मिक विचारों वाले आदमी थे तथा इस बात में तनिक भी संदेह नहीं करते थे कि यह सम्पूर्ण विश्व ईश्वर के इशारों पर अनुशासित होता है। बर्क के इस दृष्टिकोण को अस्वीकार करने का अर्थ है ईश्वर के विवेक में शंका प्रकट करना। बर्क ने एक जगह लिखा है कि हमारी इच्छा के अनुसार नहीं वरन् ईश्वर ने अपनी इच्छा के अनुसार हमें संसार में भेजा है। ईश्वर ने हमें जिस स्थान पर भेजा है उस स्थान के अनुरूप ही उसने हमारे काम भी निर्धारित कर दिये हैं। चूँकि राज्य का अस्तित्व मानव मात्र के त्याग पर निर्भर करता है इसलिये राज्य को भगवान की इच्छा का ही प्रतीक माना जाना चाहिए। हमें भगवान ने जिस स्थान पर जो काम करने के लिए भेजा है हमें उसे करते रहना चाहिए तथा उसके परिणाम के प्रति निश्चिन्त और विश्वास-युक्त होना चाहिए। इन्हीं धारणाओं को सामने रखकर बर्क तत्कालीन व्यवस्था के औचित्य की वकालत करते थे। बर्क सम्पत्ति या जायदाद के सवाल को भी अपने अध्यात्म के सिद्धान्त के अन्तर्गत घसीट कर उसे धार्मिक आस्था के आवरण से परिवेष्ठित रखते थे। शांति और व्यवस्था के संबंध में भी बर्क का यही रुख था। उनके लिए चर्च की महत्ता का उन्मूलन सबसे क्लेशप्रद रहा और कदाचित् इसीलिए उन्होंने क्रान्ति की भावना को वास्तविकता से भी सम्बद्ध किया। लाक की तरह बर्क को भी इस बात का विश्वास हो गया था कि एक अनीश्वरवादी के अन्दर सामाजिक भावना सर्वथा असम्भव है। अपने Letters on a Regicide Peace में उन्होंने इस सम्बन्ध में काफी लिखा भी है। ऐसे किसी भी दार्शनिक के संबंध में कुछ कहना बड़ा ही कठिन है जो कि दैवी-ज्ञान का दम भरता हो। बर्क का भी कहना था कि ऐसे मत की छानबीन कर सकना भी बड़ा कठिन है कि समूची दुनिया एकमात्र भगवान् की माया है। यह धारणा ऐसी नहीं है कि इसे तर्क के सहारे खत्म किया जा सके। इस धारणा पर तर्क की दाल नहीं गलती।

बर्क के सिद्धान्तों में प्लेटो का आदर्शवाद था और इसी कारण वे तत्कालीन कठिनाइयों को संतोष और सजनता, विनम्रता तथा उदारता से सम्बद्ध करते थे। उनके बाद के विचारकों ने भी इसी धारणा को ग्रहण किया। बर्क ब्रिटिश राज्य

की भावना से विशेष रूप से प्रभावित थे। वे यह नहीं स्वीकार करते थे कि उद्देश्य के समान ही उद्देश्य-पूर्ति की सीमा भी महत्वपूर्ण है। हर वस्तु अपने उद्देश्य के कारण ही सुन्दर या असुन्दर होती है। इसलिए समय और स्थान के वशीभूत होकर हमें उद्देश्य की सुन्दरता से इनकार नहीं करना चाहिए। समूचे आदर्शवादी दर्शन का यह मुख्य दोष है कि इसके अन्तर्गत ही तथ्य की बड़े आशावादी दृष्टिकोण से छानबीन होती है। आदर्शवाद के अंतर्गत यह नहीं ध्यान में रखा जाता कि संक्रमण-काल में सिद्धान्त से व्यवहार की ओर जाने में महत्वपूर्ण परिवर्तन भी हो सकते हैं। हम तथ्यों के चक्कर में नहीं आते। फिर भी हमें तथ्यों की सत्यता को तो ध्यान में रखना ही होगा। बर्क के अनुसार मौजूदा व्यवस्था को एक लाभदायक ढंग से सुन्दर रूप प्रदान किया गया है। हम उसके एक-एक तत्व को अलग-अलग करके समय और स्थान की तराजू पर नहीं रख सकते। समाज एक अविभाज्य इकाई है। समाज के दोष किसी भी स्थिति में सामाजिक बन्धनों तथा समाज की एकता को हानि नहीं पहुँचाते।

फिर भी इतना तो निश्चित ही है कि सामाजिक जीवन की इतनी व्यस्तता और सरगर्मी में हमें किसी विषय के निर्णय पर पहुँचने के लिए अधिक समय नहीं मिल सकता। हम हैनोवरियन काल के राजतन्त्र के भ्रष्टाचारों को विक्टोरियां काल के सुधारों की भूमिका भी कह सकते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उस काल के भ्रष्टाचारों की गम्भीरता में कोई कमी आ जाती है। हम यह भी देख सकते हैं कि बर्क जैसे जनहित की भावना वाले दार्शनिक के अन्दर ब्रह्मवादी दृष्टिकोण किस प्रकार निवास करता है। किन्तु म्योर तथा हार्डी सरीखे ऐसे भी लोग हुए हैं जो फ्रांसीसी क्रान्ति के बाद राजद्रोह के मुकदमे को तत्कालीन विषमताओं के दृष्टिकोण से देखते हैं तथा उन विषमताओं को उनके उद्देश्य से अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं। बर्क के Reflections को देखते हुए यदि म्योर और हार्डी अपने स्वार्थों की विषमता के बजाय वर्ग-भेद को अधिक वजनदार समझें तो उन्हें क्षमा किया जा सकता है। यह भी समझना सम्भव है कि कुछ लोग इस बात पर क्यों जोर देते हैं कि जो विशेषाधिकार समष्टि की रचना के लिये आवश्यक हैं वे समष्टि के प्रतिकूल भी पड़ते हैं। ये विशेषाधिकार उद्देश्य

तथा व्यवहार दोनों रूपों में समष्टि के प्रतिकूल पड़ते हैं और इसीलिए क्रान्ति का सूत्रपात होता है। ऐसे लोगों के लिए तारतम्य का टूटना एक महत्वपूर्ण बात होती है। ये लोग अपने व्यक्तिगत जीवन में भी उन सभी सुखों की इच्छा रखते हैं जो कि राज्य को उपलब्ध रहते हैं। जनता जानती थी कि बिना स्वशासन के और ऐसे स्वशासन के जिसमें कि वे भी भाग ले सकें उनकी सुखों की कामना अधूरी ही रह जायगी। वास्तव में राज्य तो पवित्रतम उद्देश्यों की एक संस्था होती है। किन्तु उसके उद्देश्यों की पूर्ति करने का काम तो आदमियों के ही जिम्मे होता है। वे भौतिकतावादी दृष्टिकोण अपना लेते हैं। ऐसे लोग येन-केन प्रकारेण जन साधारण को प्रतिष्ठापित संस्थाओं के प्रति वफादार बना लेते हैं और यही उनकी जिम्मेदारी भी होती है। उनकी इन सफलताओं का उचित मूल्यांकन भी नहीं होता। यही कारण है कि ये लोग सत्य और आदर्श के प्रति कोई उचित दृष्टिकोण नहीं रख पाते। ऐसे ही लोगों के अनुभव से प्राप्त इस नसीहत को मानना पड़ेगा कि कुछ स्वतन्त्र विचार वाले लोगों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों से सत्ता को सदैव नियंत्रित रखना चाहिए।

(६)

रूसो के सामाजिक अनुबन्ध (Social Contract) तथा गाडविन के Political Justice से जितना बर्क नफरत करते थे उतना कोई नहीं। फिर भी बर्क का प्रभाव अक्षुण्ण रहा; उनके प्रति बर्क का दृष्टिकोण तथा कुछ ऐसे ही अन्य तत्व थे जिनसे बर्क के विचारों या सिद्धान्तों की रचना हुई थी। इस अर्थ में तो बर्क अपने बाद के अनुदार-वादियों की क्रान्ति के अधिक समीप लगते हैं। जर्मनी के हीगेल और सेविनी, फ्रांस के डि मैत्रे और बोनाल्ड तथा इंगलैंड के कालरिज और वर्ड्सवर्थ बर्क के असली शिष्य थे। इसका अर्थ यह नहीं कि ये लोग अपनी रचनाओं के प्रति बड़े जागरूक थे किन्तु बर्क ने जिस आन्दोलन का सूत्रपात किया उससे बाद में उनके (बर्क के) आदर्शों की काफी रक्षा हुई है। इतिहास के मार्ग का अन्त नहीं होता। बर्क और बेन्थम के विचारों में जो भिन्नता है हो सकता है बाद के युग में उनके संश्लेषण का कोई

समय आ जाय। समूचे इतिहास में बर्क और बेन्थम के बीच का सा विरोधाभास और कहीं नहीं मिलता।

बर्क की तारीफ कर देना आसान है तथा उनकी कतिपय महानताओं की उपेक्षा कर देना और भी आसान है। फिर भी बर्क ने कुछ ऐसे सिद्धान्तों का निरूपण किया है जिसे भावी राजनीतिज्ञ कभी भी न भूल सकेंगे। बर्क एक ऐसी व्यवस्था के प्रणेता हैं कि उन्हें बेन्थम और हाब्स की कोटि से थोड़ा ही कम कहा जा सकता है। बर्क के दोष स्वयं में बड़ी ही गम्भीर नसीहतों के समान हैं। इन भूलों या दोषों में उनका धन के एकत्रीकरण या केन्द्रीकरण का सिद्धान्त मुख्य है। इस दोष के फलस्वरूप मनुष्य इच्छा रखते हुए भी राज्य की अच्छाइयों की सराहना नहीं कर पाता। वे जन इच्छा की उपेक्षा करते थे। इसका अर्थ यह कि यदि हम उनकी बात मानें तो राजनीतिक क्षेत्र से बाहर रहने वालों की सम्मति का हम भी ख्याल न करें। उनके द्वारा फ्रांसीसी राज्य-क्रान्ति के विरोध से उनके बाद की पीढ़ी को सभी प्रकार के नवीन दृष्टिकोणों से सावधान रहने की नसीहत स्वतः मिलती है।

इन तमाम निष्कर्षों के बावजूद इंगलैंड के राजदर्शन के इतिहास में बर्क से बढ़कर कोई व्यक्तित्व नहीं आया। बर्क में हाब्स, ह्यूम और ग्रीन सबों के राजदर्शन के मूल तत्व आ गये हैं। बर्क ने अपनी पीढ़ी के राजदर्शन को एक नयी दिशा प्रदान की है। बर्क के दर्शन को अपने उद्देश्य तथा अपनी गूढ़ता का पूर्ण आभास था जैसा किसी अन्य दार्शनिक के सिद्धान्तों को न था। उनकी अन्तर्दृष्टि राजनीतिक गहराइयों की उस तह तक प्रविष्ट कर गई है जहाँ कि अन्य दार्शनिक नहीं पहुँच पाये। उनकी भविष्यवाणियाँ अध्ययनशील विचारक के निष्कर्षों के समान नहीं वरन् एक निर्भीक व्याख्यानदाता की गर्जन के समान रही हैं। वे अपने दल को कभी नहीं भूले। उन्होंने जो कुछ लिखा है हाउस आफ कामन्स के ऐसे वातावरण में लिखा है जिसमें रहकर मनुष्य अपने विरोधी विचार वाले की भावनाओं व उसकी इच्छाओं के प्रति ईमानदार नहीं रह पाता। फिर भी बर्क की तमाम आलोचनायें हो जाने के बाद भी उनकी प्रतिभा की चमक अद्वितीय ही रहती है। बर्क सदैव अपने समय की पार्टी-प्रथा

के प्रशंसक रहे तथा उनकी समस्त रचनाओं पर उस प्रथा का स्पष्ट प्रभाव है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि आपसी विचार-विमर्श से चलने वाली सरकार कभी-कभी बड़े ही ऊँचे और महान सिद्धान्तों का निरूपण कर देती है। बर्क ने यह भी सिद्ध किया कि पार्टी के प्रति वफादारी से अन्तरात्मा के प्रति वफादारी पर काई आँच नही आता। जब बर्क हाउस आफ कामन्स के सदस्य हुए प्रतिनिधि सरकार का भविष्य बड़ा धुधला था और बहुत कुछ इन्हीं के बार-बार जोर देने के फलस्वरूप ही प्रतिनिधि सरकार के सिद्धान्त की विजय भी हुई। उनके समय मे विभिन्न संस्थाओं (Institutions) में बड़ी तेजी से परिवर्तन भी हुए। बर्क ने स्वय भी भविष्यवाणी की थी कि ऐसे लोग जो तत्कालीन धारा का विरोध कर रहे थे वे मनुष्य की योजनाओं का क्या एक बार भगवान की इच्छा का भी विरोध करने का दुस्साहस करेंगे। जिन सिद्धान्तों पर आजकल हम अग्रसर हो रहे है वे निश्चित रूप से बर्क द्वारा बताये गये सिद्धान्तो से भिन्न हैं। फिर भी बर्क ने इन सिद्धान्तो को जो चुनौती दी थी उससे भी हमें अधिक गम्भीर और प्रभावशाली चेतावनी मिलती है।



अध्याय ७

आर्थिक उदारवाद के आधार

औद्योगिक क्रान्ति से ब्रिटिश राजदर्शन की परम्पराओं में तो कुछ परिवर्तन आया ही इसके साथ-साथ ब्रिटेन की व्यावसायिक उत्पादन-प्रणाली का भी कायापलट हुआ। हरग्रीव्स और क्राम्पटन के अनुसन्धानों के अतिरिक्त ड्यूक तथा ऐडम स्मिथ के विचारों से भी ब्रिटेन के जनसाधारण का मस्तिष्क बदला है। अन्य महान क्रान्तियों की तरह औद्योगिक क्रान्ति का भी सूत्रपात किसी तिथि विशेष या घटना विशेष से नहीं हुआ। कोई ऐसा अचानक आविष्कार भी नहीं हुआ जिसने यह नसीहत दी हो कि औद्योगिक उन्नति के लिए सरकारी नियन्त्रण सर्वथा बाधा-मूलक होता है। ऐड मस्मिथ ने अपने विचारों में तत्कालीन व्यवसायवाद का विरोध किया है। जिस समय उनकी इस प्रकार की रचना तैयार हुई उस समय उक्त विरोध आन्तरिक नहीं वरन् बाहरी अधिक था। ऐडम स्मिथ बहुत ज्यादा नहीं सफल हुए। उन्होंने एक ऐसे सत्य का उद्‌घाटन किया जो अभी तक एक रहस्य बना हुआ था। उनकी अभिव्यक्तियों में कुछ ऐसे सिद्धांत तथा समस्या के कुछ ऐसे पहलू सामने आये जो उस समय जनता के सामने प्रत्यक्ष सत्य थे। धार्मिक सहिष्णुता का आन्दोलन आर्थिक स्वतन्त्रता के आन्दोलन का समकालीन या समानान्तर नहीं था वरन् आर्थिक स्वतन्त्रता का आन्दोलन धार्मिक सहिष्णुता के आन्दोलन की ही देन था। यह भी महत्वपूर्ण बात है कि ऐड मस्मिथ के पहले के अर्थशास्त्री भी धार्मिक सहिष्णुता का बड़ा जोरदार समर्थन करते हैं। उस समय इंगलैंड के बड़े-बड़े भू-स्वामी चर्च के समर्थक थे। व्यापारी वर्ग भी धार्मिक भावना के थे। धार्मिक बहिष्कार से व्यापार-सन्तुलन पर प्रभाव पड़ता था। इस प्रकार धर्म का मूल बिल्कुल सुरक्षित हो गया तो अर्थशास्त्री दार्शनिकों ने धर्म-निरपेक्षता की चर्चा चलाई।

ब्रिटिश राजदर्शन में यह महत्वपूर्ण तथ्य माना जाता है कि स्टुअर्ट के बाद से प्रचलित ईसाई मत के विरोधियों के मन में राज्य की सरकार के प्रति एक नफ़रत की भावना पैदा होने लगी थी। सरकार की अदालतें धार्मिक सामंजस्य की आड़ में औद्योगिक जीवन में अपनी टाँग अड़ाने लगी थीं। इन अदालतों द्वारा किये गये भारी जुर्माने तथा बाहरी मजदूरों के लाने पर प्रतिबन्ध से औद्योगिक प्रगति में बाधा पड़ने लगी। ईसाई मत के विरोधी लोग सिर्फ एक चीज चाहते थे। डेवनेन्ट ने विरोधी-वर्ग की इच्छाओं की व्याख्या करते हुए कहा था कि यदि व्यापारियों तथा उद्योगपतियों को जेल में डाल दिया जायगा तो हजारों मजदूर बेरोजगार हो जायँगे। सर विलियम टेम्पुल ने अपनी एक कृति में हालैंड का वर्णन करते हुए कहा कि आर्थिक समृद्धि सदैव धार्मिक सहिष्णुता के फलस्वरूप ही सम्भव होती है। अपनी रचना में उन्होंने उस औद्योगिक एकाधिकार का भी विरोध किया जो अदालतें प्रायः अपने प्रिय पात्रों को प्रदान करती थीं। धार्मिक मामलों की तरह आर्थिक मामलों में भी स्वतंत्रता होनी चाहिए जिसका अर्थ यह होगा कि विषमता या विभिन्नता को जीवित रहने की छूट होनी चाहिये। यही नहीं। आर्थिक स्वतन्त्रता का अर्थ स्वतन्त्र प्रतिद्वन्द्विता भी हो जाता है। स्वतन्त्र औद्योगिक प्रतिस्पर्धा या प्रतिद्वन्द्विता को बाद में धार्मिकता के रङ्ग से भी रङ्गा जा सकता है। ईसाई धर्म की कट्टर शाखा का यह कहना है कि प्रत्येक कर्त्तव्य ईश्वर की आज्ञा या इच्छा होती है तथा उसका पालन हमारी शक्ति की परीक्षा है। हम जितनी ही शक्ति से कर्त्तव्य का पालन करेंगे उतने ही समृद्ध होने के भी अधिकारी होंगे। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि मनुष्य की औद्योगिक कीमत को बढ़ने का अवसर ईश्वर की एक इच्छा है। व्यापार में सफल होना धीरे-धीरे इस बात का परिचायक हो गया कि सफल होने वाला व्यक्ति कितना धर्मात्मा या पुण्यात्मा है। इसी प्रकार गरीब को भगवान द्वारा उपेक्षित या अभिशप्त समझा जाने लगा। स्टील (Steele) के Religious Tradesman में उपरोक्त बात और स्पष्ट रूप से कही गई है। अठारहवीं शताब्दी में ब्रिटेन के भू-स्वामियों तथा व्यापारी वर्ग में जो आपसी संघर्ष की भावना थी उसके मूल में भी धार्मिक-विरोध ही था। धार्मिक विरोध के आन्दो-

लन की भी कुछ खास विशेषताएँ थीं जो मोक्ष के महत्व तथा उसके मापदण्ड को पूर्ण सुरक्षित रखती थीं।

उस समय के राजदर्शन को बहुत कुछ हम तत्कालीन विचारधारा के अनुरूप पाते हैं। बेकन के समय से चले आ रहे अनुमानों का मुख्य उद्देश्य सैद्धान्तिक कथाओं को उखाड़ फेंकना था। परिणाम स्वरूप राज्य समाप्त होकर जनसमूह के हाथों की चीज हो गई तथा हर प्रकार के अनुसंधान व्यक्तिगत स्वार्थ से आरम्भ होने लगे। हाब्स का राज्य मनुष्य की स्वार्थपरता की नींव पर खड़ा हुआ। लाक ने मनुष्य को अपने स्वार्थ-साधन के ही हेतु राजनीति में प्रवेश कराया। मान्डेविले के सिद्धान्त तथा ह्यूम का उपयोगितावाद उपरोक्त परम्परा के मार्ग से फूटी गली के ही समान रहे। मध्य युग के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य अपनी इच्छाओं के आधार पर राज्य का ढाँचा तैयार करने लगा। स्वतंत्रता का मूल्य नागरिकों को ज्ञात हो गया। इस समय तक लोगों ने राज्य को मानवी इच्छाओं की तुष्टि तथा उसकी सुरक्षा के साधन के रूप में स्वीकार कर लिया था। सत्रहवीं शताब्दी में इस सिद्धान्त के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण इस प्रकार था—'यदि कोई नागरिक अपने स्वार्थों के आगे राज्य की उपेक्षा करता है तो इसका अर्थ है कि उसमें ईश्वर के प्रति कोई निष्ठा नहीं है तथा वह शान्ति और सुख की खोज व्यर्थ ही कर रहा है। कुछ भी हो। ऐसे आदमी को समाज या राज्य तथा चर्च के अन्तर्गत ही रहना होगा। उपरोक्त दृष्टिकोण ईसाई मत के कट्टर पंथियों का सा ही है। ऐसे लोग उस संस्था के प्रति तनिक भी त्याग की भावना नहीं रखते जो कि एक मात्र उन्हीं के हितों के लिए खड़ी की गयी है। धीरे-धीरे समाज के अन्दर धर्म के प्रति आस्था की भावना आर्थिक सन्तुलन की भावना के समानान्तर होती गई। राज्य नागरिकों का स्वामी होने के बजाय उसका नौकर या दास बन गया। राज्य समाज को तथा उसके नागरिकों को व्यापारिक स्वतंत्रता देकर उसकी सेवा करने लगा।

उपरोक्त सिद्धान्त अठारहवीं शताब्दी की उस विचारधारा के सारांश रूप में था जिससे की समूची शताब्दी प्रभावित थी। किन्तु अभी भी परराष्ट्र नीति तथा व्यापार में राज्य के नियंत्रण की भावना किसी न किसी रूप में रही। जब ऐडम स्मिथ ने लिखना आरम्भ किया उस समय भी व्यापार का युग अपने चढ़ाव पर

था। पिट के पूर्व कुछ ही लोग इस रहस्य को समझ सके थे। चैथम तथा बर्क के बीच मतभेद का एक यह भी कारण था कि चैथम को यह शंका हो गई थी कि बर्क स्वतन्त्र व्यापार का समर्थन करने लगे हैं। लाक के समय से ही व्यापार सम्बन्धी दृष्टिकोण इसी बात का पोषक था कि व्यापार-सन्तुलन कायम रखा जाय। कुछ अंशों में यह सच है कि यह सिद्धान्त पेटी और डावनैन्ट की विचारधाराओं से ही निकला था। जिस तरह आदमी वर्ष के अन्त में हिसाब-किताब करके अपना मुनाफा देखता है उसी प्रकार राज्य का भी अपना हिसाब-किताब होना चाहिए। लाक का कहना था कि कोई राज्य अमीर या गरीब अपने यहाँ के किसान के ऊपर निर्भर करता है। एक अर्थ में यह सही भी है। व्यापारी लोग इस कथन का यह अर्थ निकालते थे कि देश के बाहर प्रतिद्वन्द्विता राष्ट्र की कमजोरी की परिचायक होती है। ये लोग कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं प्रतिपादित कर सके जिसमें कि दोनों पक्षों का फायदा हो। कोई भी देश दोनों वर्गों के त्याग और उनकी मेहनत पर फलता-फूलता और समृद्ध होता है जैसे आयरलैंड में ऊन के व्यापार वहाँ की बेरोजगारी की समस्या भी हल हुई थी। डावनैन्ट एक ऐसे विचारक हुए थे जो व्यापार को स्वतन्त्र करने के पक्ष में थे। वे कहते थे कि उपनिवेशों के बाजार में व्यापारियों को संरक्षण भी प्रदान किया जाना चाहिए, क्योंकि यदि उपनिवेशों का व्यापार इंगलैंड के माध्यम से नहीं होगा तो ये इंगलैंड के प्रतिद्वन्द्वी भी हो सकते हैं। इस प्रकार ब्रिटेन के व्यापारियों के हितों की रक्षा में आयरलैंड तथा अमेरिका के हितों की हत्या की गई थी। परिणाम यह हुआ कि दोनों ओर से मुक्ति के प्रयास होने लगे तथा दमन का भी क्रम आरंभ हो गया।

ऐसा आभास हो सकता है कि ऐडम स्मिथ ने दुनिया को कोई नयी चीज दे दी। फिर भी समूचे विश्व को उन्होंने बाजार की एक यूनिट के रूप में देखा इतना तो स्पष्ट ही है। सन् १६६१ में सर डडले नार्थ का Discourses upon Trade प्रकाशित हुआ। अपनी इस पुस्तक में उन्होंने साफ लिखा है कि ब्रिटेन और फ्रांस के बीच व्यापारिक प्रतिबन्ध उसी प्रकार अर्थहीन हैं जैसे कि यार्कशायर और मिडिलसेक्स के बीच कोई प्रतिबन्ध लगाया जाय। एक अर्थ में सर

नार्थ ऐडम स्मिथ से काफी आगे बढ़ चुके थे क्योंकि उन्होंने ज्यादा ब्याज लेने के कानून की कड़ी भर्त्सना की थी जब कि बेन्थम उसके खिलाफ मुँह तक नहीं खोले। दस वर्ष बाद सन् १७०१ में Considerations on the East India Trade नामक पुस्तक में किसी अज्ञात लेखक ने यह साफ-साफ लिखा है कि किसी राष्ट्र में जितने भी उद्योग हैं उन्हें कायम रखना कोई बहुत बड़ी समस्या नहीं है बल्कि समस्या तो यह है कि राष्ट्र की पूँजी का अच्छा से अच्छा उपयोग कैसे किया जाय। ह्यूम ने भी व्यापारिक सिद्धान्त को यह कह कर टाल दिया कि इस सिद्धान्त से तो पानी अपने उचित धरातल से भी ऊपर उमड़ कर चारों ओर बिखर सकता है। विचारक टुकर को भी लोग स्वतन्त्र व्यापार का समर्थक मानते हैं। टुकर का कहना था कि अमेरिकी युद्ध उतना ही बेवकूफी से भरा हुआ है जितना कि लड़ने वाले बेवकूफ हैं। ये दोनों ईसाई धर्म के हैं और भूमि के लिए लड़-मर रहे हैं। टुकर कहते थे और उन्होंने भविष्यवाणी भी की थी कि इंगलैंड और आयरलैंड की एकता से आपस में एक प्रकार की व्यापारिक सद्भावना का सूत्र-पात होगा। वे भी स्वतन्त्र व्यापार पर दिये गये जोर को भूलना नहीं चाहते थे। इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि ऐडम स्मिथ को उक्त विचार अपने परि-चितों से प्राप्त हुआ। किन्तु स्मिथ अपनी इस विचारधारा के एकमात्र प्रणेता हो गये तथा इससे पूर्व के सिद्धान्तों की उन्होंने आलोचना भी की।

हमें उस समय के वातावरण को भी नहीं भूलना चाहिए। कुछ भी हो वह समय अनुदारवादियों का जमाना था। लोग बिना उपयुक्त तर्क के ही यह मान लेते थे कि प्रसन्नता जन्म, धर्म या वैभव के आश्रित नहीं होती तथा मौजूदा संस्थाओं (Institutions) की रक्षा करने के हेतु ही प्राकृतिक नियमों की रचना होती है। पोप कवि ने अपनी कविताओं में राजाओं तथा कानूनों की व्य-वस्था से शासित जीवन का गीत गाया है। पोप के गीत उस काल के हैं जब कि समाज की आर्थिक गतिविधियों के सम्बन्ध में कुछ भी कानून-कायदे नहीं बने थे। यों तो चर्च की ओर से समाज का ढाँचा यथावत् बना ही रहना चाहिए। वेजली मनुष्य के व्यक्तिगत कार्यों को ही मोक्ष का साधन मानते थे। कुछ क्षेत्रों में यह भी कहा जाता था कि उस समय के धार्मिक शिक्षक समाज को निद्राभिभूत करने

वाले होते थे। जिसके पास समृद्धि का भंडार हो समझना चाहिए कि उसे ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त है। जहाँ पर धन-वैभव नहीं है उस जगह को सुख की दृष्टि से महत्वहीन माना जाता था। बर्क ने आरम्भ में मनुष्यों में गुलामी की प्रथा का भी विरोध किया था। बर्क के पूर्व की शताब्दी में वेलर्स और विन्स्टैनली जैसे लोगो ने जो प्रश्न उठाया था वह इधर दब गया था। यद्यपि व्यक्तिवाद के विरोध में भी एक धारा चल निकली थी किन्तु यह विरोध बिल्कुल ही असंगठित सा था। औद्योगिक क्रान्ति का चक्र चल जाने पर तो इस विरोध की ओर कोई ध्यान भी नहीं देता था। इस समय लोग नये अनुसन्धानों व अन्वेषणो की सम्भावना से सन्तुष्ट और प्रसन्न होते थे और जब तत्कालीन गरीबी तथा मुसीबतो के खिलाफ विरोध खड़ा होता तो लोग कहते कि प्रकृति के नियमो के अनुसार ही ऐसा हुआ है और अन्त में मानवी शक्ति ही विजयी होगी। उन दिनो जब किसी कोने से असन्तोष की चीत्कार आती थी तो विल्बरफोर्स जैसे लोग कहते थे कि यह आर्तनाद ईश्वर की इच्छा के खिलाफ बगावत है।

(२)

अर्थशास्त्री दार्शनिक ऐडम स्मिथ के अलावा भी कई ऐसे विचारक हुए हैं जो गम्भीरतापूर्वक दर्शनशास्त्र का अध्ययन करके भविष्यवाणियाँ करते थे और वे भविष्यवाणियाँ सशक्त तथा सत्य सिद्ध होती थीं। ऐडम स्मिथ अपने अध्यापकों तथा अपने मित्रों के बीच एक सौभाग्यशाली व्यक्ति माने जाते थे। ग्लासगो में फ्रांसिस हचसन उनके गुरु थे। यद्यपि वे आक्सफोर्ड में तनिक भी नहीं पढ़े किन्तु उन्हें ६ वर्ष का ऐसा अवकाश मिल गया था जिसमें उन्होंने काफी अध्ययन किया। ग्लासगो में प्रोफेसर नियुक्त होने के बाद वे ह्यूम जैसे लोगों के संसर्ग में ही नहीं आये वरन् उनकी कुछ ऐसे व्यापारियों से भी मुलाकात हुई जिन्होंने इनके उदारवादी दृष्टिकोण को और सबल बनाया। ग्लासगो में सन् १७५९ में उन्होंने अपनी रचना Theory of Moral Sentiments प्रकाशित की। यह रचना इतनी सुन्दर शैली में लिखी गई थी कि कहीं-कहीं आया अर्थ का हलकापन भी वजनदार ही रहता था। इस पुस्तक से

वे पढ़ी-लिखी जनता के बीच बहुत प्रसिद्ध हो गये। यह पुस्तक साहित्यिक गुणों से सम्पन्न तो थी ही बड़ी अर्थपूर्ण भी थी। कुछ ही दिनों बाद चार्ल्स टाउनसेन्ड ने उन्हें ड्यूक आफ बकलश का ट्यूटर नियुक्त किया। इस नौकरी से उन्होंने अपने जीवन के लिये काफी धन कमा लिया और इसी दौरान वे फ्रांस की यात्रा भी कर आये। अपनी फ्रांस की यात्रा के दौरान ऐडम स्मिथ ने योरुप के अनेक विद्वान तथा प्रतिभाशाली लोगों से मुलाकात की। यद्यपि ग्लासगो में ही उन्होंने Wealth of Nations के लिखने का इरादा कर लिया था किन्तु फ्रांस में पहुँच कर काफी फुरसत से उन्होंने अपनी यह कृति तैयार की। फ्रांस में उन्होंने तुरगो, क्वेजने, दुयांदेनेमर तथा और जिन-जिन लोगों से भेंट की सबों ने उनके उन विचारों की पुष्टि की जो वे बहुत दिनों से अपने व्याख्यानों में व्यक्त करते आ रहे थे। जब वे स्काटलैंड लौटे तो भी दस वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद ही Wealth of Nations तैयार कर सके। सन् १७७६ में इस रचना के बाद उन्होंने चुंगो-विभाग में एक छोटी-सी नौकरी कर ली। यद्यपि नौकरी छोटी थी किन्तु इसमें उन्हें काफी पैसा मिल जाता था। वे अन्त तक समाज की सभ्य संस्थाओं के वृहत सर्वेक्षण के कार्य के प्रति पूर्ण आशावान रहे। अपनी इस योजना का थोड़ा सा संकेत उन्होंने अपने Moral Sentiments में कर दिया था। किन्तु वे जरा धीमा काम करने वाले थे तथा उनका स्वास्थ्य कभी भी अच्छा और भड़कीला नहीं रहा। यही क्या कम था कि उन्होंने कुछ किताबें लिख दी और कुछ लोगों से मित्रता कर ली। ड्यूक और बर्क, मिल, जेम्स वाट, फोलिस, ब्लैक तथा हटन आदि से अच्छी पहचान बना लिये थे। तुरगो से वे घनिष्ट रूप से परिचित थे और लेक जेनेवा में वाल्टेयर से मुलाकात कर चुके थे। ड्यूक ने उनकी पुस्तक के बारे में कहा था कि वह गम्भीर तथा ठोस रचना है। अनेक सरकारी प्रश्नों को लेकर पिट ने उनसे विचार-विमर्श किया था। उनके युग में बहुत थोड़े से ही ऐसे लोग रहे होंगे जो तत्कालीन वातावरण में इतने सुख और शान्ति के साथ जीवन बिताए हों।

यहाँ हम ऐडम स्मिथ द्वारा राज्य के प्रति अपनाये गये दृष्टिकोण से विशेष रूप से सम्बन्धित हैं न कि उनकी कृति Wealth of Nations के विवरण

से। लेकिन यहाँ आलोचना की सीमा पर हमें अवश्य ध्यान देना होगा। जिस आदमी का वर्णन स्मिथ ने किया है वह धन का खोजने वाला था। उसकी परिभाषा से स्पष्ट है कि उस मनुष्य के हर इरादे या हर काम धन की प्राप्ति के उद्देश्य से प्रभावित हैं। यदि उसके उद्देश्य को मस्तिष्क में रखा जाय तो रस्किन की तत्सम्बन्धी आलोचना या निन्दा निरर्थक लगती है। स्मिथ का मनुष्य जो कार्य करता है यह मानकर करता है कि प्रकृति की ओर से भी एक प्रकार की आर्थिक व्यवस्था है जिसके मार्ग में यदि बाधायें न आयें तो वह मनुष्य के सुख की ओर अग्रसर होती है। स्मिथ ने लिखा है कि ऐसी व्यवस्था जो सभी देशों में समान रूप से आवश्यकतावश व्याप्त है मनुष्य द्वारा काफी समुन्नत भी की गई है। स्मिथ ने यह भी बताया है कि यदि प्रकृति की व्यवस्था में व्यवधान न आता तो उसके सम्भावित परिणाम क्या होते। उनके कथनानुसार इस प्रकार की सभी व्यवस्थाएँ या तो इच्छावश या किसी बाधा के कारण आज लुप्त हो गई हैं। उनके न रहने पर प्राकृतिक स्वतंत्रता की व्यवस्था स्वतः पैदा हो गई है। हर आदमी जब तक कि वह न्याय के नियमों का उलङ्घन नहीं करता अपनी-अपनी इच्छानुसार अपने हितों की रक्षा के हेतु स्वतन्त्र है। इस प्रकार राजा या सर्वशक्तिमान को अपने कर्त्तव्य से भी मुक्ति मिल जाती है क्योंकि उसका कर्त्तव्य निजी उद्योगों की देख-रेख तथा उनमें लोगों को रोजगार दिलाना ही मुख्य था। उसका कर्त्तव्य समाज के सबसे महत्वपूर्ण हितों से सम्बन्धित था।

उपरोक्त व्याख्या के अन्तर्गत राज्य के मुख्यतः तीन कर्त्तव्य होते हैं। पहला कर्त्तव्य देश की सुरक्षा तथा दूसरा कर्त्तव्य न्याय व्यवस्था का संचालन। इसके अतिरिक्त कुछ जननिर्माण के कार्यों को आरम्भ करना तथा उन्हें चलाना भी राज्य का कर्त्तव्य है। कुछ संस्थाओं को चलाना भी राज्य का ही कर्त्तव्य है। ऐसे कार्यों या संस्थाओं की मुख्य विशेषता यह होनी चाहिए कि ये किसी व्यक्ति विशेष या समाज के अल्पसंख्यक वर्ग अकेले के हित की न हों। राज्य को ऐसा वातावरण तैयार करना चाहिए जिसमें कि उत्पादन संभव रहे। ऐडम स्मिथ ने यह भी स्पष्ट कहा है कि न्याय-व्यवस्था का मुख्य कार्य यह है कि लोगों की सम्पत्ति सुरक्षित रहे। अमीरों के धन-वैभव तथा उनकी समृद्धि से

गरीबों का वर्ग क्रुद्ध होता है क्योंकि उनकी अनेक इच्छाएँ व आवश्यकता अपूर्ण ही रहती हैं। गरीब अपनी इन्हीं परिस्थितियों के फलस्वरूप अमीरों की समृद्धि पर आक्रमण भी करते हैं। इसलिये केवल सिविल मजिस्ट्रेट के ही संरक्षण में परिश्रम से कमाई हुई आदमी की सम्पत्ति सुरक्षित रह सकती है। कभी-कभी यह सम्पत्ति केवल एक व्यक्ति द्वारा ही नहीं वरन कई पीढ़ियों द्वारा कमाई हुई होती है। स्मिथ ने सदैव अपना यही दृष्टिकोण प्रमुखरूप से सामने रखा है कि बहुत से मनुष्यों के त्याग के बाद ही पूँजी उत्पादनशील हो सकती है। इसलिये पूँजी की रक्षा करने का अर्थ है धन के स्रोत की रक्षा करना। इसके अतिरिक्त यदि राज्य के जिम्मे शिक्षा तथा बीमारियों की रोकथाम का काम भी दे दिया जाय तो इससे भी जनसाधारण का ही लाभ होगा। क्या निजी व्यवसाय के अन्तर्गत भी शिक्षा तथा बीमारियों की रोकथाम को व्यापक जनहित के दृष्टिकोण से ही स्वीकार किया जायगा। हर प्रकार के संयुक्त प्रयास की बात से ऐडम स्मिथ के मन में एक प्रकार की नफरत की-सी भावना पैदा हो गयी थी। कुछ व्यापारिक नियमों की जैसे ट्रेनिंग देने पर रोक आदि की स्मिथ ने निन्दा करते हुए कहा है कि इस प्रकार कर्मचारी के अधिकारों पर आघात किया जाता है। स्मिथ ने आक्सफोर्ड के अनुभव के आधार पर शिक्षा-संस्थाओं पर भी सन्देह प्रकट किया है और कहा है कि इन संस्थाओं के स्तर से तो मनुष्य की प्राकृतिक शक्तियाँ कुंठित हो सकती हैं।

इस सम्बन्ध में स्मिथ का दृष्टिकोण काफी स्पष्ट है। उनके कथनानुसार समाज का उत्थान सरकार के प्रयासों के फलस्वरूप नहीं वरन् आर्थिक मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों की क्रियाओं के फलस्वरूप ही है। हममें अपनी हालत बेहतर करने की जो इच्छा है हम उसे ताख पर नहीं रख सकते और यदि इस इच्छा पर लगे प्रतिबन्ध ढीले या कम कर दिये जाएँ तो इसका परिश्रम निश्चित रूप से समाज की समृद्धि या उसका सुख होगा। यदि हम राजाओं के ऐश व आराम के अलावा भी अन्य बातों का अध्ययन करें तो मनुष्य की शक्ति के बारे में कुछ अन्दाज़ लगा सकते हैं। यदि ये शक्तियाँ निर्बाध छोड़ दी जाएँ तो कहाँ तक सफल होंगी इसका भी कुछ संकेत मिल सकता है। मानवी संस्थाएँ

(Institutions) मनुष्य की इस शक्ति की उपेक्षा करती हैं क्योंकि इन संस्थाओं के संस्थापक मनुष्य की मूल शक्तियों के प्रति उतने आकृष्ट या उससे प्रभावित नहीं होते जितना कि उन पर मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का प्रभाव होता है। स्मिथ के कथनानुसार चालाक जानवर अर्थात् राजनीतिज्ञ प्रकृति की व्यवस्था के मुकाबले अपनी क्रियाओं के साथ अधिक मुलायमियत से आचरण करता है। सभी देशों में, जहाँ कि कुछ सुरक्षा कही जा सकती है, मनुष्य अपने आनन्द तथा भावी फायदे के लिए जो भी आदमी उसे मिलता है उसका उपयोग करता है। इस प्रकार व्यक्ति की अविच्छिन्नता आर्थिक लाभ की जड़ कही जा सकती है तथा इसी तत्व की रक्षा करने में ही राज्य का औचित्य निहित होता है। मनुष्य स्वभाव से ही व्यापारी प्रकृति का होता है तथा वह अपनी उन्नति के तरीकों की खोजबीन में निरन्तर व्यस्त रहता है।

ऐडम स्मिथ धन की विषमता से अधिक परेशान नहीं थे। स्काटलैण्ड की अनेक विचारधाराओं और खासकर हचसन और ह्यूम के सिद्धान्तों की ही तरह स्मिथ भी सोचते थे कि मनुष्य मात्र का सन्तोष प्रायः एक ही प्रकार का होता है क्योंकि हर आदमी कुछ देर में या कुछ पहले ही अपनी स्थिति से समझौता कर लेता है चाहे वह स्थिति कैसी हो क्यों न हो। फिर भी स्मिथ यह स्वीकार करते हैं कि एक सीमा होती है जिसके बाद गरीबी तथा कंजूसी दोनों की स्थिति समान हो जाती है। यद्यपि वे यह भी कहते थे कि प्रसन्नता मस्तिष्क की एक दशा विशेष का ही नाम है पिर ना प कभी-कभी सन्देह करते हैं कि धन की विषमता समाज के लिए बड़ी अनिष्टकारी परिस्थितियाँ ला सकती हैं। वे इस बात में विश्वास करते थे कि स्वभावतः मनुष्य की शक्तियाँ समान होती हैं तथा विभिन्न व्यवसायों या कामों में लग जाने से उनके चरित्र में अन्तर उत्पन्न हो जाता है। हर आदमी अपना व्यक्तिगत स्वार्थ साधन करते हुए भी समाज के सुखों में वृद्धि करता है। यह सिद्धान्त सामाजिक व्यवस्था में स्वतः निहित होता है। अपने Moral Sentiments में ऐडमस्मिथ ने लिखा है कि हर मनुष्य स्वभावतः स्वार्थी होता है किन्तु फिर भी किसी अदृश्य शक्ति द्वारा अपने उद्देश्य से परे भी कुछ क्रियायें करता रहता है। राज्य को सभी नागरिकों का सम्मिलित

हित कहा जा सकता है। इसलिए अपने को बेहतर करना तभी सम्भव है जब कि राज्य बेहतर स्थिति में किया जाय। मनुष्य के अन्दर की उपरोक्त अदृश्य शक्ति जन्म से मृत्यु तक उसके साथ रहती है तथा वह सरकार की कृत्रिमता से नहीं प्रभावित होती। हम लोग यह जानते हैं कि किस साधन से हमें सुख मिल सकता है तथा हमारे अतिरिक्त कोई अन्य हमारी सहायता नहीं कर सकता।

इस प्रकार प्रबुद्ध स्वार्थपरता ही समृद्धि की जड़ सिद्ध होती है किन्तु हमें स्मिथ की उस खयाली झाँकी में भटक नहीं जाना चाहिए जिसके वशीभूत होकर वे दीन-दुखियों के आर्तनाद की उपेक्षा करते थे। स्मिथ चाहते थे कि हर मालिक अपने कर्मचारी के स्वास्थ्य तथा उसके कल्याण का समुचित ध्यान रक्खे क्योंकि यही विवेक और मानवता का तकाजा है। जहाँ कहीं भी समाज की यथावत् स्थिति तथा क्रान्ति द्वारा प्राप्त होने वाली नवीन सफलताओं के बीच संघर्ष के क्षण आये हैं वहाँ स्मिथ ने क्रान्तिजन्य सफलताओं को ही प्राथमिकता दी है। व्यवस्था और शान्ति को उन्होंने ऐसी स्थिति कहा है जिसके बिना आगे काम नहीं चल सकता। फिर भी उन्होंने प्राकृतिक आर्थिक नियमों के प्रति अपनी रुचि दिखाई है और उससे प्रभावित हुए हैं। उनके अनुसार मालिक में नम्रता या दानशीलता की शक्ति ही नहीं होती। उनके लिए आवश्यकता या माँग तथा उसकी पूर्ति का नियम ही सबसे बड़ा कानून है। मालिक तो वेतन की सीमा को अधिक से अधिक नीचे की ओर ले जाना चाहते हैं। वे अपने हर एक व्यापारिक लेन-देन में अपने ही फायदे की सोचते हैं। समाज में जितनी ही गरीबी होगी कर्मचारी उतने ही विनम्र होंगे। इसलिए समाज की गरीबी उद्योग की उन्नति के बहुत अनुकूल पड़ती है।

स्मिथ द्वारा प्रस्तुत किये गये तर्कों तथा सिद्धान्तों की अन्तरात्मा उनकी प्रकृति सम्बन्धी कल्पना से प्रभावित थी। जो कुछ भी उनके विचार थे वे उनके तर्कों की आत्मा में आ गये हैं। अपने Moral Sentiments में स्मिथ ने मानवी स्वभाव की निस्वार्थपरता पर भी काफी प्रकाश डाला है। अपने Wealth of Nations में उन्होंने कुछ तथ्यों पर विचार किया है यद्यपि ये तथ्य उक्त कृति के उद्देश्य से परे हैं। स्मिथ के अनुसार प्रकृति मानवी चरित्र की वह अविच्छिन्न

क्रिया है जिस पर राज्य का नियंत्रण नहीं होता। बोनर के अनुसार प्रकृति सम्बन्धी उक्त परिभाषा से स्मिथ मानवी क्रियाओं के उस अचेतन नियम को अस्वीकार करते हैं जो मनुष्य के निजी उद्देश्य से संचालित होता है। ऐडम स्मिथ का कहना था कि मनुष्य के स्वभाव में जो आर्थिक नियम समाये हुए हैं कृत्रिम संस्थाओं (Institution) की शक्ति उनके सामने कुछ नहीं है। वेल्थ आफ नेशन्स में उन्होंने उपयोगितावाद से मिलती-जुलती धारणाओं को ही स्थान दिया है। वे आर्थिक क्षेत्र में भी विवेक की शक्ति पर अधिक बल देते थे और कहते थे कि मनुष्य के स्वार्थों के बारे में उसका विवेक ही सबसे उपयुक्त निर्णायक होता है। मनुष्य के स्वार्थ पर उसके बाहर भी कोई दूसरी शक्ति इतनी खूबी से निर्णय नहीं दे सकती। इसलिए मनुष्य के विवेक द्वारा निर्धारित क्रियाओं में उसकी वास्तविक इच्छाओं की छाया देखी जा सकती है। इस प्रकार मनुष्य की इच्छायें जिस व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती हैं वही आदर्श व्यवस्था है तथा उस पर किसी प्रकार की रोक लगाना उस उद्देश्य पर रोक लगाना होगा जिसकी पूर्ति के लिए मनुष्य निरन्तर संघर्ष करता है।

उपरोक्त दृष्टिकोण से एक खतरा भी उत्पन्न हो सकता है। हो सकता है 'धन की इच्छा' को समूचे मानव समाज पर हावी समझा जाने लगे। यदि स्मिथ की कृतियों का जल्दबाजी में अध्ययन किया जायगा तो इसी दृष्टिकोण की पुष्टि होगी। कदाचित इसीलिए रस्किन ने यह निष्कर्ष निकाला कि स्मिथ मानव स्वभाव के निन्दक हैं। किन्तु जरा सावधानी से उनकी कृतियों का अध्ययन करने और उनके Moral Sentiments को ध्यान में रखते हुए सोचा जाय तो निष्कर्ष कुछ भिन्न ही होगा। स्मिथ का सामान्य दृष्टिकोण जिस माध्यम से उन्होंने कार्य किया उसमें अधिक स्पष्ट हुआ है। वे केवल यही नहीं सिद्ध करना चाहते थे कि धन की खोज में मनुष्य सभी चीजों से परे हो जाता है बल्कि वे यह सिद्ध करना चाहते थे कि आधुनिक कृत्रिमतायें उसके परिश्रम कर सकने की क्षमता को विनष्ट नहीं कर सकतीं। उनके Wealth of Nations में भी इस दृष्टिकोण की झलक मिलती है। वे जीवन के प्रति समुचित सम्मान की भावना रखते हुए कहते थे कि मनुष्य के परिश्रम में ही उसका धन निहित

होता है। यहाँ पर यह सत्य भी स्पष्ट हो जाता है कि स्मिथ व्यापारिक-विस्तार के युग में हुए थे। उन्हें यह बात स्पष्ट दिखाई देती थी कि यदि प्रतिबन्धों को हटा लिया जाय तो और अधिक धन पैदा किया जा सकता है। उनकी दृष्टि में स्वतन्त्रता का अर्थ प्रतिबन्धों का अभाव ही था। यह इसलिए नहीं कि इसका रचनात्मक पक्ष वे नहीं जानते थे बल्कि वे जिस वातावरण में थे उसके लिए इसी प्रकार की स्वतन्त्रता अपेक्षित थी और इसी के लिए उनका प्रयास भी था। वे स्वतन्त्रता को एक रचनात्मक शक्ति के रूप में जानते थे। श्रमविभाजन के दोषों को दूर करने के हेतु वे शिक्षा पर भी जोर देते थे। उन्होंने अपनी पुस्तक में राज्य के हस्तक्षेप के गुणों पर नहीं बल्कि उसके दोषों पर अधिक ध्यान दिया है। स्मिथ अन्त में यह अनुभव कर चुके थे कि कानूनों का लाभ प्राप्त हो चुका है। इन कानूनों से जो अवरोध आया है वह उनसे अपेक्षित परिणामों के अतिरिक्त कहा जायगा।

(३)

स्मिथ की कृति Wealth of Nations की प्रशंसा करना बड़ा कठिन काम है। बकिल (Buckle) ने इस पुस्तक के बारे में कहा था कि यह पुस्तक अपने समय की संसार की सबसे प्रभावशाली पुस्तक है। कुछ भी हो यह पुस्तक अपने समय की कतिपय प्रथम कोटि की पुस्तकों में से एक थी। इससे भी महत्वपूर्ण बात वह ढंग है जिस ढग से इस पुस्तक में लिखी जाने वाली सामग्री को रखा गया है। स्मिथ ने पुस्तक का आरम्भ औद्योगिक क्रान्ति से किया है। पुस्तक में स्मिथ ने वाट्स के प्रयोगों की जिस ढंग से पुष्टि की है उससे स्पष्ट है कि स्मिथ उन प्रयोगों के प्रति भी जागरूक थे। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि पुस्तक में औद्योगिक क्रान्ति का ही अधिक वर्णन है। उन्होंने औद्योगिक संगठन तथा संभावनाओं का जो चित्र खींचा है उससे लगता है कि उन्हें दूरगामी भविष्य का भी कुछ आभास हो चुका था। उनके समय में उनकी दृष्टि में उद्योग केवल दस्तकारी तक की स्थिति में पहुँच सका था। उस समय उद्योग होशियारी की कारीगरी को ही अधिक समझा जाता था न कि मशीनों के

अधिकाधिक प्रयोग को। इस समय काफी मेहनत से बचायी गयी धनराशि को पूँजी कहा जा सकता था। उधार को वित्तीय पूर्ति का एक नया साधन माना जाता था। मुनाफे को उत्पादन के हेतु किये गये परिश्रम का उचित परिणाम कहा जाता था। महाजन को पैसा बचाने के परिणाम स्वरूप जो पुरस्कार होता था ब्याज माना जाता था। व्यापार वह मध्यस्थ माना जाता था जो उत्पादित सामग्री को उपभोक्ता तक पहुँचाता था। स्मिथ आज के काफी विशाल तथा सामूहिक सहयोग से चलाये जाने वाले उद्योगों की कल्पना तक नहीं कर सके थे। वे एक ऐसी व्यवस्था (तत्कालीन उद्योग) के बारे में लिखे हैं जो अठारहवीं शताब्दी की राजनीति की तरह एक आरामदेह स्थिति तक पहुँच चुकी थी। उनकी निगाह में उद्योगों का लाभ मुक्त-व्यापार तथा मुक्त-कारीगरी से ही प्राप्त हो सकता था किन्तु अन्ततः वे अपने आधार भूत विचारों तथा खयालों पर सन्देह नहीं करना चाहते थे।

कहीं-कहीं पर उन्होंने बड़ी ही महत्वपूर्ण समस्याओं को छोड़ दिया है इसका भी कुछ रहस्य हो सकता है। उनकी पुस्तक में श्रम-समस्या उठाई ही नहीं गई है। धनहीन लोग बहुत सी चीजों को अपने जीवन में देख तक नहीं पाते। किन्तु फिर भी हर देश के नागरिकों का एक निम्नतम जीवन-निर्वाह का स्तर होता है। हर देश की सरकार चाहे वह कितने ही निकृष्ट उद्देश्यों की क्यों न हो किन्तु अपने नागरिकों के जीवन-निर्वाह के निम्नतम स्तर की आवश्यकताओं को तो पूरी ही करती है। स्मिथ ने अपनी पुस्तक में इस ओर भी कोई संकेत नहीं किया। समूची पुस्तक में एक आशावाद की झलक देखने को मिलती है तथा इस बात पर विशेष जोर दिया गया है कि मनुष्यजाति स्वभावतः अपने को बेहतर स्थिति में लाने के लिए सदैव क्रियाशील है। एक बात उन्होंने अपनी पुस्तक में कही है जो कभी भी उचित नहीं कही जा सकती और वह यह है कि वे अधिक से अधिक धन संग्रह के समर्थक थे। चाहे उसके लिए आदमी को कितने ही कष्ट क्यों न झेलने पड़ें। इससे स्पष्ट है कि स्मिथ के अनुसार राज्य सम्बन्धी सभी व्यक्तिवादी सिद्धान्त सामाजिक बन्धनों से मुक्त हैं। ऐडम स्मिथ के बाद जिन लोगों ने भी इस प्रश्न पर विचार किया वे इस समस्या पर अधूरे ढंग

से ही सोच सके हैं। उन्होंने उपभोक्ता के हेतु भी एक 'मूल्य के सिद्धान्त' (Theory of Value) का प्रतिपादन किया है। एक ओर ऐडम स्मिथ के मस्तिष्क में सुखी और सन्तुष्ट समाज की कल्पना थी और दूसरी ओर रिकार्डों तथा माल्थस मानव स्वभाव के किसी एक तत्व को ही लेकर यह कहते हैं कि राज्य को मानवी-प्रकृति के केवल इसी तत्व विशेष की ओर ध्यान देना चाहिए। व्यापार बढ़ने पर मनुष्य को प्रतिबन्धों से मुक्त करने का भी स्वर सुनाई पड़ने लगा। एक राजनीतिज्ञ अर्थशास्त्री नासू सीनियर कहते थे कि सन्तोष नहीं बल्कि धन सब कुछ है तथा मैं ऐसे किसी भी तथ्य को महत्व नहीं देता जिसका धन पर प्रभाव या उससे कोई सम्बन्ध नहीं।

ऐसी स्थिति में उत्पादन की प्रणाली (Technique) का अध्ययन करने के बाद ही हमें अगली खोजबीन करनी चाहिए और फिर भी ऐसे समय में जब की पूँजी का महत्व बढ़ता जा रहा है और मशीनों की इतनी अधिकता हो गई है कि मजदूरों के बजाय मशीनें रखकर ही काम चलाया जा सकता है। इस समय हमें ऐडम स्मिथ को याद करना पड़ेगा जो यह कहते थे, 'प्रबुद्ध स्वार्थपरता' (Enlightened Selfishness) से ही समाज का कल्याण हो सकता है। सरकारी प्रतिबन्ध उस समय भी बुरे माने जाते थे जब कि इन प्रतिबन्धों के जरिये ऐसे दोषों को दूर किया जा रहा था जो जनसाधारण को उसकी नागरिकता तक से वंचित कर देते थे। यहाँ तक कि राष्ट्रीय शिक्षा के बारे में भी यह धारणा थी कि इससे मनुष्य की प्रयास कर सकने की क्षमता कुण्ठित हो सकती है। नयी व्यवस्था के अन्तर्गत न्याय-प्रशासन भी औद्योगिक संगठनों का समर्थक हो गया था। ऐडम स्मिथ के बाद लगभग ५० वर्ष तक स्थिति यह थी कि एक ओर व्यापारी और अर्थशास्त्री आशावादी हो गये थे तथा दूसरी ओर श्रमिकवर्ग निराशा के भार से दबा जा रहा था। इस दौरान यह बात बड़े जोरदार ढंग से अस्वीकार की जाती रही कि अपनी हालत सुधारने के लिये नागरिक आपस में संगठित भी हो सकते हैं। यहाँ तक कि फ्रांसिस प्लेस के समय तक मजदूरों को भी यह यकीन नहीं होता था कि वे एकताबद्ध होकर अपनी हालत कुछ सुधार सकते हैं। उद्योगों का मालिक राज्य स्वयं था। अर्थशास्त्र के क्षेत्र

की पूरी बौद्धिक शक्ति श्रमिकों और मालिकों के बीच सन्तुलन कायम रखने में लगी हुई थी। विचारधारा के विरोध में लिखा गया हाल, थाम्पसन, हाग्सकिन तथा ब्रे का साहित्य तत्कालीन कानूनों पर तनिक भी प्रभावशाली न हो सका था। राबर्ट ओवेन ने यद्यपि कोई नई रोशनी नहीं प्रदान की किन्तु फिर भी वे तत्कालीन पूँजी समर्थक धारा से थोड़ा अलग हुए हैं। विल्बरफोर्स के बाद होने वाले विद्वानों ने भी अर्थशास्त्र की कट्टरपंथी धारणाओं का ही अनुगमन किया। बेचारे धनहीन राज्य की ओर से रामभरोसे छोड़ दिये जाते थे और उन्हें भगवान की कृपा के सहारे जीवित रहने को कहा जाता था। जो लोग भी तत्कालीन स्थिति का थोड़ा बहुत अध्ययन किये हैं वे जानते हैं कि उपरोक्त सिद्धान्त धनहीनों के प्रति कितना कठोर या निर्दयतापूर्ण रुख था। जीवन को एक संघर्ष माना जाने लगा। बड़ी-बड़ी दुर्घटनाओं को भी इसलिये क्षमा कर दिया जाता था कि उनसे देश के निर्यात-व्यापार में वृद्धि होती थी। इन दिनों औद्योगिक क्षेत्र में वेतन सम्बन्धी कानून बड़े ही सख्त होते थे। मजदूर की हालत को बेहतर करने में उसकी योग्यता तनिक भी कामयाब नहीं होती थी। कभी-कभी मजदूरों को अपने आत्म-सम्मान को दाँव पर लगाकर पुरस्कार आदि स्वीकार करना होता था। इन विषयों पर तत्कालीन समाज में प्रायः वाद-विवाद भी हुआ करता था।

तत्कालीन समाज के सम्बन्ध में हमें ऐडम स्मिथ से जो बुनियादी जानकारी हासिल होती है हमें उसके सत्य के अंश की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। किसी भी लोकतांत्रिक राज्य के लिये संरक्षण प्रदान करने की नीति से ज्यादा घातक कोई दूसरी नीति नहीं होती। इसके अतिरिक्त नागरिकों की रचनात्मक-शक्ति को भी सरकार की नीति में उचित स्थान मिलना चाहिए। ऐडम स्मिथ जिस विचारधारा के थे वे उसके सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधि थे जब हर आदमी सत्य की खोज में जुट जाता है तभी सत्य की अनुभूति सम्भव कही जा सकती है। सत्य की वह अनुभूति निस्सन्देह अभूतपूर्व होगी। किसी भी देश की जनता जब अपनी आर्थिक समस्याओं के प्रति जागरूक और सतर्क हो जाती है तो निश्चित है कि एक दिन वह अपने महानता के लक्ष्य को पालेगी। यह सच है किन्तु

इससे हमारी पैतृक अवस्थाओं का लोप हो जाता है। यदि हम स्मिथ की मनोवैज्ञानिक खामियों को एक किनारे रख दें तो स्मिथ के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। यदि हम यह स्वीकार कर लें कि सुखी जीवन ही राज्य का लक्ष्य होता है तो हमें राजनीति में नैतिकता के आश्रित होकर ही चलना होगा। हमें सुखी जीवन या अच्छे जीवन की सर्वश्रेष्ठ कल्पना को खोजना होगा तथा यह भी जानना होगा कि आखिर वे लोग कितने हैं जिनको राज्य सुख या अच्छाई का पुरस्कार देना चाहता है।

इस कल्पना के माध्यम से स्मिथ के विचारों का कार्यान्वित हो सकना सर्वथा असम्भव लगता है। निजी स्वार्थी की प्रतिस्पर्धा चाहे वह कितने ही पवित्र उद्देश्यों से क्यों न प्रेरित हो राज्य तथा उसके सदस्यों के बीच सदभावना लाने के लिये काफी नहीं है। स्वतन्त्रता को आत्म-ज्ञान का रचनात्मक तथा समान अवसर कहा जा सकता है किन्तु उसके आधार पर सामूहिक प्रयासों से ही निम्नतम लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। ऐडम स्मिथ यह नहीं जान सके कि राजनीति की जो विधियाँ स्वीकार कर ली जाती हैं वे राज्य के उद्देश्यों तथा उसकी इच्छा की प्रतिरूप नहीं होती हैं बल्कि इस प्रकार से स्वीकृत राजनीति की विधियाँ सरकार चलाने वालों की इच्छानुसार होती हैं। ऐडम स्मिथ के बाद अर्ध शताब्दी तक जितने भी लोग शासन-संचालन के क्षेत्र में या राजनीति में आये हैं निस्सन्देह वे बड़े अच्छे उद्देश्यों और इरादों वाले रहे। उनके समय में समाज ऐसा नहीं था कि लोग मालिक और कर्मचारी को समान स्तर प्रदान करने के सिद्धान्त का समर्थन करते। फैक्ट्री-सम्बन्धी कानूनों का विरोध भी नहीं हो सकता था क्योंकि किसी भी कर्मचारी के साथ उसको उसके निर्वाह भर का पैसा देने के अलावा और अधिक इन्सानियत नहीं बरती जा सकती थी। आज इस दिशा में जो सफ़लता मिली भी है उससे अधिकांश लोग वंचित ही रहते हैं। मुनासिब कानूनों के अभाव में जो भी लोग अपने यहाँ कर्मचारियों को रखेंगे वे उनके राजनीतिक मालिक होंगे और पार्लियामेंट में इस सम्बन्ध में जो भी कानून बनेंगे वे पूँजी वालों के ही पक्ष में होंगे। राज्य के पवित्र उद्देश्यों की इस प्रकार की हत्या देशवासियों के लिए कठिनाई पैदा करने वाली ही नहीं

होगी वरन् इससे उन सभी तत्वों को आघात पहुँचेगा जो जीवन को किसी न किसी रूप में सन्तोषजनक स्थिति में रखते हैं। इस प्रकार तो केवल एक 'दौलत की सभ्यता' का ही निर्माण हो सकता है और उस सभ्यता के अन्तर्गत आदमियों के बजाय गुलाम ही अधिक संख्या में होंगे।

ऐडम स्मिथ में व्यक्तिवाद के सिद्धान्त के प्रति भी बड़ा उत्साह था। उनका कहना है कि जनसाधारण द्वारा अपनाये गये रीति-रिवाज जब किसी समूह की इच्छा का प्रतिनिधित्व करने लगते हैं तो वे कुछ लोगों या अल्पसंख्यकों की दकियानूसी इच्छाओं को कुचल भी सकते हैं। यदि आदमी अपनी धन-संचय की संकीर्ण इच्छा की पूर्ति के लिए सतत प्रयत्नशील रहने के बजाय समूचे समाज की भलाई का काम ले ले तो उससे भी उसे कम सन्तोष न मिलेगा। यदि आदमी में यही भावना आ जाए तो यहीं से नये युग का आरम्भ कहा जा सकता है। अपने सामाजिक जीवन में जहाँ भी हम इस तरह के लोगों को पाते हैं अपने व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने लगते हैं। इसी प्रकार की आत्म-अभिव्यक्ति की छूट को हम स्वतन्त्रता कहते हैं। सभ्यता का मापदण्ड क्या है सामूहिक योजनाओ तथा सामूहिक प्रयास की क्षमता से भी सभ्यता का मूल्यांकन हो सकता है। इधर जब औद्योगिक क्षेत्र में विज्ञान का प्रवेश हुआ तो पुराने तथा बुनियादी दृष्टिकोणों का बदलना भी अनिवार्य हो गया। इस प्रकार एक ऐसा युग आया जब कि व्यक्तिगत स्वार्थ का सिद्धान्त जिसका समर्थन ऐडम स्मिथ करते थे अनुपयुक्त सिद्ध होने लगा और राष्ट्रीय पैमाने पर व्यापार के नियमों के निर्धारण की विचारधारा प्रबल हो गई। हर युग में एक ऐसा क्षण भी आता है जब कि संस्थाओं (Institutions) के विकास को खतरा नजर आने लगता है। निजी उद्योग की मान्यता बहुत पुरानी हो चुकी है किन्तु औद्योगिक क्रान्ति के बाद से हमें यह सबक मिल गया है कि अब निजी उद्योग के नाम से व्यापारिक उन्नति उतनी सरल नहीं रह गई। इतिहास ऐसे अनेक सिद्धान्तों का रिकार्ड है जिनके द्वारा पुरानी व्यवस्था का समर्थन किया गया है। स्मिथ द्वारा Wealth of Nations के लिखे जाने के लगभग एक शताब्दी बाद लोग यह अनुभव करने लगे कि इस पुस्तक में लिखी गई बातें एक युग

विशेष की अनुभूतियाँ मात्र हैं। स्मिथ ने स्वतन्त्रता के बारे में भी जो कुछ कहा है अपनी पीढ़ी के हितों को देखते हुए कहा है। इस सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ कहा है एक शताब्दी बाद भी वह प्रभावशाली उक्ति मानी जाती है।

राजदर्शन के इतिहास में हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि हर युग में स्वतन्त्रता सम्बन्धी धारणाएँ व समस्याएँ बदलती रही हैं। १६ वीं शताब्दी में विशेषाधिकारों के खिलाफ हवा बही और पूर्व पीढ़ी द्वारा तैयार की गई आधार शिला के बल पर यह हवा कामयाब भी रही। यह दावे के साथ नहीं कहा जा सकता कि हर युग में स्वतन्त्रता का मूल-तत्व उस युग के सशक्त तत्वों में ही निहित होता है। लाक, स्मिथ, हीगेल तथा मार्क्स सभी विचारकों के अनुसार विश्वजनीन अनुभूतियों का अन्तिम रूप सिद्धान्त रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि अतीत बिल्कुल निरर्थक ही होता है। सीले का कहना था कि राजनीति का जब तक इतिहास द्वारा परिमार्जन न कर दिया जाय वह बड़ी भद्दी चीज होती है। कोई भी राज्य जो अपने को परम्परागत संस्थाओं (Institutions) की पच्चीकारी नहीं समझता उसके द्वारा प्रतिपादित सभी नयी योजनाएँ बालू की दीवार के समान होंगी। १८वीं शताब्दी में सामूहिक प्रयासों पर सन्देह प्रकट किया जाता रहा किन्तु २०वीं शताब्दी में भी यही बात रहे कोई जरूरी नहीं है। यदि हम ऐसा सोचते हैं तो हम भी हीगेल की भूल को ही दुहरायेंगे जिसके लिए उसे लासले की आलोचनाओं का निशाना बनना पड़ा था। फिर इस प्रकार की भूलों से हमारी मुक्ति इतिहास की दया पर निर्भर करेगी क्योंकि इतिहास में अतीत के समस्त आदर्श और आशंकायें तथा भविष्य की चुनौतियाँ निहित होती हैं।

उपरोक्त सिद्धान्त के औचित्य से ऐडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित दोहरी परम्परा के सिद्धान्त को भी बल मिलता है। ऐडम स्मिथ सैद्धान्तिक अर्थव्यवस्था के प्रवर्तक माने जाते हैं। रिकार्डो, मिल तथा नासू सीनियर के मतानुसार बिना नैतिक पहलुओं का ख्याल किये हुए धन का उत्पादन जारी रहना चाहिए। इन लोगों की निगाह में राज्य एक ऐसी संस्था है जिसका कर्त्तव्य ऐसे वातावरण को बनाए रखना है जिसमें व्यापारी या उद्योगपति को अपनी मेहनत का फल

मिलता रहे। उपरोक्त विचारकों के मस्तिष्क में स्टुअर्ट मिल की तरह समाजवाद (Socialism) को निमंत्रण देने की बात नहीं आ पाई। वे पूँजीवादी व्यवस्था को ही नये रूप में बनाए रखना चाहते थे। स्टुअर्ट मिल ने नैतिक उद्देश्यों से राज्य का शुद्धीकरण किया और अपने उपयोगितावादी दृष्टिकोण के अनुसार कहा कि उत्पादन की प्रणाली को प्राथमिकता दी जानी चाहिए और इसी में अधिक से अधिक लोगों को अधिक से अधिक सुख प्राप्त हो सकता है। सन् १८६७ के रिफार्म एक्ट तक पुराने दकियानूसी अर्थशास्त्रियों के सामने कोई सिर नहीं उठाता था। मताधिकार से ही नयी विचारधारा का सूत्रपात मानना चाहिए। अभी तक 'ट्रेड यूनियनवाद' के नये स्वरूप को राजनीति की कसौटी पर नहीं कसा गया था। किन्तु एक निराकार आर्थिक मनुष्य की कल्पना के आधार पर यह काम संभव भी न था। कल्पित आर्थिक मनुष्य के स्वार्थों को निराधार कहा जाने लगा क्योंकि उसकी धारणाओं को वर्तमान तथ्यों पर लागू करने के पूर्व कुछ अनुभव और ट्रेनिंग की भी आवश्यकता थी। पुराने उपयोगितावाद का व्यक्तिवाद भी धीरे-धीरे लुप्त हो गया क्योंकि इससे ऐसे राज्य की स्थापना न हो सकी जिसमें कि एक साधारण तथा विनम्र नागरिक को अपनी रचनात्मक शक्ति की अभिव्यक्ति का अवसर मिलता।

आर्थिक उदारवाद के विरोध की तह में निहित महत्व को पिछली कुछ दशाब्दियों से समझा जाने लगा है। ऐडम स्मिथ ने भी यह स्पष्ट कह दिया था कि श्रम ही मूल्य का मुख्य स्रोत है। यह रहस्योद्घाटन उन्होंने उस समय किया जब कि उक्त सिद्धान्त कठिनाइयों से गुजर रहा था। इस सिद्धान्त से अन्य बातों के अलावा एक और सत्य सामने आया जिसके आधार पर अर्थशास्त्र को नैतिक विज्ञान की संज्ञा देने पर जोर दिया जा सकता है। यदि ब्रे और थाम्पसन के कथनानुसार श्रम ही मूल्य का मुख्य स्रोत है तो मेहनत के बदले उसकी कीमत दे देना ही काफी होगा। यद्यपि यह अपमान की बात है, किन्तु ऐसी स्थिति में लोग जिस औद्योगिक संस्थान में होते थे उसके आर्थिक मुनाफे पर तनिक भी गौर नहीं करते थे क्योंकि नैतिक दृष्टि से श्रम का मूल्य चुकाया जाना ही ठीक समझा जाता था। इस युग का इतिहास कोई समझ नहीं सकता और न उक्त

नैतिक औचित्य से ही इनकार किया जा सकता है। यदि कोई इनकार भी करे तो सुनता कौन है। ब्रे और थाम्पसन के बाद उनके द्वारा चलाई परम्परा कार्ल मार्क्स के हाथ आ गई और उन्होंने उसे नया रूप-रंग प्रदान किया। मार्क्स ने ऐतिहासिक ढङ्ग से सिद्धान्त की व्याख्या की। विभिन्न धाराओं तथा मतों के बावजूद ब्रिटिश समाजवाद के सिद्धान्त का आधुनिक राजनीति पर एक उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा। ऐडम स्मिथ के आदर्शों की ही आधारशिला पर जन-साधारण के हितार्थ कामनवेल्थ के सिद्धान्त की सृष्टि हुई। इस सिद्धान्त के अनुसार धन केवल कारखाने में बना हुआ सामान ही नहीं रह गया वरन् समाज के एक-एक आदमी की प्रसन्नता के संचित स्वरूप को धन माना जाने लगा। स्मिथ ने जिन मानवी-भावनाओं पर अधिक बल दिया था इस सिद्धान्त के अनुसार अब उनसे भिन्न भावनाओं पर बल दिया जाने लगा। फल स्वरूप स्मिथ के सिद्धान्त एक ऐसी दिशा को उन्मुख हो चले जिसकी कि उन्होंने कभी कल्पना तक नहीं की होगी। फिर भी इससे उन्हें ख्याति तो मिली ही। इस प्रकार स्मिथ ने वह स्थिति ला दी जिसमें सहकारी-प्रयास की कल्पना को एक नयी अभिव्यक्ति प्राप्त हुई। इस प्रकार स्मिथ का अनुकरण करने वालों ने, चाहे वे उसके सिद्धान्तों की आलोचना ही क्यों न किये हों, एक ऐसी आशा को जन्म दिया जिस पर यदि स्मिथ होता तो फूला न समाता।



BIBLIOGRAPHY

This bibliography makes no pretence to completeness. It attempts only to enumerate the more obvious sources that an interested reader would care to examine.

GENERAL

LESLIE STEPHEN. *History of English Thought in the Eighteenth Century.* 1876. Vol. II, Chapters IX and X.

W. E. H. LECKY. *History of England in the Eighteenth Century.*

A. L. SMITH. *Political Philosophy in England in the Seventeenth and Eighteenth Centuries in the Cambridge Modern History.* Vol. VI, Chapter XXIII.

J. BONAR. *Philosophy and Political Economy.* Chapters V–IX.

F. W. MAITLAND. *An Historical Sketch of Liberty and Equality in Collected Papers.* Vol. 1.

CHAPTER II

JOHN LOCKE. *Works* (Eleventh Edition), 10 volumes. London, 1812.

H. R. FOX-BOURNE. *Life of John Locke.* London, 1876.

T. H. GREEN. *The Principles of Political Obligation* in *Collected Works.* Vol. II. London, 1908.

PETER, LORD KING. *The Life and Letters of John Locke.* London, 1858.

SIR F. POLLOCK. *Locke's Theory of the State* in *Proc. Brit. Acad.* Vol. I. London, 1904.

S. P. LAMPROGHT. *The Moral and Political Philosophy of Locke.* New York., 1918.

A. A. SEATON. *The Theory of Toleration under the Later Stuarts.* Cambridge, 1911.

J. N. FIGGIS. *The Divine Right of Kings.* Cambridge, 1914.

CHAPTER III

JEREMY COLLIER. *The History of Passive Obedience.* London, 1689.

WILLIAM SHERLOCK. *The Case of Resistance.* London, 1684.

CHARLES LESLIE. *The Case of the Regale* (Collected Works). Vol. III, p. 291.

The Rehearsal.
The New Association.
Cassandra.
The Finishing Stroke.
Obedience to Civil Government Clearly Stated.
The Best Answer.
The Best of All.
SAMUEL GRASCOM. *A Brief Answer.*
E. STILLINGFLEET. *A. Vindication of their Majesties Authoritie.*
B. SHOWER. *A Letter to a Convocation Man.*
W. WAKE. *The Authority of Christian Princes.*
The State of the Church (1703).
FRANCIS ATTERBURY. *Rights, Powers and Privileges of an English Convocation* (1701).
BENJAMIN HOADLY. *Origins of Civil Government* (1710).
Preservative Against Nonjurors (1716).
Works. 3 vols. London (1773).
WILLIAM LAW. *A Defence of Church Principles* (ed. Gore). Edinburgh, 1904.
W. WARBURTON. *Alliance between Church and State* (1736).
J. H. OVERTON. *The Nonjurors.* New York, 1903.
T. LATHBURY. *History of Convocation.* London, 1842.

CHAPTER IV

BERKELEY. *Essay Towards Preventing the Ruin of Great Britain* (1721).
H. ST. JOHN (Viscount (Bolingbroke). *Works.* 5 vols. London, 1754.
LORD EGMONT. *Faction detected by the Evidence of Facts* (1742).
DAVID HUME. *Inquiry Concerning the Principles of Morals* (1752).
Essays (1742-1752) ed. Green & Grose. London, 1876.
W. SICHEL. *Life of Bolingbroke.* 2 vols. 1900–4.
J. CHURTON COLLINS. *Bolingbroke and Voltaire in England.*
J. HILL BURTON. *Life of Hume.*

CHAPTER V

MONTESQUIEU. *L'Esprit des Lois* (1748).
J. J. ROUSSEAU. *Du Contrat Social* (1762). See ed. by Vaughan, 1918.
JOHN BROWN. *Estimate of the Manners and Principles of the Times* (1757).
ADAM FERGUSON. *Essay on the History of Civil Society* (1767).
WILLIAM BLACKSTONE. *Commentaries* (1765-9).

JEREMY BENTHAM. *A Fragment on Government* (1776). Ed. F. C. Montague, 1891.
J. DE LOLME. *The Constitution of England* (1775).
ROBERT WALLACE. *Various Prospects* (1761).
JOSEPH PRIESTLEY. *Essay on the First Principles of Government* (1768).
RICHARD PRICE. *Observations on Civil Liberty* (1776).
Additional Observations (1777).
WILLIAM OGILVIE, *The Right of Property in Land* (1781), Ed. Macdonald, (1891),
JOSIAH TUCKER. *Treatise on Civil Government* (1781).
SAMUEL JOHNSON. *Taxation No Tyranny* (1775).
M. BEER. *History of British Socialism* (1919).
JAMES BOSWELL. *Life of Samuel Johnson* (1791).
ROLAND THOMAS. *Life of Richard Price* (1924).

CHAPTER VI

EDMUND BURKE. *Collected Works*. London, 1808.
JOHN MORLEY. *Edmund Burke* (1867).
Life of Burke (1887)
J. MACCUNN. *The Political Philosophy of Burke* (1908).
JUNIUS. *Letters* (1769-72). London, 1812.
THOMAS PAINE. *The Rights of Man* (1791-2).
JAMES MACKINTOSH. *Vindiciae Gallicae* (1791).
RICHARD LENNOX. *Edmund Burke*. Berlin, 1923.

CHAPTER VII

CHARLES DAVENANT. *Works*. London, 1771.
SIR DUDLEY NORTH. *A Discourse upon Trade* (1691).
ADAM SMITH. *Theory of Moral Sentiments* (1759).
The Wealth of Nations (1776).
Lectures on Justice and Police. (Ed. Cannan, 1896.)
W. R. SCOTT. *Life of Francis Hutcheson* (1900).
JOHN RAE. *Life of Adam Smith* (1895).
W. BAGEHOT. *Adam Smith as a Person* in *Coll. Works*. Vol. VII.
F. W. HIRST. *Adam Smith* (1904).
W. HASBACH. *Untersuchungen uber Adam Smith* (1891).
J. BONAR. *A Catalogue of Adam Smith's Library* (1894).
T. CLIFFE LESLIE. *Adam Smith in Essays in Moral and Political Philosophy* (1879).
E. TROELTSCH. *Die Sociallehren der Christlichen Kirchen* (1912).
R. H. TAWNEY. *Religion and Capitalism* (1926).

इङ्गलैण्ड का राजदर्शन

(अन्य भागों का संक्षिप्त परिचय)

'इंगलैएड का राजदर्शन' नामक ग्रन्थमाला के अन्तर्गत होम यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी द्वारा अभी तक चार उच्चकोटि की पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं। उक्त चारों पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद भी किताब महल, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित हो गया है और प्रत्येक भाग का मूल्य केवल चार रुपया है।

ग्रन्थमाला की पहली पुस्तक जी० पी० गूच द्वारा लिखी गई है। बेकन से हेलीफैक्स तक की विचारधाराओं के अतिरिक्त हाब्स, मिल्टन, हैरिंगटन, विन्स्टनले के सिद्धान्तों पर विशद रूप से विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त इंगलैंड की तत्कालीन पार्लमेंट, सेना, जनता तथा धार्मिक संस्थाओं (चर्च आदि) की दशाओं का भी चित्र खींचा गया है।

दूसरी पुस्तक विलियम एल० डेविडसन द्वारा लिखी गई है जिसमें इंगलैण्ड के राजदर्शन की उपयोगितावादी विचारधारा के सूक्ष्म से सूक्ष्म सिद्धान्तों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में जर्मी बेन्थम, जेम्स मिल, जान स्टुअर्ट मिल, ग्रोटे, आस्टिन तथा अलेक्जेण्डर आदि विचारकों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का भी विवेचन है।

इस ग्रन्थमाला की तीसरी पुस्तक सर अर्नेस्ट बर्कर द्वारा लिखी गई है। इसमें इंगलैंड की राजनीति के बौद्धिक मंच पर सन् १८४८ से सन् १६१४ तक उद्भूत सभी विचारधाराओं का अध्ययन किया गया है। इस पुस्तक में टी० एच० ग्रीन, ब्रैडले, बोसांके, हर्बर्ट स्पेन्सर तथा अन्य विचारकों के सिद्धान्तों को समुचित स्थान दिया गया है।

ग्रन्थमाला की चौथी पुस्तक आपके हाथ में है।